ये लघुकथाएँ

लम्बी कहानियोंके छह संग्रहोंके बाद लघुकथाओंका यह मेरा पहला संकलन है।

लघुकथा लम्बी कहानीकी कथावस्तु या 'प्लाट' मात्र है, और लम्बी कहानी लघुकथाका सपरिधान रूप। मेरे निकट दोनोंकी शैलीमें अन्तर केवल यही है। वस्तुका वास्तविक सौन्दर्य उसके नग्न रूपमें है। परिधानों द्वारा उसे सजाकर भी हम सराहते हैं किन्तु, गहराईमें देखें तो, वैसा करते हुए हमारी दृष्टि एक हद तक वस्तुसे विमुख होकर उसके रंग-बिरंगे आवरणोंमें भटक जाती है। निष्परिधान सरलता ही सौन्दर्यका मर्म है और जीवनका भी। इस नाते मानव-मनकी चिरप्रिया कथा अपने निरावरण अतः लघु रूपमें ही उसके अधिक निकट पहुँचती है। विविध चित्रणों एवं मनोद्वन्द्वोंके आवरणोंमें लिपटी कहानी हमारी सामाजिक परिस्थिति-जनित भावनाओं और कामनाओंको रस देती है और लघुकथा सीधे हमारे सर्वकालिक बौद्धिक हृदय तक पहुँचती है। प्रतीकात्मकता—सरल घटना-दर्शनसे भिन्न कोई दूसरा अभिप्राय—लघुकथाका प्रमुख गुण है और आवश्यक नहीं कि वह लघुकथा छोटी ही हो। रूपककी शृङ्खलाका दूर तक निर्वाह किया जा सके तो लघुकथा लम्बी भी हो सकती है। सामान्य लम्बी कहानियोंमें जब हम किसी प्रतीकात्मकताका समावेश करना नहीं चाहते या कर नहीं पाते तभी आजकी प्रचलित सामाजिक-मनोवैज्ञानिक कहानीका सृजन होता है। साहित्यके प्राङ्गणमें कहानीका अतीत उसकी सरलता और साथ ही साथ उसकी द्वयर्थकतामें सजीव रहा है, उसका भविष्य भी उसकी निरावरणता-जनित लघुतामें ही सुदीप्त दिखाई देता है। संक्षिप्तता और सरलता आते हुए युग की माँगे भी हैं। इस संक्षेप-

सारल्यमें भी सौन्दर्यका ऐसा पुट देना कि जो हमारी बाह्य भाव-रुचियोंको भी तृप्त कर सके नये युगके उगते हुए कलाकारका गुण होगा।

मेरी ये लघुकथाएँ आकारमें, कहीं-कहीं लम्बी कहानियोंके समीप पहुँच गई हैं पर टेकनीककी दृष्टिसे लघुकथाएँ ही हैं। इन कथाओंका स्रोत केवल मेरा अपने ढंगका चिन्तन है, और उस चिन्तनका प्रेरक मेरा अन्तर्जगत् तथा मानव-मन-सम्बन्धी कुछ थोड़ा-सा अध्ययन। वेद, उपनिषद्, पुराण तथा प्राचीन कथा-साहित्यकी मैंने शायद कुल मिलाकर दस-बीस कहानियाँ दसवीं कक्षा तककी पाठ्य पुस्तकोंमें या आधुनिक पत्र-पत्रिकाओंमें सुलभ होने पर पढ़ ली होंगी। फिर भी उनकी शैलीकी छाप यदि इनमें से कुछ कथाओंमें कहीं आ गई हो तो वह मेरे लिए गौरवकी बात है।

इन कथाओंका 'कथागुरु' मेरा अपना ही दृष्टान्त समीक्षक अन्तर्मन है, और कथाओंके अन्तमें आने वाली उसकी टिप्पणियाँ केवल इसलिए हैं कि वे पाठकोंके सम्मुख कथाके किसी अभिप्रायकी ओर संकेत कर दें। जिन पाठकोंको ये टिप्पणियाँ अनिमन्त्रित-सी लगें वे इन्हें अलग रख कर अपने अर्थ और अभिप्राय स्वयं निकालनेके लिए भी स्वतंत्र हैं।

कैलास,
पोस्ट—सिकन्दरा (आगरा) —रावी
१ जनवरी, १९५८

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

मेरे कथागुरुका कहना है

•

शीशमका खूँटा

किसी समय शीशमके विशाल वनके समीप बसा हुआ एक गाँव था।

एक बार उस वनमे ऐसी आग लगी कि वह सारा ही जलकर राख हो गया। उस वनके जल जानेसे अगली वर्षा ऋतुमे यथेष्ट पानी आस-पासके देशमे नही बरसा और खेतीको बडी हानि हुई। गाँवके अनुभवी बड़ो-बूढ़ोने बताया कि यदि उस वनके दुबारा लगानेकी व्यवस्था न हो सकी तो पानी का अकाल हर वर्ष अधिकाधिक बढता ही जायगा।

उस वनको दुबारा उगाना पूर्णतया वनोके देवताके हाथमे था। गाँवके पण्डितोने कर्मकाण्डके सभी शास्त्रोंकी छानबीन करके अन्तमे वनदेवकी आराधनाके लिए एक अनुष्ठानका आयोजन किया। शास्त्रीय विधानके अनुसार उस अनुष्ठानके अन्तर्गत यह आवश्यक था कि शीशम के नये बनाये हुए एक विशेष आकारके खूँटोंसे बाँधकर गाँवके सभी बैलोंकी पूजा की जाय। इस प्रकार जितने बैलोंकी पूजा की जायगी उसके दसगुने वृक्ष उगेंगे और जितने घेरेमे ये वृक्ष उगेंगे उसकी दसगुनी धरती को सीचने योग्य जल बरसेगा।

लेकिन इन नये खूँटोको बनानेके लिए शीशम आये कहाँसे, यह एक समस्या हो गई। लोगोंने अपनी अपनी बैलगाडी जोती और चारो दिशाओमे शीशमके वृक्षकी खोजके लिए निकल पड़े। उन्हे आशा थी कि शायद पास-दूरके किसी छोटे-मोटे वनमे कोई शीशमका पेड़ निकल आयेगा।

उन्होने सैकडो कोसकी यात्रा करके पास-दूरके अनेक गाँवोंके बाग-बगीचे छान डाले पर कहीं भी उन्हें शीशमका वृक्ष नहीं मिला। फिर भी वे लोग अपनी खोजमे आगे बढ़ते ही गये!

एक दिन उत्तरकी ओर जानेवाले गाड़ी-दलके एक गाड़ीवानने

अचानक अपनी गाड़ी रोक दी और अपने साथियोंसे लौटनेका सङ्केत करते हुए कहा कि उसे शीशम मिल गया है।

वह एक बिलकुल ऊसर स्थान था और वहाँ एक भी पेड़-पौदा नहीं था। इस व्यक्तिने अपनी गाड़ी गाँवकी ओर लौटा दी लेकिन अधिकांश लोग आगे बढ़ते ही गये। कुछ थोड़ेसे लोग, जिन्होंने इसकी बात पर एकदम अविश्वास नहीं किया और जिन्होंने इसकी बातको परखनेका निश्चय किया, इसके साथ लौट पड़े।

अपने गाँवमे पहुँचकर उस आदमीने अपनी गाड़ीके पिछले हिस्सेमें से एक पतला तख्ता लकड़ीका काट लिया और उससे आवश्यक आकार के दो नये खूँटे गढ़ लिये। उसके साथ लौटे हुए दूसरे किसानोंने भी उसका अनुकरण किया।

उस गाँवकी सभी गाड़ियाँ शीशमकी बनी हुई थीं।

× × ×

मेरे कथागुरुका कहना है कि उस गाँवमें वनदेवकी पूजाका अनुष्ठान छोटे पैमानेपर प्रारम्भ हो गया है और उन लौटे हुए लोगोंमे से कुछ लोग अपने दूर गये ग्राम-जनोंको लौटानेके लिए निकल पड़े है। कथा-गुरुका यह भी सङ्केत है कि आजके मनुष्यकी बड़ीसे बड़ी आवश्यकता की पूर्ति उसके प्राप्त साधनोंमे पहलेसे ही मौजूद है; उसकी ओर केवल उसका ध्यान जानेकी ही देर है।

ठूँठ महल

एक राजाने एक बड़ा महल बनवाना प्रारम्भ किया। एक-एक करोड़ राजोंकी तीन टोलियाँ इस महलको बनानेमें लगाई गईं। समय पाकर राजा बूढ़ा हुआ और मर गया। मरनेसे पहले वह अपने पुत्रको राज्य सौंपकर उसे आदेश दे गया कि महलके निर्माणका काम वैसा ही जारी रहे।

युवराजके राज-सिंहासनपर बैठनेके बाद भी महलका काम चलता रहा, अलबत्ता नये राजाने राजोंकी एक टोलीको अनावश्यक समझकर कामसे अलग कर दिया। दो टोलियाँ—एक वह जो मकानोंको सुदृढ़ बनानेके ज्ञानसे सम्पन्न थी और दूसरी वह जो उन्हें सुन्दर बनानेकी कलामें दक्ष थी—इस काममें लगी रहीं।

तैयार होकर हिमालयसे भी अधिक सुदृढ़ और इन्द्र-भवनसे भी अधिक सुन्दर हजार मञ्जिलका यह महल स्वर्गलोकतक जा पहुँचा।

इस महलकी खुली छतपर ही देवताओंने सभा करके इसके निर्माताको बधाई दी।

राजा स्वर्गलोकमें ही था और इस समय इस सभामें भी उपस्थित था। उसने सभामें खड़े होकर भरे हुए स्वरमें कहा :

"मैंने इस भवनके निर्माणके लिए वास्तु-विज्ञानके शक्ति, सौन्दर्य और अभिप्राय नामके तीनों विभागोंके सुदक्ष राजोंको उसमें नियुक्त किया था। मेरे पुत्रने मेरे बाद अभिप्राय विभागके राजोंको अलगकर महलको एक अत्यन्त सुदृढ़ और परम सुन्दर स्वर्ग-चुम्बी महल तो बना दिया है पर उसका कोई अभिप्राय नहीं रह गया है। मैं इस महलको स्वर्गको छूनेके लिए आकाशकी ओर नहीं बढ़ाना चाहता था बल्कि इसकी छतोंको धरती

की उन सभी दिशाओंमें वहाँके निवासियोंके आश्रयके लिए फैला देना चाहता था जहाँ वृक्ष उगते नहीं और जहाँकी मिट्टी पानीको नहीं पकड़ती। अभिप्रायके पथप्रदर्शनके बिना शक्ति और सौन्दर्यकी कृतियाँ व्यर्थ हैं। मैं अपने पुत्रकी मूर्खतासे बहुत दुखी हूँ।"

कहा जाता है कि अभिप्राय विभागके एक करोड़ ज्ञाताओंके उस राज-पुत्र द्वारा बेरोज़गार कर दिये जानेपर वे इस पृथ्वीको छोड़कर कहीं अन्यत्र जा बसे और तबसे उस वर्गके राजोंका इस धरतीपर अभीतक अभाव बना हुआ है। शक्ति और सौन्दर्यके कारीगर उस महलको स्वर्ग तक ले जानेके बाद अब पाताल तक उसके तहख़ाने बनानेमें संलग्न हैं और वह महल एक सूखे ठूँठकी तरह धरतीपर खड़ा हुआ है।

पत्थरके घोड़े

एक धनी सेठकी अत्यन्त रूपवती कन्या एक बार अपनी कुछ सहेलियों और नौकरों-चाकरोंको लेकर देशाटनको निकली।

उसकी सवारी जब एक तीर्थ-स्थानके समीपवर्ती निर्जन वनमें होकर जा रही थी तब सामनेसे आता हुआ एक अत्यन्त सुन्दर अश्वारोही युवक उसे दीख पड़ा। रूपका आकर्षण हो या संस्कारकी बात, दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हो गये।

तरुणीका मन खो गया। पर उसने जैसे-तैसे कुछ स्थानोंकी यात्रा की और अपने नगरको लौट आई।

अपने पितासे उसने सब बात कह दी और उसकी आज्ञा लेकर अपने रथपर सवार अपने अज्ञात-नाम और अज्ञात-वास प्रेमीको खोजने निकल पडी।

एक वर्ष तक उसने दूर-दूरकी यात्रा की, पर व्यर्थ। घर लौट कर उसने दूसरी, और भी व्यापक यात्राकी तैयारी की। देशकी घुड़-हाटोंमें प्राप्य सबसे अच्छे घोडों और सबसे अधिक विज्ञ सारथीको उसने अपनी सेवामें लिया और दूसरी यात्राके लिए निकल पडी। दो वर्ष तक उसने देशका कोना-कोना छाना पर अपना प्रियजन उसे अब भी न मिला।

हताश और निराश वह अपने भवन में आकर पड रही।

इसी समय एक सौदागर उसके नगरमें आया और उसने इस सुन्दरीसे कहा कि वह ऐसे घोडोंकी जोडी उसे दे सकता है जो निस्सदेह उसे उसके आराध्य प्रेमीके पास ले जा सकते हैं!

सुन्दरीने, अपनी खोज में सफल होने पर व्यापारीके मुँह-माँगे दाम देनेका वचन देकर, यह सौदा कर लिया।

व्यापारीके आदेशानुसार वह तरुणी अपने रथ पर सवार उसी स्थान पर पहुँची जहाँ अपने प्रेमीसे उसका साक्षात्कार हुआ था।

व्यापारीने, जो स्वयं एक अच्छा मूर्तिकार भी था, रथके घोड़े खोल कर उनके स्थानपर दो सुन्दर पत्थरके कटे हुए घोड़े रथमें जुतवा दिये और उस तरुणीकी भी एक सुन्दर प्रस्तर-मूर्ति उस रथ मे बिठा दी।

"ये घोड़े अवश्य ही तुम्हें तुम्हारे इष्ट-जन तक पहुँचा देगें। इस रथ और घोड़ोकी देख-रेखके लिए एक सेवकको यहाँ नियुक्त कर तुम अपने भवन में निश्चिन्त भावसे रह सकती हो।" उसने कहा।

सब अपने-अपने घर चले गये।

अगली पूर्णिमाके दूसरे दिन ही रथ और घोड़ोका संरक्षक वह सेवक सुन्दरीके आराध्य युवकको साथ लिये हुए सुन्दरीके भवन मे आ पहुँचा।

× × ×

वह युवक भी, जो पड़ोसके राज्यका एक राजकुमार था और अपनी आराध्या सुन्दरीकी खोज मे देश-विदेशकी धूल छान कर थक गया था, अब हर पूर्णिमाको अपनी हृदयेश्वरीके मिलन-तीर्थपर स्मृतिके आँसू चढ़ाने आया करता था।

× × ×

जब लक्ष्यकी दिशा अज्ञात हो तब अनिश्चित दिशाओं मे वेगके साथ दौड़ने वाले घोड़े नहीं, किसी निश्चित स्थान पर ठहरे रहने वाले पत्थरके घोड़े ही लक्ष्यकी प्राप्ति करा सकते हैं।

महान् शिक्षक

एक युवक साधु बड़ा चरित्रवान् और तेजस्वी था। चरित्र-गठन और ब्रह्मचर्यसम्बन्धी उसकी शिक्षाओंका नगरके लोगोंपर बहुत प्रभाव पड़ता था।

संयोगवश उसके रूप और तेजका नगरकी कुछ युवतियोंपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे उसकी ओर आकृष्ट होने लगीं और धीरे-धीरे वह साधु युवक भी उनके प्रेम-जालमें फँस गया।

रातको उन तरुणियोंके साथ प्रेम-लीलाएँ और दिनको सदाचार और ब्रह्मचर्यके उपदेश—यही उस साधुकी अब दिनचर्या हो गई।

धीरे-धीरे साधुके पतनकी बात नगरमें फैल गई। ऐसी बात छिपी भी कब तक रह सकती थी!

नगर-वासियोंमें उस साधुकी तरह-तरहकी आलोचनाएँ होने लगीं। नगरके कुछ प्रतिष्ठित बड़े-बूढ़ोंने उसे समझाया कि वह अपना चरित्र सुधारे, और अगर ऐसा न कर सके तो ब्रह्मचर्योपदेशका अपना पाखण्ड बन्द कर दे। उन्होंने कहा कि जिसका चरित्र गिरा हुआ हो, उसे दूसरोंको चरित्रवान बननेका उपदेश देनेका कोई अधिकार नहीं है, और न उसके उपदेशका कोई प्रभाव ही पड़ सकता है।

लेकिन वह युवक साधु अपना चरित्र न सम्हाल सका। फिर भी उसने अपने उपदेशका सिलसिला बन्द न किया।

अब लोग उसकी शिक्षाओंपर हँसने लगे। उसकी बात सुननेवालों-की संख्या घटते-घटते बहुत कम हो गई। बड़े-बूढ़े अपने नवयुवक बच्चोंको उसके पास जानेसे रोकने लगे। अपने अति विलासके कारण वह धीरे-धीरे बहुत दुबला और रोगी हो गया। उसकी प्रेमिकाओंने भी उसका साथ छोड़ दिया।

अब वह अपने मठकी कोठरीमे अकेला पड़ा कुछ लिखता रहता। इक्का-दुक्का कोई उधरसे आ निकलता तो वह उसे वही सदाचार और ब्रह्मचर्य की शिक्षा देने लगता, और जब अकेला रह जाता तो फिर उन्हीं शिक्षाओंको कागजके पन्नोपर उतारने लग जाता।

कुछ दिन बाद नगरमें महागुरुका पदार्पण हुआ। सारा नगर, और वह युवक साधु भी, उन्हींका शिष्य था।

महागुरुका उपदेश सुननेके लिए सारा नगर उमड़ पड़ा। कुछ उपदेश-प्रवचनके पश्चात् उन्होंने दूर कोनेमे बैठे हुए उस चरित्र-भ्रष्ट साधुकी ओर सकेत करके कहा :

"अपना यह परम शिष्य मैंने तुम्हारे नगरके लिए एक महान् शिक्षक के रूपमे यहाँ रक्खा था। चरित्र और ब्रह्मचर्य सम्बन्धी अत्यन्त गहरी, मार्मिक शिक्षाएँ इसने तुम्हे दी है। अपने चरित्रमें पूर्व संस्कारोके अनुसार कुछ दुर्बलता आ जानेके कारण इसका चरित्र स्थिर नहीं रह सका। फिर भी इसने तुम लोगोको सदुंपदेश देनेका अपना कर्तव्य नही छोड़ा। तुमने इसके दिखाये हुए सत्य की ओर ध्यान न देकर इसके व्यक्तित्वपर ही अपनी दृष्टि स्थिर की। यह तुम्हारी बहुत बड़ी अपात्रता रही। किसी भी व्यक्तिके कहे हुए सत्यको अपने हृदयमे, और बुद्धिकी कसौटीपर रक्खो, उसके व्यक्तित्वके पीछे मत पड़ो। जब तुम ऐसा कर सकोगे तभी अनुकरण और अनुगमनकी दासतासे मुक्त होकर सच्चे जीवनके अधिकारी बनोगे और तभी अपने स्वजनोके साथ न्याय करना भी सीख सकोगे। 'उदाहरण उपदेशसे श्रेष्ठ' का सिद्धान्त केवल नादानोंके लिए है। अपने प्रवचनमे असफल हो जानेपर लेखन द्वारा इसने जो कुछ कार्य कर रक्खा है उसका लाभ इस नगरकी अनेक पीढ़ियाँ उठाती रहेंगी।"

यह कहकर महागुरुने उस रुग्ण-काय साधुको अपने पास बुलाया और उसे बाहोंमे भरकर उसका माथा चूम लिया।

कामदाकी देन

तीन मनुष्य कामदा देवीके दर्शनको चले। यह प्रसिद्ध था कि कामदा देवीके मन्दिरमें जो भी कामनाएँ लेकर लोग जाते हैं वे अवश्य पूरी होती हैं। इन तीन मनुष्योंमें एक व्यापारी था और उसे व्यापार बढ़ानेके लिए एक बड़ी धन-राशिकी आवश्यकता थी; दूसरा रोगी था, वह वैद्यों-हकीमोंसे निराश होकर अब देवीसे स्वास्थ्य-दान माँगने जा रहा था; और तीसरा तीर्थ-व्रत और सत्सङ्गका प्रेमी था और जहाँ कहीं भी देवी-देवताओं और महात्माओंके समाचार पाता था उनके दर्शन करने पहुँचता था जिससे कि वह मृत्युके पश्चात् भव-सागरसे पार होकर मुक्तिको प्राप्त कर सके और दुबारा उसे संसारमें न आना पड़े।

तीनोंके सिरोंपर देवीकी भेंट-पूजा और अपनी भी भोजनादिकी सामग्रीके बोझ थे। तीनों आपसमें बातें करते हुए जा रहे थे। बात-चीतमें मुक्तिकी कामना वालेका पल्ला सबसे भारी था। वह कह रहा था :

"धन और शरीरकी नीरोगता संसारकी छोटी वस्तुएँ हैं। इनसे मनुष्यका कल्याण नहीं उल्टा संसारमें बन्धन और बन्धनसे कष्ट ही बढ़ता है। मनुष्यको इन सभी नीच कामनाओंका त्याग करके केवल संसार-सागरसे पार होकर मुक्त होनेकी कामना करनी चाहिए क्योंकि उसका वास्तविक लक्ष्य यही है।

दूसरे दोनों यात्री उसके इस उपदेशको सुन रहे थे और मान रहे थे कि अभी वे संसारके साधारण जीव ही हैं और उनकी इतनी ऊँची गति नहीं कि मुक्ति जैसी वस्तुकी कामना कर सकें।

कुछ दूर चलनेके बाद राह-किनारे एक वृक्षके नीचे बैठा एक गँवार-सा हट्टा-कट्टा आदमी उन्हें दिखाई दिया। इनके समीप पहुँचनेपर वह उठ खड़ा हुआ और इनसे बोला :

"मैं ग़रीब आदमी हूँ। आप लोगोंके सिरोंका बोझ मै अपने ऊपर लादकर कामटा देवीके मन्दिर तक पहुँचा दूँगा। इसके बदलेमें आप लोग मुझे, यदि आपके पास बचे तो, एक-एक पत्तलका सीधा या कुछ पैसे दे देंगे तो मेरे और मेरे बच्चोंके एक बारके भोजनका काम चल जायगा।"

ये तीनों यात्री इस समय तक पर्याप्त थक गये थे और बोझके कारण चलना इन्हें और भी भारी पड़ रहा था। अस्तु रोगी और व्यापारीने सहर्ष अपने-अपने बोझ उस आदमीको दे दिये परन्तु मुक्ति-कामी भक्तने अपना बोझ नहीं दिया। उसने कहा :

"देवी-देवताओं और साधु-महात्माओंके दर्शनके लिए पाँव-पयादे जानेमें जो बड़ा पुण्य है वह तभी पूरा उतरता है जब उनकी भेंट-पूजाकी सामग्रीको भी अपने सिरपर ही लेकर यात्रा की जाय।"

देवीके स्थानपर पहुँचकर जब उन तीनोंने उसकी विधिवत् पूजा की तो देवी प्रसन्न होकर प्रकट हो गईं। रोगीके सिरपर हाथ रखकर उसने तुरन्त उसे नीरोग कर दिया और व्यापारीको आशीर्वाद दे दिया कि घर पहुँचते ही उसे अभीष्ट धनकी प्राप्ति हो जायगी। इसके पश्चात् तीसरे यात्रीको लक्ष्यकर उसने कहा :

तुम्हारी कामना सबसे अधिक ऊँची और आदरणीय थी। परन्तु उसकी पूर्तिकी मेरी पहली ही भेंटको तुम अस्वीकार कर चुके हो और अब आगे कुछ कर सकना मेरे लिए असम्भव है। पूर्ण मुक्तिकी पहली और आवश्यक मात्राके रूपमें मैंने तुम्हारे सबसे निकट सिरके बोझसे तुम्हें मुक्ति दिलानेके लिए उस भारवाही मनुष्यको भेजा था, परन्तु भोजन-सामग्रीके कम पड़ जानेके भयसे, कुछ पैसोंके लोभ और कुछ उस गठरीके अपहरणकी भी आशंकासे तुमने वह बोझ अपने सिरसे नहीं उतारा। तब फिर दूसरे, और भी बड़े एवं सूक्ष्म बोझोंसे मुक्त होनेके लिए तुम कैसे तैयार हो सकते हो? तुम्हारी उस पवित्र कामनाके प्रतापसे तुम्हारे सङ्गके

कारण तुम्हारे दूसरे साथियोंको मुक्तिका थोड़ा-सा लौकिक प्रसाद प्राप्त हो गया था पर तुम उसके भी अधिकारी नहीं सिद्ध हुए।"

× × ×

मेरे कथा-गुरुकी टिप्पणी है कि निस्सन्देह मुक्तिकी कामना ही सबसे ऊँची और आदरणीय कामना है और संसारकी छोटी-बड़ी, बुरी-भली सभी कामनाओंका वास्तविक ध्येय मुक्ति ही है और मनुष्यके जीवनमें उसकी माँग निरन्तर धन-स्वास्थ्य आदिकी माँगोंके बीच भी समाई रहती है; परन्तु वास्तविक मुक्ति मृत्यु या दीर्घकालके पश्चात् प्राप्त होनेवाली कोई वस्तु न होकर पल-पलपर और पल-पलके लिए प्राप्त होनेवाली एक सरलतम रहस्यमयी वस्तु है। उनका यह भी कहना है कि मनुष्यको इस परम पदार्थको देने या इसके वञ्चित रखनेका सामर्थ्य संसारकी किसी भी कामदा देवी या काम-हर देवको नहीं है और वह स्वयं ही इसकी प्राप्ति या अप्राप्तिका अधिकारी बन सकता है।

विश्वास या उदारता

दो युवक और एक युवती, तीनो एक ही गुरुकुलके स्नातक थे और तीनोंमें गहरी मित्रता थी। गुरुकुलसे निकलकर तीनोंने ही अविवाहित रहकर अपनी-अपनी रुचिके अनुकूल जीवनके अलग-अलग क्षेत्रमे प्रवेश करनेका निश्चय किया। एक युवकने शिक्षाका क्षेत्र अपनाया, दूसरेने व्यापारका और युवतीने कलाका। तीनोंने अपने-अपने क्षेत्रमे विशेप ख्याति भी प्राप्त की। दोनों युवक एक ही नगरमें रहते थे और युवती दूसरेमे।

कुछ समय बाद इस युवतीके बारेमे चर्चा उठी कि उसका किसी युवकसे प्रेम हो गया है और यह चर्चा तेज़ीके साथ फैलने लगी। उस समय और समाजमे किसी युवतीका किसी युवकके साथ प्रेम होना, विशेपकर विवाहसे पहले प्रेम होना, सबसे बड़ा आचारिक पाप माना जाता था; और एक सुशिक्षिता स्नातिकाके लिए तो यह बड़े ही कलङ्ककी बात थी। युवतीने इस चर्चाका प्रतिवाद किया लेकिन एक बारकी फैली वह खबर फैलती ही गई।

स्थानीय जन-समाजकी माँगपर गुरुजनोंकी सभाने युवतीको उपस्थित होकर अपनी सफ़ाई देनेका आदेश भेजा। जिस युवकके साथ उसका सम्बन्ध बताया गया था उसे भी बुलाया गया। युवतीने अपने गुरुकुलके घनिष्ठतम साथी दोनो युवकोंको भी अपनी सहायताके लिए आमन्त्रित किया। उनमेसे एक, अध्यापक मित्रने उसकी भरपूर सहायता की और उसे निर्दोप प्रमाणित करनेमें अपनी ओरसे कोई कसर उठा न रखी। लेकिन दूसरा व्यवसायी मित्र अलग और मौन रहा। अभियुक्ता युवती और अभियुक्त युवक दोनोंने ही उस सभामे घोपित किया कि उनका आपसमें वैसा कोई प्रेम या सम्बन्ध नहीं है। गुरुजनोंको दोनों अभियुक्तोंके

विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं मिला और उन्होंने दोनोंको कुछ चेतावनियाँ और कुछ उपदेश देकर छोड़ दिया।

लेकिन इस सबसे भी समाजमें उस युवकके साथ युवतीके वैसे प्रेम-सम्बन्धकी चर्चा समाप्त नहीं हुई और उसपर उठनेवाली उँगलियोंकी संख्या बढ़ती ही गई।

युवतीके अध्यापक मित्रने, जो उसे अपनी परम प्रिय धर्म-बहिन मानता था और उसके सदाचरणपर कभी भी सन्देह नहीं कर सकता था, उसका आगे भी बहुत पक्ष लिया और समाजमें उसके सम्मानकी पुनः स्थापनाके लिए पूरा प्रयत्न किया। व्यापारी मित्रकी उदासीनता और सहानुभूतिहीन तटस्थतासे युवतीके हृदयको बड़ा आघात लगा।

कुछ समय और बीतनेपर वह युवती कुछ अस्वस्थ हुई। उसने निश्चय किया कि उसे कुछ महीने किसी एकान्त और स्वास्थ्यप्रद स्थानमें विताने चाहियें। उसकी अस्वस्थता और तत्सम्बन्धी इस निश्चयकी सूचना सूचना-समितियों द्वारा दूर-दूर तक फैल गई। वह देशकी एक प्रसिद्ध कवियित्री और गायिका थी और ऐसी प्रसिद्ध व्यक्तियोंसे सम्बन्धित समाचारोंके प्रसारणकी सुविधाएँ उन दिनों भी कम न थीं।

अनेक मित्रों और सज्जनोंने उसे अपने स्थानपर निमन्त्रित करनेके सन्देशे भेजे। उनमें स्वभावतया उस अध्यापक मित्रका ही निमन्त्रण सर्वप्रथम था। लेकिन युवतीको कुछ आश्चर्य हुआ, व्यवसायी मित्रने भी उसे अपने यहाँ आनेके लिए एक पत्र लिख भेजा था। उसने दोनों मित्रोंको अलग अलग लिख भेजा कि वह उनका निमंत्रण स्वीकार करती है और वे अमुक दिन अमुक समयपर अपने नगरकी जन-यान-शालामें आकर उसे ले जायँ।

दोनों मित्र निश्चित समयपर जन-यान-शालामें उसे लेने पहुँचे। पहला उसकी सवारीके लिए एक घोड़ा ले गया, दूसरा एक रथ। युवतीने रथपर जाना पसंद किया और अपने कृपालु अध्यापक मित्रसे कहा कि

वह कुछ समय इस दूसरे मित्रके घर विश्राम करके तब सुविधापूर्वक उसके घर आयेगी और तभी निर्णय करेगी कि उसे किसके आयोजित निवासमें रहना अधिक सुविधाजनक रहेगा।

युवती दूसरे मित्रके साथ उस स्थानपर पहुँची जो उसने उसे ठहराने के लिए नियुक्त किया था। बस्तीसे कुछ दूर बने इस घरको दिखाते हुए इस व्यवसायी मित्रने कहा :

"बहिन, मैंने तुम्हारे निवासके लिए इस एकान्त-स्थित घरको भाड़े पर ले लिया है। इसमें एक स्त्रीके ही नहीं एक स्वजन पुरुष और एक नवागत शिशुके भी स्वागत और सुखपूर्वक निवासकी पूरी व्यवस्था है।"

युवतीने अपने घुटनोंपर बैठकर इस मित्रके कटिप्रदेशको अपनी बाहोंमें बाँध लिया और उसकी आँखोंसे झर-झर आँसू बरस पड़े। गद्-गद् कण्ठ से उसने कहा :

"मेरे सहृदय मित्र, संकटके साथी और सहोदरसे अधिक बन्धु संसारमें तुम्हीं हो। तुम्हारे ऐसे उदार आश्रयकी ही मुझे इस समय आवश्यकता है।"

इसके पश्चात् जो कुछ हुआ उससे सदाचरणशील गुरुजनोंके भी एक वर्गकी कुछ ऐसी मान्यता हो गई कि मित्रके प्रति पक्षपात एवं अन्ध-विश्वासपूर्ण धारणाएँ रखनेवाला नहीं उसकी मानवीय दुर्बलताओं का उचित अनुमान रखकर उसके प्रति सदैव उदार रह सकनेवाला मित्र ही सच्चा मित्र है।

सिद्ध और सज्जन

किसी युगमें विशाल महासागरके बीच बसा हुआ भूखण्ड मणिकाखंड और मणिवाखंड नामके दो बड़े भागोंमें विभक्त था। मणिवाखंडके सागर-तट-वर्ती प्रदेशमें महामनु वैवस्वत अपनी प्रजाके साथ निवास करते थे। उस समय महामनुके दो पुत्र थे। बड़ेका नाम था 'सिद्ध' और छोटेका 'सज्जन'।

एक बार महामनुने अपने दोनों पुत्रोंको बुलाया और उन्हें तीन-तीन सहस्र पत्नियाँ देकर आदेश दिया कि वे पूर्वकी ओर निष्क्रमण करें, जिससे सुविधा-जनक स्थानों पर प्रजाजनके विस्तारके लिए नये उपनिवेशोंका निर्माण-कार्य सुगम हो।

सिद्ध और सज्जन अपनी तीन-तीन सहस्र पत्नियोंको साथ लेकर पूर्वकी ओर चल दिये। तीन वर्षकी सुविधा-पूर्ण यात्राके पश्चात् उनके मार्गमें एक अत्यन्त दुर्गम, गहन वन आ गया।

दोनों भाइयोंने उस वनके देवताका आवाहन किया और उससे कहा कि वह उनके दलको आगे बढ़नेका मार्ग दे।

वन-देवताने कहा : "मनु-पुत्रो! मैंने आज तक किसीको भी अपने अन्तःप्रदेश में होकर पार जानेका मार्ग नहीं दिया। तुममें सामर्थ्य हो तो अपना मार्ग मेरे बीचसे स्वयं निकाल लो।"

इस पर सिद्धको क्रोध आ गया। उसमें असाधारण शक्तियाँ थीं और वह सब कुछ कर सकता था। सिद्धने अपनी आग्नेय सिद्धिका आवाह्न किया और अपने मार्गके सामनेकी वनराशिको उससे जलाकर वनके आर-पार एक चौड़ा पग-पथ निकाल लिया। अपनी पत्नियोंको लेकर वह वनके पार निकल गया। किन्तु सज्जनने उस वनके किनारे एक उपनिवेश बनाया और अपनी एक सहस्र पत्नियों और उनकी नव-जात संततिको वहाँ

बसाकर धीरे-धीरे उस वनके बीच कुछ सुविधा-जनक मार्ग भी बना लिये। इस कार्यमें सज्जनको दस वर्ष लग गये।

उधर सिद्ध उस गहन वनको पार कर अविराम गतिसे अपनी पत्नियों सहित आगे बढ़ता गया। सात वर्षको यात्राके पश्चात् उसके मार्गमें एक विशाल, दुर्गम-काय पर्वत आ गया। सिद्धने पर्वतके देवताका आवाहन कर उसी प्रकार उसे भी मार्ग देनेका आदेश दिया। पर्वतके देवताने भी उसे वन-देवताका जैसा उत्तर दिया और उस पर सिद्धने अपनी वायु-सिद्धिका आवाहन कर पर्वतको तोड कर उसके आर-पार एक चौड़ी दरार डाल दी और उसमें होकर अपनी पत्नियों सहित आगे बढ़ गया।

बारह वर्ष तक और यात्रा करनेके पश्चात् सिद्ध मणिकाखंडके महा-सागर-तट पर पहुँच गया। सागरके देवतासे भी सिद्धने उसी प्रकार मार्ग माँगा और उसके भी वैसे ही उत्तर पर अपनी धरा-सिद्धि द्वारा सागरको दो भागोंमें चीरता हुआ उसके गर्भसे धरतीका एक ऊँचा भू-मार्ग अपने लिए निकाल लिया।

आधी शताब्दीमें सागर-पथकी लम्बी यात्रा पूरी करके सिद्ध अपनी तीन सहस्र पत्नियों सहित जब उस महासागरके पार पहुँचा तो उसने अपने आपको अपने पिता महामनुके मणिवाखंड-स्थित प्रदेशमें ही पाया। इतनी लम्बी यात्रा करनेके पश्चात् भी वह कैसे पुनः जहाँका तहाँ ही उपस्थित रहा, यह सिद्धके लिए उस समय एक बड़े आश्चर्यकी बात हुई किन्तु महामनुके (और आजके भूगोल-वेत्ताओंके भी) लिए एक बहुत सरल-सी बात थी।

महामनुने इस पुत्रका इसके परिकर समेत बहुत उदासीन-भावसे स्वागत करते हुए कहा :

"मानव-उपनिवेशोंके विस्तारकी कामनासे सज्जनके साथ तुम्हे भी बाहर भेजकर मैंने केवल एक भूल ही की थी। मानव-विकासकी अगली युग-युगकी योजनाओंके लिए बाधाओंको चीर कर निरन्तर बढ़नेवाले

गतिमानोंकी नहीं, बाधाओंके अंकमें ठहरकर उनमें आवास बना सकने वाले कुशल कर्मियोंकी ही आवश्यकता है। वास्तवमें मानव-वंश और उसकी समृद्धियोंका विस्तार करनेका समर्थ अधिकारी सज्जन ही है और तुम तथा तुम्हारी संतति उसकी अनुगामी और आश्रित होकर ही रह सकते हैं।

× × ×

कुछ समय पीछे महामनु वैवस्वतने सिद्धकी तीन सहस्र पत्नियोंसे उत्पन्न तीन लाख सन्ततिजनोंको लेकर पूर्वकी ओर प्रस्थान किया और उनमेंसे एक लाखको गहन-वनके दोनों छोरों पर बसाये हुए सज्जनके दो नगरोंमें छोड़कर शेष दो लाखको सज्जनकी तीसरी, गिरि-अंचल-प्रदेशकी बस्तीके निर्माणकार्य में सहायता देनेके लिए नियुक्त कर दिया। कहते हैं कि प्रस्तुत युग तक सज्जनकी ही सन्ततिने मग्निवाखंडसे लेकर माश्रिकाखंड तक की भूमिपर अगणित मानव-बस्तियोंका निर्माण किया है और सिद्धकी बची-खुची संतति, अपनी पैतृक सिद्धियोंसे सम्पन्न होती हुई भी, स्थैर्य-बुद्धिसे रहित होनेके कारण सज्जन-वंशकी आश्रित और अनुकर्मी होकर ही जीवन-यापन कर रही है।

दो प्रतिद्वन्द्वी

शस्त्र और शास्त्र दोनों विद्याओंमें, तथा रूप और पौरुष दोनों सम्पदाओंमें मेरा समकक्ष एक गुरुभाई था और हम दोनोंमे गहरी मित्रता थी।

संयोगवश नगरकी एक ही तरुणीसे हम दोनोंका प्रेम हो गया। वह थी भी नगरकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी। वह हम दोनोंको प्रेम और सम्मानकी दृष्टिसे देखती थी किन्तु उसका आग्रह था कि हम दोनोंमेंसे जो अधिक श्रेष्ठ होगा उसे ही वह वरण करेगी।

अब हम दोनो मित्र एक दूसरेके प्रतिद्वन्द्वी हो गये। नगरकी सुन्दरियों मेंसे कुछ मेरी और कुछ मेरे मित्रकी प्रशंसिका बनकर दो दलोंमें विभक्त हो गईं।

हम दोनोंके बीच प्रतियोगिताके कई प्रदर्शन हुए और अन्तमें अश्वारोहणमें मेरा मित्र मुझसे बाजी ले गया।

मेरे मित्रकी प्रशंसिकाओंकी गगन-भेदी करतलध्वनिके बीच उस सुन्दरीने मेरे प्रतिद्वन्द्वीके गलेमें वरमाला डाल दी। इससे मेरी प्रशंसिकाओंको मन ही मन बड़ी निराशा हुई।

अगले दिन अपने प्रतिद्वन्द्वी मित्रके प्रीति-सम्मानमें मैंने उसी प्रतियोगिताके बड़े मैदानमे एक बड़े भोजका आयोजन किया। नगरकी सभी सुन्दरियों और प्रतिष्ठित जनोंको भी उसमें निमंत्रित किया।

नृत्य-संगीतके साथ-साथ भाँति-भाँतिके कौशल-प्रदर्शनका भी उस समारोहमें आयोजन था। उस प्रदर्शनके बीच मैं अपने तैयार किये हुए घोड़ेकी पीठपर जा लपका और जिस वेगसे दौडकर मेरे प्रतिद्वन्दीने पिछले दिन मुझे पराजित किया था उसके दूने वेगसे, आधे समयके भीतर ही मैंने उस विस्तृत भूमिकी एक परिक्रमा पूरी कर दी।

मेरी प्रशंसिकाओंके चेहरे गर्वसे खिल उठे और दूसरे वर्गकी सुन्दरियोंकी गर्दनें नीचे झुक गईं। मेरे मित्रकी नवविवाहिता वधू मूर्च्छित-सी होकर धरतीपर गिरने लगी। मैंने स्वयं दौड़कर उसे सम्हाला।

"मुझे धोखा हुआ। जिसे मेरा पति होना चाहिए था वह मुझसे छिन गया। कल तुमने अपना यह पराक्रम क्यों नहीं प्रदर्शित किया?" उसने भर्राये हुए कण्ठसे मुझसे कहा।

"तुम केवल एक नारी हो। तुम्हें पानेके लिए मैं जितना पराक्रम प्रदर्शित कर सकता था उसकी एक सीमा है और मेरे सम्पूर्ण पराक्रमकी दूसरी। तुम्हारे लिए भला मैं अपने पूरे पराक्रमका प्रदर्शन क्यों करता? हम दोनोंके बीच किसी एकका वरण करनेके लिए हमारे सम्पूर्ण पराक्रम को चुनौती देना तुम्हारे लिए कहाँ तक उचित था?" मैंने क्षोभ और तिरस्कार मिश्रित प्रतिशोधके-से स्वरमें कहा।

मेरी इस प्रताडनासे उस सुन्दरीको और भी कठिन आघात लगा। उसकी आखोंसे आँसुओंकी धारा फूट निकली। मैं मौन होकर उसके पश्चात्तापका रस लेने लगा। मेरा प्रतिद्वन्द्वी मित्र भी कुछ देर तक चुपचाप अपनी नव-वधूकी इस विवशताको देखता रहा और फिर उसे अपनी भुजाओंके सहारे उठाते हुए उसने कहा:

"निस्सन्देह मेरे प्रतिद्वन्द्वी मित्रने कल अपने पूरे सामर्थ्यका प्रदर्शन नहीं किया था लेकिन इससे तुम यह कैसे मान लेती हो कि मैंने किया था। उठो, अपने वरणमें तुम किसी घाटेमें नहीं हो। हम दोनों मित्रोंका पराक्रम समान है और किसी प्रतियोगिता द्वारा उसकी पूरी माप कभी नहीं की जा सकती।"

उसने अपनी पत्नीको मेरी भी प्रेयसी बनी रहनेकी अनुमति दे दी और नगर-सुन्दरियोंके दोनों वर्ग फिर एक होकर हम दोनोंके समान रूपसे प्रशंसक बन गये।

प्रश्नका दान

एक राजाने अपनी सारी सम्पत्ति ब्राह्मणों और निर्धनोंको दान करके आत्मचिन्तनके लिए वनमे जानेका निश्चय किया। निश्चित दिन जब वह अपना सारा कोष बाँट चुका तब एक निर्धन बनिया उसके दरबारमे पहुँच गया। राजा क्षणभरके लिए सोचमे पड़ गया और दूसरे ही क्षण उसे पास बुलाकर बोला :

"मेरे पास अपने कोषमेसे देनेके लिए अब ताँबेकी भी एक मुद्रा शेष नहीं रह गई है। लेकिन मै तुम्हें खाली हाथ नहीं लौटाऊँगा। मै तुम्हे एक विचार दूँगा जिससे तुम सदैव मालामाल रहोगे। वह विचार यह है कि लक्ष्मी चञ्चला है।",

राजा अपने दान-मण्डपसे उठने ही वाला था कि एक ग़रीब ब्राह्मण और वहाँ आ पहुँचा। राजाके हाथ रीते देखकर उसे बड़ी निराशा हुई: लेकिन राजाने उसे सान्त्वना देते हुए कहा :

"विप्रवर! मै अपनी सारी सम्पत्ति और सम्पत्ति सम्बन्धी अपना सबसे बड़ा विचार भी दान कर चुका हूँ, लेकिन फिर भी मै तुम्हें खाली हाथ नहीं लौटाऊँगा। मै तुम्हें एक प्रश्न दूँगा, जिससे तुम परम समृद्धिको प्राप्त करोगे। वह प्रश्न है—'क्या यह राजा मूर्ख है?"

इसके पश्चात् राजाने सभी उपस्थित जनोंको सम्बोधित करके कहा :

'मैने इस निर्धन बनियेको यह विचार दिया है कि लक्ष्मी चञ्चला है और इस दरिद्र ब्राह्मणको प्रश्न दिया है कि क्या यह राजा मूर्ख है?' 'तुम लोगोंमेसे कोई इस विचार और इस प्रश्नके बदले अपनी पाई हुई भेंट इन्हे देकर इस विचार या प्रश्नको लेना चाहे तो ले सकता है।'

कोई भी दान-पात्र इस विचार या प्रश्नसे अपना पाया हुआ दान बदलनेके लिए तैयार नहीं हुआ। उन्होंने कहा :

"महाराज ! आपका विचार बहुमूल्य है और इसे हम पहलेसे ही जानते हैं। शास्त्रोंमें भी बताया है कि लक्ष्मी चञ्चला है· तभी तो देखिये, राजाकी अर्जित की हुई सम्पत्ति आज हम निर्धनोंके पास आ रही है। और आपके प्रश्नका उत्तर तो निर्विवाद है। आपने इतनी योग्यता और बुद्धि-मत्तासे राज्य किया और अब अपना सारा निजी कोष दान करके और अपने पुत्रको राज्यके पालनका भार सौंपकर तपस्याके लिए वनको जा रहे हैं। आपको भला कोई भी समझदार व्यक्ति मूर्ख कैसे कह सकता है?"

अगले दिन राजा वनको चला गया और प्रजाजन अपने-अपने काममें लग गये। लेकिन यह बनिया जो अपना सारा धन सट्टे और जुएके व्यापा-रोंमें गँवाकर निर्धन हो गया था, राजाके दिये हुए उस विचारको अपने मनमें बराबर फेरता रहा। सोचते-सोचते उसने निश्चय किया कि लक्ष्मी चञ्चला है तो वह अधिक समय एक जगह टिक नहीं सकती और इसलिए उसका अधिक संग्रह व्यर्थ और मूर्खतापूर्ण है। उसने अपने किसी स्वजनसे एक स्वर्णमुद्रा उधार लेकर छोटा-सा व्यापार प्रारम्भ किया और अपनी वणिक्-बुद्धिसे शीघ्र ही उसे बढ़ा लिया। इसी व्यापारको बढ़ाते-बढ़ाते उसने बहुत धन कमाया और जब उसके पास अधिक धन एकत्र हो गया, उसने खुले हाथों उसे अपने और लोकहितके कामोंमें खर्च किया। देशमें उसकी बड़ी कीर्ति हुई, व्यापारियोंमें उसकी साख बढ़ गई और वह देशका सबसे बड़ा सेठ बन गया।

उधर वह दरिद्र ब्राह्मण राजाके प्रश्नका अर्थ और उसका उत्तर अपने मनमें खोजने लगा। खोजते-खोजते उसे सूझा कि राजाने सारी सम्पत्ति लुटा दी और उन भिक्षुओंने लूट ली। निःसंदेह इन दोनोंमें एक बुद्धिमान् और दूसरा मूर्ख होना चाहिए। प्रश्नको गहराईतक खोदनेपर वह इस निश्चयपर पहुँचा कि मनुष्य समुचित विचारपूर्वक, निश्चित भावनाके

साथ किसी वस्तुका त्याग तभी करता है जब उसे उससे ऊँची कोई वस्तु प्राप्त हो जाती है; और जहाँ यह त्याग एककालीन न होकर धीरे-धीरे होता है वहाँ ज्यों-ज्यों वह पहली वस्तुका त्याग करता है त्यों-त्यों उसे दूसरी श्रेष्ठतर वस्तु प्राप्त होती है।

इस चिन्तनके क्रममें पड़कर यह ब्राह्मण आत्म-चिन्तनकी गहराइयोंमें उतरता गया और ऋषित्वको प्राप्त होकर देशके एक महान् शिक्षक और पथ-प्रदर्शकके रूपमें उसने बहुत बड़ा आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण किया।

× × ×

मेरे कथागुरुका कहना है कि दान सभी श्रेष्ठ हैं, लेकिन विचारका दान श्रेष्ठतर और प्रश्नका दान ही श्रेष्ठतम दान है। कथागुरुका यह भी संकेत है कि विचारका कहना और सुनना एक बात है और इसका दान सर्वथा भिन्न बात है। इसी प्रकार प्रश्नका पूछना और बताना एक बात है और प्रश्नका दान उससे सर्वथा भिन्न है, और इन दानोंके लिए विशेष दान-सामर्थ्य और विशेषतर दान-कलाकी आवश्यकता है। उनका यह भी संकेत है कि इस सामर्थ्य और कलामें दीक्षित—विशेषकर प्रश्न-दानके सामर्थ्य और कलामें दीक्षित—कुछ व्यक्तियोंका प्रादुर्भाव नये युगके निर्माणके लिए अनिवार्य है।

नया आदर्श

मेरी किसी कृतिसे प्रसन्न होकर ईश्वरने एक बार मुझे अपने स्वर्ग-लोकके महलमें निमन्त्रित किया।

अपने महलके जिस बड़े हॉलमें उसने मेरा स्वागत-सत्कार किया उसकी दीवारोंपर सभी प्रसिद्ध मानव महापुरुषोंके तथा कुछ बड़े देवताओंके भी चित्र टँगे हुए थे। उनमें कृष्ण, बुद्ध, शङ्कर, प्लेटो, पाइथागोरस, कनफ्यूशस, ईसा, सीजर, अशोक, शेक्सपियर, रवीन्द्र, गाँधी आदि महापुरुषोंके चित्र मैं आसानीसे पहचान सकता था।

चित्रोंकी इस गैलरीकी ओर सकेत करके ईश्वरने मुझसे कहा :

"तुम इनमेंसे किसे अपना आदर्श बनाना चाहते हो? तुम किसीको अपना आदर्श चुनो तो वैसा बननेमें मैं तुम्हारी सहायता करना चाहता हूँ।"

मैंने पूरी सावधानीके साथ उन चित्रोंको एक-एक करके देखा और जब सबको देख चुका तब मुझे कहना पड़ा :

"मैं इनमेंसे किसीको भी अपना आदर्श बनानेका हौसला अपने भीतर नहीं देखता।"

उसी समय ईश्वरने तुरन्त अपने चित्रकारको बुलाकर मेरा एक छोटा-सा चित्र बनवाया और उसे भी उस गैलरीमें एक जगह टँगवा दिया।

इतनी ही दूर और

एक रात एक युवकने स्वप्नमें एक अत्यन्त रूपवती तरुणीको देखा। वह एकदम उसपर मोहित हो गया।

"मै भी तुम्हें बहुत चाहती हूँ", तरुणीने उससे कहा, "और तुम्हे पति-रूपमें पाकर अपनेको कृतार्थ मान सकती हूँ। यद्यपि तुम्हारा-मेरा यह मिलन स्वप्नमे हो रहा है फिर भी मै तुम्हारी ही तरह वास्तविक जगत्‌की निवासिनी हूँ। यदि तुम मेरे घर आकर मेरे पितासे मुझे माँगोगे तो वह सहर्ष मुझे तुम्हारे हाथों सौंप देगें।"

उस तरुणीसे कुछ संकेत लेकर यह युवक सवेरा होते ही उसे लानेके लिए यात्रापर निकल पड़ा। तरुणीने बताया था कि उसका घर युवकके घरके सामनेसे पश्चिमकी ओर सीधी जानेवाली सड़कपर ही था।

दिनभर यात्रा करनेके बाद युवक सड़कके किनारे एक गाँवमें विश्रामके लिए ठहर गया। रातमें उसने सपनेमे फिर उस तरुणीको देखा। पूछनेपर उस तरुणीने बताया कि उसका घर उस पडावसे उतनी ही दूर रह गया था जितना वह दिन भरमें चल चुका था। युवकने सन्तोपकी साँस ली कि वह आधी मञ्जिल तय कर चुका है। तरुणीने उसे यह भी बताया कि उसे स्वप्न-योग सिद्ध है और सोते समय जब, जो भी व्यक्ति उसकी याद करे उससे वह तुरन्त ही स्वप्नमें मिल सकती है।

युवकने दूसरे दिनकी यात्रा बड़े उत्साहके साथ पूरी की। रात होते ही वह जिस नगरमें पहुँचा उसने अनुमान लगाया कि वही उस तरुणीका नगर होना चाहिए। सवेरा होनेपर उससे साक्षात् मिलने और रातमे उसे स्वप्नमे निमन्त्रित करनेका विचार करके वह नगरके बाहरी मन्दिरमें सो गया।

याद करते ही सपनेमें उसे वह तरुणी फिर दिखाई दी। पूछनेपर

उसने कहा—"मुझतक पहुँचनेके लिए तुम्हें उतना ही चलना पड़ेगा जितना तुम पिछले दो दिनोंमें चल चुके हो" और अदृश्य हो गई।

युवकको यह संवाद कुछ अप्रिय लगा। उसने सोचा—"पिछली रात तरुणीकी बात सुनने-समझनेमें मैंने कुछ भूल की। कल पिछले पड़ाव तक मेरी यात्रा आधी नहीं, चौथाई ही पूरी हुई होगी।"

तीसरे पड़ावपर रातमें युवकने फिर उसको याद की यद्यपि उसको आशा थी कि उसका नगर अगले दिनकी मञ्जिल पूरी कर लेनेपर आयेगा।

"जितनी दूर तुम अबतक चल चुके हो ठीक उतनी ही दूर और आनेपर तुम मेरे पास पहुँच जाओगे"। सुन्दरीने तीसरे पड़ावके स्वप्नमें उसे बताया और अदृश्य हो गई।

चौथे पड़ावके विश्राममें स्वप्नमें निमन्त्रित करके युवकने उस तरुणीसे मञ्जिलकी दूरी पूछनेसे पहले कहा :

"मेरे पिछले प्रत्येक पड़ावको तुमने अपने नगरसे आधी दूर बताया है। यह सुनने-समझने या जागनेपर तुम्हारी बातको ठीक याद रखनेमें मेरी ही कोई भूल है या तुम्हारा ही कोई छल है?"

"न तुम्हारे सुनने और याद रखनेमें कोई ग़लती है और न मेरे कहनेमें ही छल है। इस पड़ावसे भी मेरा नगर उतनी ही दूर है जितना अबतक तुम चल आये हो। इसके पहले तुम्हारे नगरके अनेक सुन्दर युवकोंको मैंने स्वप्न देकर उनसे अनुरोध किया है कि वे मेरे घर आकर मुझे मेरे पितासे माँग लें, लेकिन कोई भी आजतक मेरे घर नहीं पहुँचा। सभीने मेरे लिए छोटी-बड़ी यात्राएँ की और अन्तमें मुझे भ्रम और छलना समझकर उन्होंने मेरा विचार छोड़ दिया; और जो जिस मञ्जिलतक पहुँचा वह वहाँकी किसी असुन्दरी या अर्द्ध-सुन्दरी कन्यासे विवाहकर जीवन-यापन करने लगा। कई वर्षोंसे मैं पतिकी खोजमें इसी प्रकार असफल होती आ रही हूँ। मेरा दुर्भाग्य शायद जीवनभर मुझे अविवाहित ही रखना चाहता

है !' कहते कहते उस अनुपम सुन्दरीकी आँखोंमें आँसू छलछला आये और वह अदृश्य हो गई।

अगली सुबह युवकने अपनी यात्रा फिर प्रारम्भ की। पाँचवें, छठे, और सातवे पड़ावकी रातोंमे उसने उस तरुणीको स्वप्नमे नहीं आमन्त्रित किया। उसने सोचा, बीच-बीचमें उसका आह्वान ही शायद लक्ष्य-नगरको दूर कर देता है। आठवे पड़ावपर स्वप्नमे निमन्त्रित करनेपर जब तरुणीने उसे वैसा ही उत्तर देकर बताया कि उसकी यात्रा उस आठवें पड़ाव तक ठीक आधी हो पाई है तब तो वह एकदम निराश हो गया। लेकिन दूसरे ही क्षण उसने कहा :

"मै तुम्हे भ्रम या छलना नही समझ सकता। तुमसे भिन्न मै किसी अन्य स्त्रीसे विवाह भी नहीं कर सकता। तुमपर यदि मेरा अनुराग सच्चा है तो मैं तुम्हें पाकर ही रहूँगा"।

अगले दिन युवकने यात्रा स्थगित रक्खी। उसने निश्चिन्त भावसे उस दिन और अगली रात पूरे विश्रामके साथ चिन्तन किया।

उससे अगले दिन वह वापस अपने घरकी ओर मुड़ा। आठ दिनोंकी यात्रा करके जब वह अपने नगरमें पहुँचा तो देखा उसके घरसे कुछ ही दूर पहले एक सुन्दरसे भवनके द्वारपर वही तरुणी वरमाला लिये उसकी प्रतीक्षा कर रही थी।

× × ×

मेरे कथागुरुका कहना है कि वह तरुणी अब भी उस नगरके युवकों को वैसे स्वप्न देती रहती है क्योंकि वह उस नगरके सभी प्रेम-समर्थ और बुद्धिमान् युवकोंसे विवाह करना चाहती है।

महत्त्वाकांक्षा

ऊँचे पर्वतकी तलहटीमें एक नगर बसा हुआ था।

वह पर्वत इतना ऊँचा था कि उसकी सबसे ऊँची चोटीपर कोई नहीं पहुँच पाया था। नगरके लोगोंमें अक्सर यह होड रहती थी कि कौन कितनी ऊँची चोटी तक चढ़ सकता है।

इस होडाहोडमें ये लोग अक्सर एक दूसरेके बल और साधनोंको क्षीण करने और उन्हें नीचा दिखानेका भी प्रयत्न करते थे। इसी प्रवृत्तिको लेकर नगरमें अनेक परस्पर विरोधी दल भी बन गये थे।

एक दिन एक दलके दो चढाके पर्वतकी सबसे ऊँची चोटीके पास तक जा पहुँचे।

दो कौए पहलेसे ही उस चोटीपर बैठे हुए थे।

उन आदमियोंको इतने परिश्रमके साथ ऊपरकी ओर चढ़ते देखकर एक कौएने दूसरेसे पूछा :

"आदमियोंकी हरी भरी गुलजार बस्ती छोडकर इस सुनसान, उजाड चोटीपर आनेके लिए ये मनुष्य भला क्यों इतना कष्ट उठा रहे हैं?"

दूसरे कौएने, जो आयुमें बडा और बुद्धिमान् था, उत्तर दिया :

"क्योंकि इन बेचारोंके पंख नहीं हैं।"

श्रवण-उदार

उन दिनो धर्म और दर्शन सम्बधी मेरा अध्ययन बहुत विशाल था और मेरे पाडित्यकी चारो ओर धूम थी। सहस्रोकी संख्यामे बड़े-बडे जिज्ञासु मेरे प्रवचन सुननेके लिए एकत्र होते थे।

मेरे श्रोताओमे एक व्यक्ति, जो प्रति दिन सबसे पहले आकर मेरी सभामे बैठता था, बहुत तन्मय भावसे मेरे उपदेशोंको सुनता था और बीच-बीचमे प्रश्न करके अपनी शंकाओंका समाधान भी मुझसे कराता था। अपने श्रोताओंमें वह मुझे सबसे अधिक प्रिय और सबसे अधिक संतुष्ट जान पड़ता था।

एक दिन एकान्तमें वह मेरे पास आया और बोला : "आपके उपदेशोसे मै बहुत प्रभावित हूँ। निस्संदेह धर्म और दर्शनका जितना गहरा अध्ययन आपने किया है उतना किसीने नहीं किया। आप संसारका बहुत बड़ा कल्याण कर रहे है। मैने योगसाधन करके ईश्वरका दर्शन कर लिया है और चाहता हूँ कि आपको भी उस साधनाके मार्गपर चलाकर ईश्वर-दर्शी बना दूं। आप जानते है, ईश्वरका साक्षात्कार धर्म और दर्शनके अध्ययनसे भी ऊँची वस्तु है।"

मुझे ऐसा लगा कि उस आदमीका दिमाग़ फिरा हुआ है, फिर भी मैंने उसे अपनी बात कहनेका कुछ अवसर दिया। उसने षट्चक्र, कुंड-लिनी आदिका जो वर्णन प्रारम्भ किया तो थोडी ही देरमे मेरा जी ऊब उठा।

जो नगण्य-सा व्यक्ति ईश्वर-दर्शनका दावा करे उसे पागलसे भिन्न मै और क्या समझता! अन्तमें उससे पीछा छुड़ाने और उसका कुछ उप-हास भी करनेके लिए मैने उससे कह दिया कि उसकी साधनाएँ बहुत अमूल्य है और उसकी पूरी कदर मेरे शास्त्र-गुरु कर सकेंगे। मैने उससे उनके पास ही जानेका अनुरोध किया।

संयोगवश मेरे पूज्य शास्त्र-गुरु उन दिनों मेरे पासके ही एक नगरमें पधारे हुए थे। दूसरे दिन मैं उनके दर्शन करने गया और विनोद-वश उस ईश्वर-दर्शी पागलकी भी कुछ चर्चा मैंने उनसे कर दी।

मैं अपने गुरुसे विदा ले ही रहा था कि वह व्यक्ति वहाँ आ पहुँचा। उसे देखते ही मेरे गुरुने साष्टांग पृथ्वीपर गिरकर उसके पैर पकड़ लिये। मैं यह देखकर अवाक् रह गया।

जितनी देर उसके साथ मेरे गुरुका वार्तालाप चला, मैं बगलके एक कमरेमें रुका रहा। उसके चले जानेपर मेरे गुरुने मुझसे कहा :

"यह व्यक्ति ईश्वर-दर्शी हो या न हो, इसके भीतर जो सहिष्णुता और श्रवण-सम्बन्धी उदारता है उसका तुममें एकदम अभाव है और मुझमें भी उसकी कमी है। अपने आपको ईश्वर-दर्शी और इस प्रकार तुमसे कहीं अधिक ऊँचा समझकर भी तुम्हारे व्याख्यानोंको उसने इतने आदर-प्रेमसे सुननेकी क्षमता दिखाई: और योगसाधनाकी दो बातें भी उसके मुखसे तुम सहज जिज्ञासा-भावसे न सुन सके। सहिष्णुता और पर-सम्मानके गुणमें वह अद्वितीय है और इसीलिए वह मेरी परम श्रद्धाका अधिकारी है।"

अजेय शक्ति

महाराज अपने दरबारमें सिंहासनपर बैठे दरबारियोंके साथ कुछ विनोद-वार्ता कर रहे थे।

सिंहासनके पीछे अन्तःपुरका द्वार खुला और छह मासका एक चाँदसे भी सुन्दर और फूलसे भी अधिक कोमल बालक घुटनोंपर चलता हुआ सिंहासनके पास आ गया। वह अपने हाथोंसे महाराजके पाँवका सहारा लेकर उनके घुटनोंपर झूल गया। महाराजने और सभी दरबारियोंने आँखोंमें एक-एक मुसकान भरकर उस बालककी ओर देखा और देखते रह गये।

अचानक बालकका हाथ फिसला और वह सिंहासनके नीचे फर्शपर पीठके बल जा गिरा। सारे दरबारी हड़बड़ाकर उठ खड़े हुए और उनके आगे बढ़नेसे पहले स्वयं महाराजने सिंहासनसे उतरकर बालकको गोदमें भर लिया।

"नन्हे बालककी विवशता भी कैसी विचित्र वस्तु है!" महाराजने दो क्षण बाद अपने दरबारियोंको लक्ष्यकर कहा, "कौन ऐसा हृदय होगा जो उसकी असहायतापर उसकी सहायता करनेके लिए पसीज न उठे! देवताओंके राजा इन्द्रकी कोई भी शक्ति जिसे झुका नहीं सकती वह स्वयं उठनेमें असमर्थ एक बालकको उठानेके लिए कितनी शीघ्रतासे उतरनेको उद्यत हो जाता है!"

"महाराजका कथन सत्य है। कोई भी ऐसा हृदय न होगा जो असहाय बालकको सहारा देनेके लिए बाध्य न हो जाय। किन्तु यह बालककी विवशता नहीं, उसकी अजेय शक्ति ही है जो बड़े से बड़े बलशाली सम्राट्को भी सिंहासनसे उतरनेके लिए विवश कर देती है।" एक वृद्ध दरबारीने खड़े होकर निवेदन किया।

"विवशता नहीं, शक्ति—अजेय शक्ति !" महाराजका अट्टहास दरबारमें गूँज उठा। "यह इस बालकपर मेरी दया नहीं; इसकी अजेय शक्ति है ?"

"इसकी अजेय शक्तिका ही यह चमत्कार है, महाराज ! प्रत्येक असहाय बालक जो अपने माता-पिताके बाहुबलके ऊपर शासन करता है, अपनी विवशताके कारण नहीं, बल्कि अपनी उस अजेय शक्तिके द्वारा ही ऐसा करता है।" उसी दरबारीने कहा।

महाराजकी त्यौरियाँ चढ़ गईं। बालकको उन्होंने गोदसे उतार दिया।

"सात वर्षके भीतर यदि यह कथन सत्य सिद्ध न हो सका तो मृत्युदण्ड तुम्हारा भाग होगा। तुम अपनी बात वापस लेना चाहो तो अब भी लौटकर मृत्युके मुखसे बच सकते हो।" महाराजने कहा।

"सत्य कथनको लौटानेका सामर्थ्य मुझमें नहीं है महाराज !" दरबारीने हाथ बाँधकर कहा। सारी सभा स्तब्ध रह गई।

× × ×

इससे आगेकी कथा कहनेकी यहाँ कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि उसे सभी जानते हैं। मेरे कथागुरुका कहना है कि उपर्युक्त कथा आज तक किसी पुराण या कथा-ग्रन्थमें नहीं आई; किन्तु उन महाराज और और उनके उस पुत्रकी अगली अनेक कथाएँ ग्रन्थोंमें मौजूद हैं। उन महाराजका नाम हिरण्यकशिपु और उस बालकका नाम प्रह्लाद था।

पतित-पावन

संसारका सबसे बड़ा पाप, एक निर्दोष मनुष्यकी हत्या और परायी स्त्रीका बलात् अपहरण मैंने किया था। नगरके न्यायाधीशने मेरे लिए मृत्युका दण्ड निश्चित किया। फाँसीके तख्तेपर चढ़ानेके पहले मुझे भूरे भैंसे पर चढ़ाकर सारे नगरमें घुमाया गया जिससे सभी नगरवासी जी भरकर मेरा तिरस्कार कर लें।

मेरे पिता नगरके एक प्रतिष्ठित अधिकरी थे। उन्हींके कारण मेरा भी नगरमें कुछ मान था। मेरे उस मानके कारण और भी मेरा यह अपराध अधिक जघन्य माना गया था और मेरे प्रति जनताकी घृणा और रोष असाधारण रूपसे उमड़ आया था।

नगरकी फेरी पूरी कराकर मुझे फाँसीके आँगनमें ले जाया गया। ग्लानि और आत्म-भर्त्सनाके भावोंसे मेरा हृदय बैठा जा रहा था।

जैसा कि नियम था, मेरे परिवारके सभी लोग फाँसीके तख्तेपर मुझे देखनेके लिए आये हुए थे। माता, पिता, भाई, बहिन सभीके मुखों पर विषादकी रेखाएं खिची हुई थीं, क्योंकि सारे कुलको मैंने अपने आचरणसे कलङ्कित किया था। उनमेंसे किसीके भी हृदयमें मेरे लिए सहानुभूतिका भाव नहीं था क्योंकि वे सब कट्टर चरित्रवादी और धर्मात्मा थे।

मेरी पत्नी भी मेरे पास पीठ फेरकर खड़ी हुई थी। वह मेरा कलङ्कित मुँह नहीं देख सकती थी। संसारमें मेरा कोई अपना नहीं था। मेरी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। वे मुँद गईं।

'हे भगवन्! पतित पावन! क्या तुम भी मेरे नहीं हो सकोगे? मेरे इस नारकीय शरीरका स्पर्श नहीं कर सकोगे?'—मैं भीतर ही भीतर पुकार उठा था कि अचानक अपने घुटनों पर एक कोमल स्पर्शका अनुभव पाकर मैंने आँखें खोल दीं।

देखा, मेरा एक वर्षका सुन्दर, सुकुमार बालक मेरी पत्नीकी गोदसे अचानक उतर कर मेरे पैरोंसे लिपट गया था।

मेरा सारा पाप और दुःख पानी बनकर आँखोंकी राह बह गया। कुछ क्षण बाद निर्भार, प्रसन्न मनसे मैं फाँसीके तख्ते पर झूल गया।

रूपका रहस्य

किसी समय पृथ्वीपर एक ऐसा देश था जिसमें केवल युवकों और युवतियोंका ही निवास था—बच्चे और बूढ़े वहाँ कोई न थे।

ये लोग जोड़ोंमें रहते थे—हर युवककी अपनी एक प्रेयसी और पत्नी थी; हर युवतीका अपना एक प्रेमी और पति था।

सौन्दर्यकी भावना और उसकी कामना इन लोगोंमें सबसे ऊपर थी। उनका काम ही अधिकसे अधिक सुन्दर होना और दूसरोंकी दृष्टिमें वैसा दीखना था। लेकिन उनकी सौन्दर्य-चेतना अलग-अलग व्यक्तियोंके लिए न होकर अलग-अलग जोड़ोंके लिए ही थी। वे यह नहीं सोच सकते थे कि अमुक युवती या युवक कितना सुन्दर या असुन्दर है, बल्कि यह सोचते थे कि अमुक जोड़ा इतना सुन्दर या असुन्दर है। आजकलके लोगोंके लिए उनकी ऐसी चेतनाको समझना कुछ कठिन होगा, फिर भी बात ऐसी ही थी। हरेक दम्पति इसी प्रयत्नमें रहता था कि उसका जोड़ा कैसे अधिक-से-अधिक सुन्दर दीखे। आमतौरपर सौन्दर्यके साधन जुटानेका काम युवकोंका और अधिक-से-अधिक चतुरताके साथ शृङ्गार करनेका काम युवतियोंका होता था।

एक बार एक युवकने एक नई चाल चली। उसकी पत्नी सुन्दरतामें बहुत साधारण श्रेणीकी थी। दूसरे दम्पतियोंकी प्रतियोगितामें उसे सजाते-सजाते वह थक गया था और उसने देख लिया था कि कितना भी सजाव-शृङ्गार उसकी पत्नीको सर्वोच्च कोटिकी सुन्दरी नहीं बना सकेगा! उस दिन वह अपनी पत्नीको बिना सजाये-सँवारे, बहुत सादे वेशमें साथ लेकर निकल पड़ा। जिन दम्पतियोंने इस जोड़ेको देखा, इसकी आलोचना किये बिना नहीं रहे। असज्जित रूपमें वह युवती सचमुच बहुत अनाकर्षक दीखने लगी थी।

अपने नगरके सबसे बड़े विहार-उपवनमें पहुँचकर वह युवक रुका और उसने समीप विचरते हुए सुसज्जित जोड़ोंपर एक-एक गहरी दृष्टि डाली। उनमेंसे कुछ उसके पास आ गये और एक तरुणीने उन सबका प्रतिनिधित्व करते हुए इस दम्पतिसे कहा :

"हमें खेद है कि आप सुन्दरतामें इतने पिछड़े हुए हैं। आपको सुन्दर बनानेमें क्या हमलोग आपकी कोई सहायता कर सकते हैं ?"

"आप मेरी पत्नीको ही क्यों देखती हैं, मुझे देखिए। क्या मैं यहाँके सभी युवकों-युवतियोंमें सबसे अधिक सुन्दर नहीं हूँ ?" उस युवकने उस प्रश्न करनेवाली युवतीपर और फिर सभी उपस्थित जोड़ोंपर दृष्टि डालकर कहा।

सुनते ही सभी युवतियोंकी दृष्टि उसपर केन्द्रित हो गई। उन्होंने पहली बार एक सुन्दर पुरुष-रूपको उसकी पत्नीसे अलग रखकर देखा और उस पर मोहित हो गईं। निस्सन्देह वह युवक विशेष सुन्दर था। दूसरे युवकोंने भी उस समय देखा, व्यक्तिगत रूपमें वह बहुत सुन्दर था !

उस दिनसे उस देशमें युवकों-युवतियोंके व्यक्तिगत सौन्दर्यकी परख और कदरका चलन कुछ लोगोंमें प्रारम्भ हो गया और सौन्दर्यकी साधना पहलेसे अधिक सुगम और सफल हो गई।

× × ×

मेरे कथागुरुका कहना है कि उस देशके कुछ विशेष सुन्दर युवक अब भी सारे संसारमें फैले हुए यहाँ-वहाँ पाये जाते हैं। उनकी पत्नियाँ अब भी अधिक—बल्कि यथेष्ट—सुन्दर नहीं हैं और जो लोग उन्हें उनकी पत्नियोंसे पृथक् रूपमें देख सकते हैं वे ही उनके उत्कृष्ट सौन्दर्यको परख कर पाते हैं। कथागुरुका यह भी कहना है कि किसी रहस्यपूर्ण रीतिसे आजके अधिकांश लोग अब भी दम्पतिके रूपमें ही एक-दूसरेको देखते हैं और वे सब तबतक पूरे सौन्दर्यको नहीं प्राप्त कर सकेंगे जबतक वे स्त्रियों-पुरुषों को अलग-अलग रूपोंमें न देखने लगेंगे।

प्रेमकी जीत

एक बार एक नवयुवतीने अपने पड़ोसके एक युवकको देखा और उसपर मुग्ध हो गई।

लेकिन वह युवक अत्यन्त संयमी और सदाचारी था और उसने आत्म-कल्याणके लिए आजीवन ब्रह्मचारी रहनेका संकल्प कर रक्खा था। उसने उस तरुणीके प्रेमका कोई उत्तर नहीं दिया।

"मेरा प्रेम और मेरा रूप एक दिन अवश्य तुम्हें जीत लेगा और कभी न कभी तुम देखोगे कि मेरा प्रेम और सौन्दर्य ही तुम्हारे आत्म-कल्याणका सबसे बड़ा साधक और रक्षक रहा है।" उस तरुणीने अन्तमें एक दिन उस युवकसे कह दिया।

"यह असम्भव है; और हो जाय तो मेरे लिए बहुत अहितकर है।" युवकने उत्तर दिया।

इसके बाद उस तरुणीने एक दूसरे युवकसे विवाह कर लिया और अपना गृहस्थ-जीवन बिताने लगी। वह ब्रह्मचारी युवक भी अपने अध्ययन और साधनामें लगा रहा।

लगभग पचीस वर्ष बाद एक दिन उस ब्रह्मचारीने अपने बगीचेमें एक नन्ही-सी बच्चीको देखा। वह सुन्दर और आकर्षक थी और खेलते-खेलते वहाँ आ गई थी। ब्रह्मचारीने उस बालिकाको गोदमें उठा लिया और उसकी मुग्ध स्वीकृतिसे प्रभावित होकर उसके सलोने मुँहको चूम लिया।

"यह मेरी जीत है!" अचानक बगीचेके द्वारकी ओट से सामने निकलती एक अधेड़ स्त्रीको उसने कहते सुना, "यह बच्ची मेरी अन्तिम सन्तान है और मेरे ही प्रेम और रूपका एक अंश है। मेरी प्रेम-कामनाओंने

अदृश्य रूपमें तुम्हारा साथ देकर तुम्हारी रक्षा न की होती तो तुम आज इस बच्चीको भी प्यार न कर सकते और तुम्हारा जीवन नीरस और निष्फल ही रहता। और यदि तुम आज भी इस बच्चीको प्यार न कर पाते तो मानव-मात्रके लिए तुम्हारा जीवन निरर्थक ही सिद्ध होता !"

दुर्बल किन्तु महान्

किसी नगरमे कौप्रीस नामका एक सेठ रहता था। अपने कौशल, श्रम और कुछ छल-चातुर्यसे भी अपना व्यवसाय काफी बढ़ाकर वह नगरके अच्छे धनिकोंमे गिना जाने लगा था।

एक दिन वह नगरके एक प्रसिद्ध वक्ता और लोकनायक नरदास नामक व्यक्तिके पास गया और सौ स्वर्ण मुद्राओंकी थैली उसके पास रख-कर बोला, "यह आपकी भेंट है। आप नगरकी बहुत बड़ी सेवा कर रहे है और आपका जीवन बहुत आर्थिक तंगीमे बीतता है। कृपया मेरी इस तुच्छ सेवाको स्वीकार कीजिए। मैं हर वर्ष इतना धन आपके उप-योगके लिए भेज दिया करूँगा।"

बहुत कुछ आनाकानी और सोच-विचारके बाद नरदासने वह भेंट स्वीकार कर ली। उसे धनकी उस समय बड़ी आवश्यकता थी।

व्यवसायमे कुछ अनीतिकर व्यवहारोंके कारण नगरमे कौप्रीसकी कुछ आलोचनाएँ होने लगीं। नरदासने, जैसा कि एक लोक-सेवी जन-नायकके नाते उसका कर्त्तव्य था, उन आरोपोंकी छान-बीन की और उन्हे बहुत कुछ ठीक पाया। उसने कौप्रीसकी बड़ी आलोचना की। अपनी निर्भीकता, स्पष्टवादिता और ईमानदारीके कारण ही उसका नगरमे बहुत अधिक मान था।

अगले वर्ष फिर कौप्रीसने यथा-समय नरदासके पास धन भेजा। अबकी बार उसने तिगुनी, तीन वर्षके लिए कहकर, रकम भेजी थी।

नरदासको इससे कुछ आश्चर्य हुआ। उसे बिलकुल आशा नहीं थी कि अबकी बार भी वह कुछ भेजेगा। उसने अब अनुमान लगाया कि कौपीस धन का प्रभाव डालकर अपने अनाचारोके विरुद्ध उसका मुँह बन्द करना चाहता है। फिर भी उसने वह थैली रख ली।

कुछ ही दिनों बाद कौपीसकी चरित्र-सम्बन्धी कुछ दुर्बलताओंका भेद खुला। नरदासने उनकी भी जाँच करके उन्हें बहुत कुछ सत्य पाया। अबकी बार उसने और भी वेगके साथ खुले-आम उनकी निन्दा की और उसे सदाचारी समाजसे बहुत कुछ बहिष्कृत-सा करा दिया।

तीन वर्ष पूरे होनेपर कौपीसने फिर उसके पास एक थैली भेजी। उसमें एक सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ थीं और वह दस वर्षके लिए अग्रिम भेंट थी।

नरदासको अबकी बार विशेष आश्चर्य हुआ। पर उसने सोचा, कौपीसका मुझसे कोई गहरा स्वार्थ है या फिर उसे यह भ्रम है कि मैं उसके धनके दबावमें आकर उसका अनुचित पक्षपात करने लगूँगा। थैली उसने अबकी बार भी रख ली।

कुछ वर्षोंके बाद कौपीसपर राजकीय कोषकी चोरी करानेके लिए एक बड़ा षड्यन्त्र रचनेका अभियोग लगा। उस आरोपकी जाँचके लिए राजकीय अधिकारियोंके अतिरिक्त जो कुछ अन्य नागरिक भी नियुक्त किये गये थे उनमें नरदास ही प्रमुख था। यह अभियोग भी सत्य निकला और नरदासने इसके लिए सबसे बड़े प्रमाण खोजकर प्रस्तुत किये। कौपीसको एक लाख स्वर्ण-मुद्राओंके जुर्मानेके साथ साथ आजीवन कारा-वासका दण्ड दिया गया।

पिछली भेंटके दस वर्ष पूरे होनेके बाद कौपीसके गुप्तकोषमेंसे सौ स्वर्ण-मुद्राएँ फिर उसके पास पहुँच गईं। नरदास इसका अर्थ समझनेमें असमर्थ होकर इन्हीं विचारोंमें डूबता-उतराता उस रात सो गया।

अगली सुबह उसने नगरके समाचार-पत्रमें पढ़ा कि पिछली रात कारा-गारमें कौपीसकी मृत्यु हो गई है। पत्रमें कौपीसके दिये हुए एक मार्मिक वक्तव्यके साथ उसकी वसीयत भी प्रकाशित हुई थी। वसीयतमें और बहुत-सी बातोंके अतिरिक्त उसने नरदासको भी अपनी सम्पत्तिमेंसे प्रति वर्ष सौ स्वर्ण-मुद्राएँ देनेकी बात लिखी थी और वक्तव्यमें बहुत-सी बातोंके बीच यह भी कहा था :

"अपनी कुछ चारित्रिक दुर्बलताओं और कुछ असाध्य परिस्थितिजनित विवशताओं और कुछ बुरे लोगोंके बीच फँसे होनेके कारण मैं अनेक पाप-कर्म करनेके लिए बाध्य हुआ हूँ। किन्तु मुझे सन्तोष है कि मैं अपने और अपने समाजके प्रति भरपूर ईमानदार रह सका हूँ। मैंने निःस्वार्थ भावसे नरदास जैसे चरित्रवान् लोक-सेवीको उसकी रोटीकी चिन्ताओंसे मुक्त करके उसकी सर्वोच्च सेवा अपने और समूचे नगरके लिए खरीदी है और इस प्रकार इस बातका प्रबन्ध रक्खा है कि मेरा कोई पाप जनताकी दृष्टिसे छिपा न रह पाये और वह मेरे द्वारा हो सकनेवाले अहितोंसे सावधान रहे। मुझे सन्तोष है कि मैं अपने दुष्कर्मोंका प्रायश्चित्त भी किसी सीमा तक साथ-साथ करता आया हूँ और अपने अगले जीवनके लिए उनका बहुत अधिक बोझ नहीं ले जा रहा हूँ। मुझे यह भी आशा है कि मेरे नगरवासी और विशेष-कर नरदास जैसे महान् व्यक्ति मेरे जीवनसे अपराधियोंके प्रति सहानुभूति-पूर्वक न्यायपूर्ण उदारताका भी कुछ पाठ ले सकेंगे।"

नरदासकी अध्यक्षतामें उस नगरके निवासियोंने बहुत-सा धन लगा कर एक बड़ा सुन्दर स्मारकस्तूप बनवाया जिस पर खुदा हुआ था :

"नगरका अति दुर्बल किन्तु अत्यन्त ईमानदार महापुरुष।"!

बड़ा कौन ?

किसी नगरके लोग बड़े शिक्षित और विचारशील थे। जब कोई विशिष्ट व्यक्ति उनके नगरमें आता था तो वे बड़े सत्कारके साथ उसे नगरकी अतिथिशालामें ठहराते थे और एकत्र होकर उसके विचारोंसे भरपूर लाभ उठाते थे। इस कामके लिए उन्होंने अतिथिशालाके बड़े उपवनमें एक विशाल सभा-भवन बना रक्खा था।

एक बार एक प्रसिद्ध भगवद्भक्त और एक प्रसिद्ध विद्वान्—दो विशिष्ट पुरुष एक ही दिन उस नगरमें आ पहुँचे।

नगर-सभाके अधिकारी बड़े असमंजसमें पड़ गये कि इन दोनोंमें किसके उपदेश-व्याख्यानका पहले दिन आयोजन करें। वे अपनी अन्तरंग मंडलीमें बहुत देरसे यही विचार कर रहे थे कि इन दोनों अतिथियोंमें कौन अधिक श्रेष्ठ और इस प्रकार नगर-वासियोंको उपदेश देनेका प्रथम अधिकारी है। उसी समय उस भक्तका एक शिष्य उस बैठकमें जा पहुँचा और बोला :

"मेरे गुरुने अपनी सिद्धिके बलसे आपकी दुविधाको जान लिया है और आपकी शंकाका निवारण करनेके लिए मुझे भेजा है। आपको यह ज्ञात होना चाहिए कि भक्तिके आगे विद्या और बुद्धिका मूल्य कोई वस्तु नहीं है।"

लोग इस दूतके कथन और उसके गुरुके भक्ति-योगसे विशेष प्रभावित हुए। उन्होंने विद्वान् अतिथिको सूचना भेज दी कि उस दिनकी सभामें महात्माजीके उपदेश होंगे और उनके व्याख्यानका आयोजन अगले दिन किया जायगा।

विद्वान् अतिथिने कहला भेजा : 'मुझे आप लोगोंके निर्णयसे कोई आपत्ति नहीं है; लेकिन यह निर्णय यदि आपने महात्माजीसे मेरी अपेक्षा

कुछ अधिक समझकर किया है तो यह आपकी भूल है। वास्तवमें मेरा स्थान उनसे कहीं ऊँचा है। अच्छा हो यदि इस 'छोटे-बड़े'का निर्णय आजकी सभामें ही होने दिया जाय और जो श्रेष्ठतर निकले उसे ही आजकी सभाको सम्बोधित करनेका अधिकारी माना जाय।"

सभाके प्रबन्धक इस सन्देशसे दुबारा और भी अधिक असमंजसमें पड़ गये। अन्तमें उन्होंने दोनोंको ही सभामें निमंत्रित कर भेजा। उन्होंने दोनोंको कहला भेजा कि उनमेंसे जो अधिक बड़ा सिद्ध होगा वही श्रोताओं को आज उपदेश देगा।

सभा-भवनमें जब भक्त और विद्वान् दोनों आमने-सामने हुए तो विद्वान्‌ने तुरंत आगे बढ़कर श्रद्धा-पूर्वक भक्तके चरणोंका स्पर्श किया। भक्तने भी अपने नियमानुसार उस विद्वान्‌के सिरपर हाथ रखकर उसे आशीर्वाद दिया। भक्तने और सभी उपस्थित जनोंने समझा कि विद्वान्‌ने भक्तकी श्रेष्ठता स्वीकार कर ली है और भक्तके साथ प्रतियोगिताका उसका दावा कोई और ही अर्थ रखता है।

लेकिन दूसरे ही क्षण विद्वान्‌ने नगरके प्रधानको, जो उस सभाका अध्यक्ष भी था, तथा उस भक्त एवं सभी श्रोताओंको सम्बोधित करके कहा:

"मैं एक विद्वान् हूँ। विद्यासे मुझे विनयकी प्राप्ति हुई हैं। मै प्रत्येक व्यक्तिको अपने शिक्षकके रूपमें देखता हूँ; अपने विद्यार्थियोंसे भी मुझे बड़ी-बड़ी शिक्षाएँ मिलती रहती है। ये भक्तराज भगवान्‌के बड़े भक्त और सिद्ध पुरुष है। भक्तका गुण श्रद्धा है। भक्तकी श्रद्धाका अर्थ है प्रत्येक प्राणीमें भगवान्‌को ही देखना—ऐसा इन्हीं भक्तराजके गुरुदेवके एक ग्रन्थमे मैंने पढ़ा है। इस श्रद्धामे भी इनसे अधिक हूँ। जितनी श्रद्धा ये मेरे प्रति कर सकते हैं निस्संदेह उसकी सहस्रगुनी श्रद्धा मेरे हृदयमें इनके प्रति है। भगवान् भक्तिकी जो निर्मल धारा इन्होंने पिछले कुछ वर्षोंमें बहाई है उससे मेरे हृदयका रोम-रोम प्लावित है और आज पहली बार इनके साक्षात् दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो उठा हूँ..."

विद्वान् वक्तका-भाषण चला और चलता रहा। भक्ति तत्त्वकी और उस भक्त साधुकी भक्ति-साधनाकी ऐसी विशद और हृदयस्पर्शी विवेचना उसने अपने व्याख्यानमें की कि सभी श्रोता मंत्र-मुग्ध-से सुनते रह गये और उस भक्त साधुके प्रति श्रद्धासे उनके हृदय भरकर मानो उमड़ पड़े। ज्ञानके उज्ज्वल, पीन प्रकाशमें भक्तिका रस घोलकर उस वक्ताने जो धारा बहाई उसमें सभी श्रोता आत्मविभोर हो गये।

वक्तृताकी समाप्तिपर वह विद्वान् एकबार और उस भक्तके चरणोंकी वन्दनाके लिए आगे बढ़ा और उसके झुकते हुए माथेको अपने हाथोंमें लेकर उस भक्तने उसे गलेसे लगा लिया और कहा :

भगवान्‌का रस मेरे पास पहलेसे था लेकिन उसके सौन्दर्यको देखनेके लिए प्रकाश मुझे आज तुम्हारे हाथों ही प्राप्त हुआ है। निस्सन्देह मेरे प्रधान गुण श्रद्धामें भी तुम मुझसे बहुत आगे हो।"

नई प्रतिष्ठा

किसी नगरमे एक अत्यन्त रूपवती तरुणी रहती थी। उसके रूप-लावण्यके साथ उसकी अतिविकसित भावुकताने उसे धीरे-धीरे नगरवासियोके लिए आकर्षणका एक अनिवार्य केन्द्र बना दिया।

उसके प्रेमियो और प्रशंसकोकी संख्या तीव्रगतिसे बढ़ चली। उसे भी अपनी प्रणय-लीलाओंमे बड़ा रस आने लगा। उसके प्रेम-पुजारियोकी संख्या इतनी बढ़ गई कि उन सबका सत्कार करना उसके लिए असम्भव हो गया। फलतः कुछ उपेक्षा, अनादर और धीरे-धीरे तिरस्कार एवं घृणाके भाव भी उसके मनमे कुछ लोगोके लिए जगने लगे।

नगरके संरक्षक कुछ देवताओने जब देखा कि उस नगरके निवासियोंके हृदयकी बागडोर बहुत कुछ उसके हाथमें है और वह उनके लिए सुख-दुःखका, बनाव और बिगाड़का एक शक्तिशाली साधन बन गई है, तब उन्होने सोचा कि उसके सहारे वे नगरको बहुत कुछ ठीक दिशाओंमे प्रभावित कर सकते है।

अन्तमे देवताओका एक प्रतिनिधि एक दिन उस सुन्दरीके सामने प्रकट हुआ और उसने देवताओकी सारी बात उसे कह सुनाई।

तरुणीने कहा :

"यदि मै इस नगरके कल्याणके लिए किसी बडे काममे आ सकती हूँ तो सहर्ष उसके लिए कोई भी, कैसा भी, त्याग-बलिदान करनेके लिए तैयार हूँ।"

देवताने कहा :

"यदि तुम इसके लिए तैयार हो तो यह आवश्यक होगा कि तुम्हारा सारा शरीर सर्वोच्च कोटिके सङ्गमरमरका हो जाय; और तुम्हारी वह प्रस्तर-मूर्ति तुम्हारी सबसे सुन्दर और आकर्षक मुद्रामें स्थित हो। ऐसा होनेसे

तुम्हारी चञ्चलताएँ, तुम्हारी कामनाएँ और भावुकताएँ सब समाप्त हो जायेंगी। तुम्हारे भीतर आँखोंसे दीखनेवाले रूपके अतिरिक्त कोई अच्छा या बुरा गुण न रह जायगा: अलबत्ता तुम्हारे कण्ठका स्वर वैसा ही बना रहेगा और तुम्हारे उसी नगर-प्रिय कण्ठस्वरमें दैवी उपदेशक अपनी बात नगर-वासियोंको सुनाया करेंगे।"

तरुणीने सहर्ष यह आत्म-बलिदान स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन प्रातः नगर-वासियोंने देखा कि अपने भवनके बगीचेमें वह तरुणी एक पत्थरकी मूर्ति होकर रह गई है। आगे उन्होंने यह भी देखा कि दिन और रातके दोनों सन्धि-कालोंमें उसके कण्ठसे मधुर सङ्गीतकी धारा प्रभावित होती है और वह संगीत उसके जीवन-कालके आकर्षणोंसे कहीं अधिक प्रेरणा-प्रद है!

सुमतिका स्वामी

एक बड़े सेठकी सुमति नामकी कन्या अत्यन्त रूपवती थी। नगरके बीसियों युवक उसके रूप-जालमें फँस गये और उसे पानेके लिए बेचैन हो उठे।

अन्तमें अपने प्रेमियोंमेंसे नगरके सात सर्वसम्पन्न और सर्वश्रेष्ठ युवकोंको उसने चुन लिया और अपने पितासे कह दिया कि उन्हींमेंसे किसी एकको वह अपना पति वरण करेगी।

इस तरुणीको बाग़-बगीचों और सुन्दर-सुन्दर भवनोंसे बड़ा प्रेम था। अपने पितासे कहकर उसने नगरसे कुछ दूर एक बहुत बड़ा और अत्यन्त घना उपवन ख़रीद लिया। यह उपवन भाँति-भाँतिके वृक्षों और लता-कुञ्जोंसे भरा-पूरा था। सुन्दरीने अपने सातों प्रेमियोंको सूचित कर दिया कि उनमेंसे जो भी उस सुरक्षित उपवनमें सबसे अच्छा और बड़ा भवन बनवा सकेगा उसीके भवनमें वह उसकी पत्नी बनकर रहना स्वीकार करेगी।

ये सातों युवक धनवान् और सुरुचि-सम्पन्न थे। उनमेंसे छहने उस उपवनमें एक-से-एक सुन्दर और आलीशान भवन—चौमञ्जिले-छह मञ्जिले महल—खड़े कर दिये और एक ने एक बहुत सादा इकमञ्जिला बँगला बनाकर ही सन्तोष किया।

यथासमय उस सुन्दरीने उन सब भवनोंका निरीक्षण किया और उस सबसे नीचे भवनमें जाकर उसके निर्माताके गलेमें वरमाला डाल दी।

दूसरे युवकोंको इससे बड़ी निराशा और क्षोभका अनुभव हुआ। उन्होंने मिलकर नगरके न्यायालयमें उस तरुणीपर यह आरोप लगाया कि वह पहलेसे ही पक्षपातपूर्वक उस युवकको चाहती थी और उसने उन सबको धोखा देकर उनके धन और समयकी इतनी हानि की है।

सुन्दरीने अपनी सफ़ाई देते हुए कहा :

"इन छहों युवकोंने इस बातका तो प्रयत्न किया कि उनका भवन अधिक-से-अधिक ऊँचा और विशाल हो जाय पर जिस उपवनमें उन्होंने अपने भवन बनवाये उसका बिलकुल ध्यान नहीं रक्खा। अपने भवनोंको ऊँचा करनेके लिए उन्होंने बीसियों वृक्षोंकी सघन सुन्दर डालोंको कटवा डाला जब कि वह नीचा बँगला ही एक ऐसा भवन है जिसके निर्माणके लिए किसी वृक्षकी एक भी डालको नहीं काटा गया। इसके अतिरिक्त जिसे मैंने अपना पति वरण किया है उसके भवनकी एक मञ्जिल पृथ्वीके ऊपर और छह पृथ्वीके नीचे हैं, उनमें हवा और रोशनीके पहुँचनेका अत्यन्त कौशल पूर्ण प्रबन्ध है और वह उन सबमें बड़ा भी है। ऐसे उपवनमें घर बनानेका मेरा अभिप्राय दूसरे छह भवनोंमें एकदम नष्ट हो गया है।"

× × ×

मेरे कथागुरुका कहना है कि आजके सफल और अति उन्नत दीखने वाले और उनका अनुकरण करनेवाले लोग जिस दिशामें अपने मङ्गल-बलका अन्धाधुन्ध व्यय करते हैं वह उनके भवनोंको कितना ही ऊँचा क्यों न उठा दे पर सुमतिके पाणि-ग्रहणका अधिकारी नहीं बना सकता।

अन्धे शिकारी

एक राजाने अपनी राजधानीके बाहर सात बड़े सुन्दर-सुन्दर शीशमहल—काँचके महल—बनवाये। हर महलके चारो ओर उसने एक-एक सुन्दर बाग़ भी लगवा दिया।

उस देशमे जङ्गली रीछ बहुत होते थे। वे रातको उन बाग़ोमे आने लगे और उन्हे बहुत नुकसान पहुँचाने लगे।

राजाने सात बहुत अच्छे निशानेबाज़ शिकारियोंको चुना और हर महलमें, उसकी रक्षा और देख-भालके लिए एक-एकको रख दिया। उसने उन्हें आदेश दिया कि जितनी जल्द हो सके उन नुकसान पहुँचानेवाले रीछोंको समाप्त कर दें।

तीन महीने बाद उन शिकारियोने राजाको सूचना दी कि उस देशके सब रीछ मारे जा चुके है और अब किसी नुकसानका खतरा नहीं है।

राजा यह समाचार पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और उन महलोंके निरीक्षणके लिए गया।

उसने देखा कि छह महलोके बाग बिल्कुल ठीक हालतमें लहलहा रहे है और सातवेका बिलकुल उजड़ा, रीछों द्वारा खाया हुआ पड़ा है।

दरबारमें लौटकर उसने सातो शिकारियोको बुलवाया और उन सबके सामने सातवेको, जिसका बाग बिलकुल उजड़ गया था, अपने प्रधान सेनापतिके आसनपर, जो कुछ दिन पहले खाली हो गया था, बिठा लिया।

सारे दरबार और विशेषकर उन छहो शिकारियोके आश्चर्य और गहरे असन्तोषका समाधान करते हुए उसने कहा :

"इस शिकारीके पिछले कारनामे और ख्याति इन छहोंमेसे किसीसे कम नही है, साथ ही यह सबसे अधिक सावधान और बुद्धिमान् भी है। बागोकी रक्षाके लिए इन छहोने अपने-अपने महलकी दीवारोमे, भीतरसे

गोली चलानेके लिए, चारों ओर छेद कर दिये हैं और अनेक जगहोंमें गोली चलाकर शीशोंको तोड़ दिया है। मैंने ये बाग उन महलोंके लिए लगवाये थे, महल बागोंके लिए नहीं बनवाये थे। बाग तो फिर भी लग सकते हैं लेकिन वैसे महल अब नहीं बनवाये जा सकते !"

× × ×

मेरे कथा-गुरुका कहना है कि आजकी दुनियामें इन छह शिकारियोंकी सन्तानें उस एक शिकारीकी सन्तानोंसे कहीं अधिक हैं और उचित अनुपातसे सैकड़ों गुनी अधिक हैं।

सुलेमानका मन्दिर

एक बार भूलोकके प्रबन्धक देवताओंने पृथ्वीके सभी राजाओंके पास सँदेसा भेजा कि वे एक-एक ऐसा मन्दिर बनवायें जो अत्यन्त सुन्दर हो और धरतीपर होने वाले कोई भी उत्पात उसे नष्ट न कर सके।

सभी राजाओ और बादशाहोंने एकसे एक बढ़कर मज़बूत चट्टानोंके मन्दिर बनवाये; लेकिन बादशाह सुलेमानने, जोकि बहुत बुद्धिमान् कहा जाता है, पानीमें थोड़ी-सी मिट्टी सनवाकर उसी गीली मिट्टीका एक छोटा-सा मंदिर बनवा लिया।

जब देवता लोग सभी मन्दिरोका निरीक्षण करते हुए अनेक राजाओ-बादशाहोंके साथ सुलेमानके राज्यमे पहुँचे तो सुलेमान उन्हें अपना मन्दिर दिखाने ले गया। दूसरे राजाओ-बादशाहोको सुलेमानका वह मन्दिर देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, लेकिन सुलेमानने पूरे बलके साथ उन्हें विश्वास दिलानेका प्रयत्न किया कि उसका मन्दिर कभी भी नष्ट नही होगा। इसके बाद उसने उनके ही सामने उस मंन्दिरमें आग लगवा दी और उसकी जली हुई मिट्टीको हवाओंने चारो ओर बिखेर दिया।

× × ×

बादशाह सुलेमानके मन्दिरकी यह कहानी आज तक किसीने लिखी नहीं थी, यद्यपि कुछ इतिहासकारो और कथाकारोंने लिखा है कि उसने जेरूसलममे एक अत्यन्त भव्य मंन्दिर बनवाया था। दूसरे राजाओ बादशाहोंके बनवाये हुए लगभग सभी मंदिर इस समय तक नष्ट हो चुके हैं, लेकिन सुलेमानके उस जलाये हुए मन्दिरकी मिट्टीसे बने हुए उसी नमूनेके सैकड़ों-हज़ारों सुदृढ़ और सुसज्जित मन्दिर आज भी संसारके बड़े-बड़े नगरो में बने हुए है। मेरे नगरमें भी सुलेमानका वह मन्दिर बना हुआ है और मैं प्रतिदिन अपनी दैनिक मज़दूरी और महीनेमें एक बार अपना मासिक वेतन लेनेके लिए उस मंन्दिरमे जाता हूँ। और बादशाह सुलेमानके ऐसे मन्दिरों-से सम्बन्ध रखने वालोंकी संख्या इस समय भी हज़ारोंमें गिनी जाती है।

पट नर्तकी

एक बार किसी नगरमें अचला नामकी एक नर्तकी ऐसी आई कि जिसकी नृत्य-कलाने सारे नगरमें धूम मचा दी। वह नगर नृत्य, संगीत आदि कलाओंके लिए पहलेसे ही प्रसिद्ध था और वहाँकी नर्तकियोंका दूर दूर तक नाम था। लेकिन इस नवागता नर्तकीने उन सबको एकदम पीछे डाल दिया। उसका नृत्य इतना सुचारु, सुप्रवाहपूर्ण और मोहक होता था कि देखने वाले मंत्रमुग्धसे बैठे बैठे देखते रह जाते थे। इस नर्तकीकी ख्याति राजदरबार तक पहुँची और वह दरबारकी पट-नर्तकी बन गई। राजदरबारमें भी प्रविष्ट होने पर उसने नागरिक जनताके सामने अपने नृत्य-प्रदर्शनका क्रम नहीं छोड़ा।

नगरकी नर्तकियोंको उससे स्वभावतया गहरी जलन हो गई। वे उसे अपने बीचसे दूर करनेका उपाय सोचने लगीं। अन्तमें उन्होंने एक गुप्त सभा करके आपसमें यह प्रस्ताव रक्खा कि उसे गुप्त रूपसे विष देकर मार दिया जाय।

एक बूढ़ी नर्तकीने, जिसने अपनी प्रौढ़ावस्थामें अनेक बालिकाओंको नृत्यकी उत्तम शिक्षा दी थी और जो अब अपनी अवस्थाके कारण सन्यास ले चुकी थी, इस प्रस्तावका विरोध किया। उसने कहा :

"इस नई नर्तकीको नृत्य बिलकुल नहीं आता। नृत्यमें यह तुममेंसे किसीकी भी बराबरी नहीं कर सकती। उसके प्रति तुम लोगोंकी ईर्ष्या व्यर्थ है और उसे मारनेका प्रस्ताव मूर्खतापूर्ण है। उसे मारनेके बदले उचित यह है कि नृत्यकलाकी उसकी अनभिज्ञता सबके सामने प्रमाणित कर दी जाय।"

वृद्धा नर्तकीके इस दावेसे दूसरी नर्तकियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ, साथ ही कुछ आश्वासन भी मिला। उन्होंने अचलाको मारनेका निश्चय स्थगित कर दिया। इस दावेको सिद्ध करनेका भार वृद्धाने अपने ऊपर ही ले लिया।

वृद्धा नर्तकीने सारे नगरमें घोषित कर दिया कि अचला नामकी नई नर्तकीको नृत्यकला बिलकुल नहीं आती ।

राजाके पास जब यह समाचार पहुँचा तो उसने अचलाके नृत्यके लिए अपने दरबारमें एक बड़ी सार्वजनिक नृत्य-सभाका आयोजन किया और उस वृद्धा नर्तकीको आज्ञा दी कि वह अपने दावेको प्रमाणित करे। राजाने उसकी यह माँग स्वीकार कर ली कि उस सभा की कार्यवाहीका निर्देशन वह स्वयं करेगी।

नृत्य-सभा सभी नर्तकियों और नागरिकोंसे खचाखच भर गई। प्रारम्भ में नगरकी कुछ नर्तकियोंने अपने-अपने नृत्यका निर्वाद्य—बिना किसी बाजे या संगीतके—प्रदर्शन किया। इसके बाद अचलाकी बारी आई।

मधुर वाद्योंके साथ अचलाका नृत्य प्रारम्भ हुआ। दर्शकगण उसके अनिद्य नृत्यपर सदैवकी भाँति चित्र-लिखे-से रह गये। नृत्य अपने पूरे प्रवाहपर था कि अचानक वृद्धा निर्देशिकाने वादकोंको एकदम रुक जानेका संकेत किया। वाद्योंके रुकते ही अचलाका नृत्य भी एकदम रुक गया। वह निर्जीव देह-सी निश्चेष्ट खड़ी रह गई।

"अचला अब अपने निर्वाद्य नृत्यका प्रदर्शन करेगी" वृद्धा नर्तकीने अचलाकी ओर आदेशकी दृष्टिसे देखते हुए दर्शकोंके सामने घोषित किया।

लेकिन अचला निश्चेष्ट खड़ी रही।

"नाचो, पिछले ही गीतपर, या किसी भी अपने मनपसंद गीत-ताल पर।" निर्देशिका नर्तकीने ऊँचे स्वरमें उसे आदेश दिया।

अचलाके पैर उठे और रंगमंचपर लड़खड़ाने लगे। वृद्धा नर्तकीने ही आगे बढ़कर उसे धरतीपर गिरनेसे बचाया।

"अचलाको नाचना बिलकुल नहीं आता" वृद्धा नर्तकीने विस्मित भरी सभाको संबोधित करते हुए कहा, "नृत्यकलाका उसका अभ्यास बहुत ही प्रारंभिक श्रेणीका है। लेकिन उसने अपनी सीखी कलाको पीछे डालकर

स्वर और संगीतके एक-एक कंपनके सामने अपने शरीरके एक-एक अवयव को निश्चेष्ट छोड़ देनेका अभ्यास जगा लिया है। प्रत्येक स्वर उनके शरीरके स्वजातीय अवयवको अपनी तालपर अपने-आप गतिशील कर देता है और उसके अथक एवं अलौकिक रूपमें सफल नृत्य प्रदर्शनोंका रहस्य यही है।"

× × ×

मेरे कथा-गुरुका कहना है कि अचलाके स्कूलकी नृत्य-साधना—नृत्य-कला नहीं—सिखानेके लिए कुछ सिद्ध नर्तकियाँ इन दिनों भी कहीं-कहीं काम कर रही हैं और स्पष्टतया उनका नृत्य-प्रदर्शन सर्वोच्च कोटिका इसी लिए है कि उनमें निजका प्रयास कुछ भी नहीं है। कथागुरुका यह भी संकेत है कि संसारकी सारी प्रगतियाँ नृत्यकी क्षमतासे ही संबंध रखती हैं।

जलता दीपक

नीलगिरिके किसी दुर्गम प्रदेशमें घने जङ्गलोंमें छिपी हुई सात अँधेरी गुफाएँ थीं। उस देशके राजाने एक बार सारे राज्यमें घोषित किया कि उसे कुछ ऐसे साहसी युवकोंकी आवश्यकता है जो उन गुफाओंकी खोज-खबर ला सकें। राजाके कोई सन्तान नहीं थी अतः उसने यह भी विज्ञापित कर दिया कि जो युवक इस खोजमें सफल होगा उसे ही वह अपना उत्तराधिकारी बनायेगा।

राजाकी इस माँगपर सात ऐसे नवयुवक निकल आये जो इस खोजके लिए तैयार हो गये। राजाने उन्हें आदेश दिया कि वे अपनी खोजमें सफल होनेपर हर गुफाके भीतर एक-एक दीपक जलाकर रख आयें, जिससे दूसरे लोगोंको भी बादमें उनके भीतर पहुँचनेमें आसानी हो।

वे सातों अन्वेषक बड़े-बड़े दीप-पात्र, तेलके पीपे और बत्तीके लिए रुईके पुलिन्दे घोड़ोंपर लदवाकर अपनी खोजमें निकल पड़े। बहुत छान-बीनके बाद आखिरकार वे उस प्रदेशमें पहुँच गये जहाँ वे गुफाएँ बनी हुई थीं। सातों गुफाएँ एक ही पर्वत-खण्डपर पास-ही-पास गोलाकार भूमिके गिर्द एक वृत्तमें बनी हुई थीं।

वे सातों युवक एक-एक गुफामें घुस गये और उन्होंने वहाँ एक-एक दीपक जला दिया। हर दीप-पात्रपर उसे लानेवाले अन्वेषकका नाम खुदा हुआ था। उन दीपकोंमें इतना तेल आ सकता था कि वे सात दिन और सात रातों तक बराबर जलते रहें।

अपनी-अपनी गुफामें अपना-अपना दीपक जलाकर वे सातों दरबारमें लौट आये। राजाकी सवारी अनेक दरबारियों और उन अन्वेषकोंको साथ लेकर उन गुफाओंके निरीक्षणके लिए चल दी। ठीक सातवीं रातको वे लोग उस प्रदेशमें पहुँच गये। गुफाओंके पास पहुँचकर उन्होंने देखा,

तीन गुफाओंके भीतर तेज़ रोशनी जल रही थी, तीनके भीतर मध्यम होकर टिमटिमा रही थी और एककी बिलकुल बुझी हुई थी।

"ये सातों युवक इन गुफाओंको खोजनेमें सफल हुए हैं। अब यह निर्णय कैसे किया जाय कि इनमें सबसे बड़ा अन्वेषक और मेरा उत्तराधिकारी कौन है।" राजाने अपने दरबारियोंसे पूछा।

"अन्वेषणका श्रेय तो सबको बराबर-बराबर ही है, इसलिए जिसका दीपक सबसे अधिक देरतक जले उसे ही राज्यका उत्तराधिकारी मानना ठीक होगा।" दरबारियोंकी राय हुई।

कुछ देर प्रतीक्षा करनेके बाद पहले टिमटिमाने वाले और फिर तेज जलनेवाले भी दीपक एक-एक करके बुझ गये।

उन छहों गुफाओंके दीपक बुझ जानेपर राजा हर गुफाके द्वारपर गया और जिस गुफाका दीपक सबसे पहलेसे बुझा हुआ था उसके भीतर प्रवेश करते हुए उसने सबको अपने पीछे आनेका आदेश दिया। उस गुफाके बीचो-बीच उन्हें हल्का-सा प्रकाश दीख पड़ा, और पास पहुँचकर सबने देखा—पत्थरकी एक विशाल मानव-मूर्ति एक शिलापर लेटी हुई है, उसका एक पैर घुटनोंसे नीचे एक दूसरी शिलासे ढका हुआ है और दूसरे पैरके नाखूनोंमें जड़े हुए रत्नोंका धीमा-धीमा प्रकाश सारी गुफाको प्रकाशित कर रहा है।

"इस मूर्तिकी दोनों टाँगें इस शिलासे ढकी हुई थीं। इसके अन्वेषकने अपने दीपकके प्रकाशमें इसे देख लिया और इस ढकनेवाली शिलाको खींचकर इसके एक पाँवको उघार दिया और इसके रत्नोंके प्रकाशसे यह गुफा सदाके लिए प्रकाशित हो गई। इतना करके उसने अपना दीपक बुझा दिया और बाहर चला आया। दूसरे छह युवकोंने दीपक तो पूरे जलाकर जलाये, पर उनके प्रकाशका कोई उपयोग नहीं किया। उन गुफाओं

अन्वेषक यही नवयुवक सच्चा अन्वेषक है और मेरा वास्तविक उत्तराधिकारी है।" राजाने सबका समाधान किया और उस नवयुवकको पास खींचकर गलेसे लगा लिया।

× × ×

मेरे कथागुरुका कहना है कि इस कथाका अर्थ वैसे तो और भी गहरा है, किन्तु इतना ऊपरी तौरपर भी स्पष्ट है कि आजतक अधिकांश लोग अधिक देरतक जलनेवाली मशालको ही अधिक महत्त्व देनेकी भूल करते हैं जबकि सभी सच्चे दीपक अपना काम करके लुप्त हो जाते हैं, भले ही उनका काम शताब्दियों और दशाब्दियोंमें न होकर वर्षों, महीनों या क्षणोंमें ही क्यों न पूरा हो जाय।

समझका फेर

फिर—

बग्घीको समीप आया देखकर युवकने हाथ उठाकर उसे रुकनेका संकेत किया।

भीतर बैठी हुई सुन्दरी तरुणीने कोचवानको आदेश देकर बग्घी रुकवा दी।

“मैं आपसे कुछ जरूरी बात कहना चाहता हूँ। क्या आप पाँच मिनट—”

“जरूरी बात! आप—?” तरुणीने भौंहें चढ़ाकर उस युवकको एक बार पैनी दृष्टिसे देखकर कुछ तीखे स्वरमें कहा।

“हाँ, बहुत जरूरी बात। इसमें आपका कुछ नुकसान हो तो मैं उसे सहर्ष पूरा करनेके लिए तैयार हूँ। हजार-दो हजार रुपये—”

“जबान सम्हालिए, महाशय! मैं आपके हजार-दो हजारपर धूल फेंकती हूँ। उधर जाइये, वेश्याओंका बाजार उधर है।” उसने एक ओरको उंगली उठाकर तिरस्कारपूर्ण स्वरमें कहा और घोड़ेकी रासको स्वयं अपने हाथसे एक झटका देकर बग्घी दौड़ा दी।

× × ×

उसके पहले—

स्वतन्त्र भारतकी एक प्रान्तीय राजधानीके प्रमुख उद्यानमें एक फरिश्ता अपने एक देवाचनलोक-वासी मनुष्य मित्रके साथ टहल रहा था। मनुष्य-आत्मा, जिसे अपना पिछला शरीर छोड़े एक हजार वर्षसे अधिक बीत चुके थे, इस पृथ्वीपर और इसी देशमें जन्म लेनेके लिए उत्सुक था; और उसके मित्र फरिश्तेकी राय यह थी कि उसे अभी दो-चार सौ वर्ष और देवाचनमें ही ठहरना चाहिए। उन दोनोंमें यह वाद विवाद च—

रहा था। फरिश्तेका कहना था कि अभी इस देशके आम लोग इतने समझदार और खुले मस्तिष्कके नही है कि उसकी ठीक कद्र कर सके और उसकी सेवाओंसे लाभ उठा सकें। मनुष्य-आत्माका फ़रिश्तेके इस आरोपसे मतभेद था। अन्तमे फ़रिश्तेने, जो उस बाग़के पास बीसियो बरससे रह रहा था और वहाँके लोगोको पूरी दिलचस्पीके साथ देखता-समझता रहता था, बाग़के बगलकी सड़कपर दूरीपर आती हुई बग्घीकी ओर संकेत करके कहा :

"उस बग्घीमे एक सुशिक्षिता, सुन्दरी तरुणी आ रही है। उसका पिता रोग-शय्या पर पड़ा हुआ है और ग़लत ओषधि पहुँचनेके कारण उसकी हालत बहुत बिगड़ गई है। मै तुम्हे एक परचेपर उस ठीक दवाका नाम लिखकर देता हूँ जो कि उसके प्राण बचानेकी अब एकमात्र दवा है। वह इस समय अपने पिताके एक कर्ज़दार से कर्ज़ का एक हज़ार रुपया लेने जा रही है। वह कर्ज़दार तीन घण्टेके भीतर इस शहरको छोडकर दूर चला जायगा। तुम इस लड़कीकी सहायता करनेका प्रयत्न कर देखो। उसकी बग्घी रुकवाकर उसे ठीक दवाका यह परचा दे दो। रुकनेमे उसे अपने हज़ार रुपयेके हर्जका डर हो तो हजार-दो हजार रुपये अपने पाससे देकर उसकी वह चिन्ता भी मिटा देना। इधरसे यह देखो, यह खूबसूरत-सा युवक उस बग्घीकी ओर जा रहा है। तुम कुछ देरके लिए इस युवकके शरीरमे प्रवेश कर जाओ और मेरे बताये अनुसार उस लड़कीकी सहायता करनेका प्रययत्न करो।"

मनुष्य-आत्माने पाँच मिनटके लिए सड़कपर जाते हुए उस सुन्दर युवकके शरीरमें प्रवेश कर लिया और फ़रिश्तेने ठीक दवाका नाम लिख कर एक परचा और दो हजारके नोट उसकी जेबमे डाल दिये।

स्वस्थ प्रेम

तीन युवकोंने एक बार किसी मेलेमें एक सुन्दर तरुणीको देखा और तीनों ही उसपर मोहित हो गये।

सुन्दरीने प्रेम-शास्त्रका बहुत अच्छा अध्ययन किया था और प्रेम-सत्कार की बहुत सुन्दर-सुन्दर प्रणालियाँ वह जानती थी।

उसने उन तीनोंका अपनी मधुर बोली और मधुरतर चेष्टाओंसे सत्कार किया और अपने घरका पूरा पता बताकर अत्यन्त शिष्ट शब्दोंमें उन्हें जता दिया कि उनमें से जिसका प्रेम सबसे अधिक सच्चा और स्वस्थ होगा उसे ही वह अपना पति स्वीकार करेगी।

उसके बताये अनुसार तीनों युवक अपने-अपने घरसे उससे मिलनेके लिए निकले।

चलते-चलते राहमें उन्हें एक ऐसी श्मशान भूमि पड़ी जहाँ किसी रोग-विशेषके सड़े हुए मुर्दे जलाये जाते थे। वह भूमि चौबीसों घण्टे जलती चिताओं और उनकी बदबुओंसे भरी रहती थी।

उस स्थानकी दुर्गन्ध नाकमें आते ही एक प्रेमी तो तुरन्त वहींसे वापस लौट गया, दूसरेने जैसे-तैसे प्राणायामोंका सहारा लेकर दौड़ते हुए वह जगह पार कर ली; और तीसरेकी लगन इतनी तेज थी कि उसे अपनी प्रेम-चिन्तामें उस दुर्गन्धका पता ही नहीं लगा। ये दोनों उस सुन्दरीके घरपर पहुँच गये।

तरुणीने इन दोनों का प्रेमपूर्ण स्वागत किया और सारी राह-कथा सुनी। पहले प्रेमीके वापस लौट जानेका समाचार भी उसे उनसे मालूम हो गया।

सुन्दरीने बताया कि उसका स्वयंवर तीनों ही प्रेमियोंकी उपस्थितिमें होना चाहिए और इसलिए यही ठीक है कि वे तीनों उसीके घर पहुँचें।

वह दोनों प्रेमियोंको साथ लेकर एक दूसरे ही मार्गसे तीसरे युवकके घर जा पहुँची। वह युवक एक अच्छा चित्रकार था और उस समय अपनी चित्रशालामें बैठा उसी तरुणीका चित्र बनानेमें तन्मय था।

इनके जानेका समाचार पाकर वह बाहर आया और बड़े प्रेम और उत्साहके साथ उन्हें भीतर ले गया।

भीतर पहुँचते ही उस तरुणीने अपने केश-जूटमें सम्हालकर रखी हुई ताजे पुष्पोंकी वरमाला निकालकर उसके गलेमें डाल दी।

यह देख पहले दोनो प्रेमी विस्मय-विषादमें ठगे-से रह गये।

"इनका ही प्रेम इच्छा और संघर्षसे परे और इसीलिए सच्चा, सहज-वाही एवं स्वस्थ प्रेम है। आपके प्रेममें उस दुर्गन्धका भी थोड़ा-सा पुट घुल-मिल गया था जिसे आपने प्रयत्नपूर्वक राहमें सहन किया था; और आपको जो राहकी दुर्गन्धका अनुभव ही नहीं हुआ वह आपकी शारीरिकसे भी अधिक मानसिक अस्वस्थताका सूचक है।" सुन्दरीने उन दोनोंका समाधान किया।

अन्तिम ही क्यों ?

किसी नगरमें बाहरसे एक कारीगर आ गया। वह लकड़ीके बहुत सुन्दर सुन्दर खिलौने बनाता था। उसे नक्षत्र विज्ञानकी कुछ विशेष गहरी जानकारी भी थी, इसीलिए उसके बनाये खिलौने ऐसे होते थे कि बड़े लोग नक्षत्र विज्ञानके अध्ययनमें इन्हें नक्शों या चित्रोंके रूपमें भी काममें ला सकते थे।

नगरके एक दूकानदारने उस कारीगरको नौकर रख लिया। दूकानदारने उसे भरपूर प्रोत्साहन और वेतन दिया। कुछ दिनोंमें वह दूकान उन खिलौनोंसे भर गई। जब दूकानदारने देखा कि उसे अब कारीगरकी आवश्यकता नहीं रह गई तब उसने उसे अलग करनेका निश्चय किया। उसकी नीयत भी अन्तमें बिगड़ गई; और यह देखकर कि उसे अब उसकी आवश्यकता भी नहीं पड़ेगी, उसने कारीगरको अन्तिम महीनेका वेतन भी नहीं दिया।

उस दूकानसे निकलते ही एक दूसरे दूकानदारने उसे रख लिया। उसने भी प्रारम्भमें उसकी बड़ी खातिरदारी की और जब उसकी आवश्यकता पूरी हो गई तो उसने भी उस कारीगरको अन्तिम महीनेका वेतन दिये बिना अलग कर दिया।

इसी प्रकार अनेक दूकानदारोंने उसे नौकर रखा। अपने हुनरके कारण उसकी प्रसिद्धि इतनी हो चुकी थी। अपना मतलब पूरा हो जाने पर अन्तमें हर एकने उसके साथ कम या अधिक अनीतिका ही व्यवहार किया। उस समय की और आज की मानव प्रवृत्तियों देखते हुए यह कुछ अधिक अस्वाभाविक भी नहीं था।

अन्तमें खीझकर उसने निश्चय किया कि वह अब किसीकी नौकरी नहीं करेगा। इतना ही नहीं उसने नगरके न्यायालयमें उन दूकानदारोंके विरुद्ध दावा भी कर दिया जिन्होंने उसका पैसा मारा था।

नगरके न्यायाधीशने फैसलेमें उन सब दूकानदारोंपर एक-एक स्वर्ण मुद्रा जुर्माना किया और कहा कि इस प्रकार एकत्र हुए धनका आधा उस कारीगरको दिया जाय।

लेकिन आठ-आठ दस-दस स्वर्ण मुद्राएँ तो उनमेंसे एक-एक दूकानदारने कारीगरके अन्तिम मासके वेतनकी ही रोक ली थी। कारीगरको इस फैसलेसे कोई सन्तोष नहीं हुआ। उसने देशके प्रधान न्यायालयमें अपील कर दी।

देशके प्रधान न्यायाधीशने फैसला दिया :

"जिन दूकानदारोंने अन्तिम मासका वेतन नहीं दिया है या कम दिया है उन सबसे बीस-बीस स्वर्ण मुद्राएँ दण्ड लेकर वह सारा धन इस कारीगरको दिया जाय। उसके साथ उनके अन्तिम व्यवहारके अनुसार यही न्यायोचित है। लेकिन इस अंतिम व्यवहारसे पहले उन्होंने इस कारीगरको जो संरक्षण और प्रोत्साहन दिया और उससे इसे जो पोषण और ख्याति प्राप्त हुई, उसका कुछ भी ध्यान न रखकर इसने उनपर जो यह दावा किया है उसके प्रतिकारस्वरूप यह आवश्यक है कि इसकी बनाई वस्तुओंपर खुदे हुए इसके नामको हर वस्तुसे मिटाकर निर्माताकी जगह उस वस्तुके विक्रेताका नाम खुदवा दिया जाय और इसे इस देशभरमें कोई भी दूकानदार अब नौकर न रक्खे। इस देशके दूकानदारोंकी कम ईमानदारीका और इस कारीगरके प्रति न्यायका ध्यान रखते हुए यह अन्तिम बात भी अनिवार्य है। कारीगरको अधिकार है कि वह प्रधान न्यायालयके इस फैसलेको स्वीकार करे या चाहे तो अपने नगर-न्यायालयके पिछले न्यायको ही मान ले। नगरके न्यायालयके न्यायको माननेकी दशामें उसे इतना और करना पड़ेगा कि वह अपने पुराने मालिकोंकी दूकानोंपर, यदि उन्हें कभी उसकी आवश्यकता पड़े तो, एक-एक महीने केवल आधे वेतनपर काम करे।"

× × ×

आजकी कोई नीची या ऊँची अदालत ऐसे मामलेमें सम्भवतः ऐसा फैसला नहीं देगी; लेकिन मेरा अनुमान है, कर्म-लोकके सबसे ऊँचे न्यायालयमें कुछ इसी प्रकारके फैसले दिये जाते हैं क्योंकि वह अन्तिम झगडेको ही न लेकर पिछली बातोंका भी लेखा-जोखा करता है।

नया पाठ

किसी नगरके समीप एक आश्रममें एक वयोवृद्ध परम भक्त रहता था। नगरमे इस भक्तकी बहुत बड़ी प्रतिष्ठा थी और अधिकाश नागरिक इसके शिष्य थे।

एक बार एक परम विदुषी सुन्दरी उस नगरमे आई। उस विदुषीका उपदेश सुननेके लिए लोगोने एक सभा की। उसने अपने व्याख्यानमें बहुत-सी विद्वत्तापूर्ण बातें बतानेके साथ-साथ उस भक्त साधुकी कुछ कटु आलोचना भी कर दी। उसने कहा कि उस भक्तमे अनेक गुणोंके होते हुए भी एक बहुत बड़ा दोष यह है कि वह बहुत संकीर्ण हृदयका है। विदुषीकी यह बात लगभग सभी लोगोको, और विशेषकर उस भक्तके शिष्योको, बहुत बुरी लगी। फिर भी उन्होने सभामें कोई गड़बड़ी नहीं होने दी। वक्तृताके अन्तमे विदुषी वक्ताने घोषित किया कि अगले दिन वह भक्तियोगपर भाषण देगी और भक्तिके सम्बन्धमें कुछ ऐसे गूढ़ तत्त्व एक दुर्लभ भक्ति-ग्रन्थसे पढ़कर बतायेगी जो उस दिन तक किसी भी भक्ति-मार्गीने प्रकट नहीं किये थे।

भक्त साधुके शिष्योने उसी रात अपने गुरुके पास जाकर उस विदुषीकी आलोचना और घोषणाकी बात कही। विदुषीके प्रति उनका रोष उमड़ रहा था।

"और आप लोग कल फिर उस वक्ता स्त्रीका उपदेश सुनने जायँगे?" भक्त साधुने त्योरियोपर कुछ बल देकर प्रश्नके स्वरमे उनसे कहा।

"नहीं, कदापि नहीं!" सभी शिष्य एक स्वरमें बोल उठे, "कल हम उस बकवादिनी स्त्रीका व्याख्यान ही अपने नगरमे नहीं होने देंगे। जो आप जैसे निर्विकार, निरभिमान महापुरुषको संकीर्ण-हृदयका कह सकती है उसकी बुद्धिका अनुमान लगाना हमारे लिए कठिन नहीं रह जाता।"

इसपर भक्तराज मौन होकर ध्यान-मग्न हो गये। लोग चले गये।

अगले दिन उस विदुषीकी सभामें नगरका एक भी व्यक्ति नहीं पहुँचा। टोह लेनेके लिए आये हुए कुछ लोगोंने दूर-दूरसे ही देखा, सभा-स्थलके बड़े वृक्षके नीचे धरतीपर बैठी हुई वह स्त्री किसी एक व्यक्तिसे बातचीत कर रही है। उनका निश्चय था कि यदि कुछ अधिक लोग उसके पास पहुँचेंगे और वह अपना भाषण प्रारम्भ करेगी तो वे सभी उसके पास पहुँच जायँगे और उसे चुनौती देकर उसकी सभाको भंग कर देंगे।

बहुत देर तक प्रतीक्षा करनेके बाद जब उन खोज लेनेवाले नागरिकोंने देखा कि उस स्त्रीके पास कोई अन्य व्यक्ति नहीं जा रहा है और वह एक अकेले पुरुषसे बात करनेमें तन्मय है, तब उनका कुतूहल बढ़ गया और वे उसके पास जा पहुँचे।

पहुँचते ही उन्होंने देखा कि उसके साथका वह व्यक्ति और कोई नहीं, स्वयं उनके गुरु वृद्ध भक्तराज ही थे। उन लोगोंके पास आनेपर भक्तराजने उनसे कहा:

"निस्सन्देह आप लोगोंने अपने विचार और व्यवहारसे मेरी संकीर्ण-हृदयताका ही परिचय दिया है। जिसके शिष्योंका हृदय संकीर्ण हो, उसकी संकीर्णतामें उस गुरुका भी कुछ भाग अवश्य रहता है। मुझे यदि आप लोगोंने सचमुच निरभिमान और विशाल-हृदय समझा होता तो इस उपदेशिकाकी बातोंमें मेरा कोई अपमान न देखते और जिस अनिर्देश्य और दुर्लभ भक्ति-ग्रन्थकी बात बतानेका इसने वचन दिया था उस ग्रंथ और ग्रन्थकी ओर से तो कमसे कम अपने कान और आँखें न बन्द करते। लेकिन उन गूढ़ तत्वको सुनने-समझनेके अभी आप लोग अधिकारी नहीं हो पाये हैं। मैं फिर भी अपनी इस नगरका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ कि इसने आप लोगोंकी हार्दिक उदारताकी वह बात दिखादी है जो मैं [illegible] नहीं,

दिखा पाया था। आपको यह बताते हुए मुझे आज बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि यह विदुषी मेरी ही गुरु-बहिन है। जिन गुरुसे मैंने भक्तियोगकी दीक्षा ली थी उन्हींसे इसने ज्ञान-योगकी दीक्षा ली है और जो भक्ति-ग्रन्थ आप इसके हाथमें देख रहे हैं वह मेरे ही गुरुका लिखा हुआ है और मैं बहुत दिनोंसे इस अमूल्य ग्रन्थ-रत्नकी खोज में था।"

प्रेमका देवता

एक सुबह एक नवयुवा सुन्दरीने अपनी सहेलियोंमें घोषित किया कि पिछली रात प्रेमके देवताने उसे स्वप्नमें दर्शन देकर कहा है कि अगली एकादशीको नगर-सरिताके तटपर देशके सभी युवकों-युवतियोंका एक बहुत बड़ा मेला होगा, जिसमें प्रेम-देव स्वयं प्रकट होकर उन सबकी पूजा ग्रहण करेंगे और उनकी प्रेम-कामनाएँ पूरी करेंगे। उसने बताया कि प्रेमके देवताका उस मेलेमें कुछ ऐसा आशीर्वाद होगा कि जिन युवकों और युवतियोंके हृदय अपने प्रेमियोंके प्रति कुछ कठोर होंगे वे मृदुल हो जायेंगे, जिन्हें प्रेमीकी खोज होगी उन्हें प्रेमी मिल जायेंगे और जिनके भीतर रूप या आकर्षणकी कमी होगी उनका सौन्दर्य और आकर्षण भी कुछ बढ़ जायगा।

उस तरुणीका यह स्वप्न द्रुत गतिसे सारे देशमें फैल गया।

एकादशीके दिन उस नगरके विस्तृत सरिता-तटपर सारे देशके लाखों युवकों और युवतियोंका मेला जुट गया। उन सबके हृदयोंमें स्वभावतया अपने किसी निष्ठुर या उदासीन प्रियजनका हृदय जीतनेकी या अपने लिए कोई उपयुक्त प्रेमी प्राप्त करनेकी या अपने सौन्दर्य और आकर्षणकी कमीको पूरा करनेकी आशा थी। उन्हीं भावनाओंसे स्वभावतया उनके हृदयोंमें अपने तिरस्कृत या अवहेलित प्रेमियोंके प्रति कुछ उदारताका भी प्रवेश हो गया था।

निर्दिष्ट समय और स्थानपर सब लोग देवताके लिए बनाये हुए ऊँचे आसन-मञ्चकी ओर दृष्टि लगाये उसके प्रकट होनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि उन्होंने एक सुन्दरी नवयुवतीको धीरे-धीरे उस मञ्चकी ओर आते देखा। वह मञ्चपर चढ़ गई और उपस्थित जन-समूहको लक्ष्यकर उसका अति मधुर कोमल स्वर 'माइक' जैसे यन्त्रपर झंकृत हो उठा :

"आजके समारोहमें प्रेमके देवताके प्रकट होनेकी घोषणा मैंने की थी। मैं नहीं जानती कि प्रेमका कोई देवता इस या किसी अन्य लोकमें है भी या नहीं। मैंने वैसा कोई स्वप्न नहीं देखा था। मैंने एक छलना-पूर्ण कल्पनाका ही प्रचार किया था। लेकिन मै समझती थी कि उस प्रकार, और वैसी कामनाओंको लेकर यदि देशका युवा-वर्ग एकत्र हो सकेगा तो वह स्वयं एक प्रेमके देवताका निर्माण अवश्य कर लेगा और प्रेम-सम्बन्धी उदारता और सरसताका सञ्चार अपने लिए स्वयं कर लेगा। आजके समारोहमे मैंने स्वयं अपने उस प्रेमीके हाथों आत्म-समर्पण करनेका निश्चय किया है जिसके ऊपरी आकर्षणमे कुछ साधारण कमियोंके कारण मैंने अब तक उसके गहरे प्रेमकी अवहेलना की थी। आजके इस प्रपञ्चपूर्ण आयोजनके लिए आप चाहें तो जो भी उचित समझें दण्ड मुझे दे सकते हैं।"

यह कह कर उसने मंचसे उतर कर पास खड़े हुए एक लगभग कुरूप-से युवकके गलेमें वरमाला डालदी। सारी सभा हर्ष-ध्वनिसे गूँज उठी।

कहते है कि उस मेलेमेंसे कोई भी विफल-काम नहीं लौटा। साढ़े तीन लाख स्वीकृतियाँ ओर अट्ठाईस सहस्र विवाह उसी समारोहमें हुए और वरमालाओंके लिए चारों दिशाओंसे चार वायुयान फूलोंसे भरे हुए लाने पड़े!

शिव-निर्वासन

एक बार देवताओं और असुरोंने मिलकर समुद्रका मंथन किया। समुद्र मंथनसे जो चीजें निकलीं उनमें विष भी था। विषके निकलते ही सारा विश्व उसमें झुलसने लगा और सभी प्राणी भयभीत हो गये। तुरन्त ही शिवजीने आगे बढ़कर उस विषको पी लिया और इस प्रकार सारे ब्रह्माण्डकी रक्षा हो गई—भले ही इस विष-पानसे शिवजीका कण्ठ नीला पड गया।

शिवजीके इस सामर्थ्यपूर्ण कार्यसे सारे विश्वके सुर-असुर, मानव-अमानव उनके कृतज्ञ हो उठे। उनकी स्तुतिके गानसे सारा ब्रह्माण्ड गूँज उठा। अपनी उस अनुपम सेवाके ऐसे स्वागत-सम्मानसे शिवजी भी मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए।

कुछ ही समय बाद शिवजीके मनमें आया कि चलो मानवोंकी बस्तियों में चलकर उनकी श्रद्धा-भेंटका कुछ सुख लूटें। उन्हें पता था कि विष-पान के समयसे वे लोग उनके विशेष भक्त और अनुगृहीत बन गये हैं।

मर्त्यलोककी एक नगरीमें पहुँचकर उन्होंने जो 'अलख-निरञ्जन' की पुकार लगाई तो आस-पासके घरोंसे बहुत-से लोग निकल पड़े और उन्होंने शिवजीको दूरसे ही प्रणाम किया।

"हम तुम्हारी श्रद्धा-भक्तिसे बहुत प्रसन्न हैं और तुम्हारी भेंट-पूजा स्वीकार करनेके लिए स्वयं तुम्हारे पास चले आये हैं। चलो, हम तुम्हारे घरोंको अपनी चरण-रजसे पवित्र करके आज तुम्हें कृतार्थ करेंगे।" शिव-जीने कहा।

"सो तो आपकी हमपर बहुत बड़ी कृपा है आशुतोष!' लोगोंने हाथ जोड़कर कहा। "लेकिन आपके गलेमें यह नीला-नीला विष जो हिलोरें मार

रहा है उससे हमें बड़ा भय लगता है। हमारे घरोंमें कोमलांगी ललनाएँ हैं, सुकुमार बच्चे भी हैं।"

"इस विषसे अब किसीका क्या बिगड़ता है! यह तो हमारे गलेमें बन्द है।" शिवजीने कहा।

"अभी तो बन्द अवश्य है, महादेव! किन्तु यदि किसी समय आपका कण्ठ फट गया तो हमारी नगरीमे तो प्रलय हो जायगा। हम आपकी मूर्तियाँ अपने-अपने घरोंमे स्थापित करके उनकी पूजा कर लेंगे। हमारी बस्तीसे दूर कहीं अन्यत्र ही आप रमण करें तो हमपर आपकी बडी अनुकम्पा होगी।" लोगोंने कहा।

शिवजीने मर्त्यलोककी लगभग सभी नगरियोंमें जा-जाकर द्वार-द्वारपर अलख जगाया, पर किसीने उन्हें अपने अन्तःपुरमें स्थान नहीं दिया। शिवजीके इस भू-भ्रमणका समाचार जब सारे ससारमें फैल गया तो सभी नगरोंके प्रतिनिधियोंने एक जगह एकत्र होकर एक सभा की और राज-बलकी सहायतासे शिवजीको मानव-पुरियोंसे दूर हिमाञ्चलके ऊँचे कैलास नामक शिखरपर ले जाकर वहाँ उनके लिए एक कुटिया बनवा दी। शिवजी असन्तुष्ट न हो जायँ, इस विचारसे उन्होंने निवेदन किया :

"हे कैलासपते! अपनी दो सुन्दर नगरियाँ, अयोध्या और मथुरा हम आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हैं और इनमें स्वयं आपको तो नहीं किन्तु आपके परम सखा और संरक्षक विष्णु भगवान्‌को एक-एक बार अवतार लेनेका हम अवसर दे सकते हैं; और उन अवतारोंको अपने घरोंमें प्रवेश की भी पूरी सुविधाएँ दे सकते हैं। आशा है, हमारी इस भेंटसे आप सन्तुष्ट होंगे। हमारी प्रार्थना है कि जब कभी आप मर्त्यलोकमें पदार्पण करें तो इस निर्जन हिमस्थलीमें ही विश्राम करें और हमारी नगरियोंकी ओर उतरनेका कष्ट न करें।"

× × ×

मेरे कथागुरुका कहना है कि लोक-हितके लिए विषपान या उससे हलका कोई अन्य कुप्रभाव अपने ऊपर लेनेवाले व्यक्तियोंके साथ मनुष्योंका व्यवहार अभी तक वैसा ही चला आ रहा है। मेरा अनुमान है कि शिव-जीके निर्वासनकी यह कथा किसी इतिहास-पुराणमें अभी तक नहीं आई है और मानवजातिके ऐसे व्यवहारके दर्शन कुछ बड़े बलिवेदीपर चढ़ाये हुए सुधारकोंकी गाथाओंके अतिरिक्त समाजके बहुसंख्यक छोटे सेवकोंके जीवनमें भी भरपूर होते हैं—उनके जीवनमें जो हमारे अनेक विषों-मलोंका निवारण करते हैं और जिन्हें हम अस्पृश्य कहकर दूर-दूर रखते हैं।

रूपका मोल

एक अनाथ भिखारिणी किसी नगरमें भीख माँगकर जैसे-तैसे अपना पेट भरती थी।

कुछ समय बाद—किसी दाताकी देन!—उसके गर्भसे एक बच्चीका जन्म हो गया। अब वह बच्चीको गोदमें लिये हुए सड़कोंपर भीख माँगती और लोग उसपर कुछ तरस खाकर उसे पहलेसे कुछ अधिक दे देते। अब उसे किसी दिन भूखे या आधे पेट नहीं रहना पड़ता।

धीरे-धीरे वह बच्ची बढ़ चली। लोगोंने देखा, वह विशेष सुन्दर और आकर्षक थी।

किशोरावस्था पार करते ही उस बालिकाका रूप-लावण्य निखर चला। भिखारिनकी झोली अब बिन माँगे भरने लगी। लोग बुला-बुलाकर उसे देते। भिखारिन भी समझती थी कि इन सुदिनोंका कारण वह बच्ची ही है। वह सदैव उसे अपने साथ लिये रहती।

गंगा-तटपर बसा वह नगर एक सुपरिचित तीर्थस्थान था। दूर-दूरके रईस यात्रा और स्नानके लिए वहाँ आते थे। भिखारिणी अब अपनी नवयुवती पुत्रीको साथ लिये उसी तीर्थ-तटपर दिखाई देती। नये-नये रूप-रसिक रईसोंसे उसे मोटी मुद्राएँ मिल जातीं।

एक दिन गंगा-तटके सबसे उजले धर्म-निवासके सामने, एक समृद्ध युवकके आगे हाथ बढ़ाकर भिखारिणी माँग रही थी—"सरकार! गरीबनी के पेटको कुछ मिल जाय!"

युवकने एक-एक नजर भरकर उस भिखारिणी और उसकी सुन्दर, तरुण संगिनीको देखा और मुँह बिचकाकर ताँबेका सबसे छोटा सिक्का उसके आगे धरतीपर फेंक दिया।

"ताँबेका धेला! बस सरकार, यही हमारी औकात है?" भिखारिणी ने चोट खाये-से स्वरमें कहा। उसका आत्म-सम्मान जाग उठा था।

युवकने कोई उत्तर नहीं दिया और अपने निवासभवनमे चला गया।

भिखारिणी उस दिनसे सोचने लगी। वर्षोंसे ताँबेका सिक्का देनेका अपमान किसी-दाताने उसका नहीं किया था। तरुणी कन्याके रूप-दर्शन का मूल्य उसने सदैव चाँदीकी, और कभी-कभी सोने तककी, मुद्राओंमे पाया था और उसका ऐसा ही मूल्य वह आँक चुकी थी। इस युवकने उसे एक करारी ठेस पहुँचाई थी।

"मेरी अप्सरा-सी बेटीके रूपका मोल क्या ताँबेका धेला भी हो सकता है ?" एक दिन वह अपनी झोपड़ीमें बैठी बड़बड़ा रही थी।

"और क्या उसके रूपका मोल चाँदीका रुपया या सोनेकी गिन्नी तक ही हो सकता है, बस ?" अनायास उसकी पुत्री बोल उठी।

भिखारिणी अब सोचकी और भी गहराईमे उतर पड़ी। उसकी बेटीके रूपका मोल शायद सोनेकी गिन्नीसे भी अधिक हो सकता है।

उस दिनसे उसने अपनी बेटीको भिक्षाके लिए साथ ले जाना बन्द कर दिया। नगरके दाता लोग अब उससे उसके समाचार पूछने लगे। 'वह बीमार होकर कुरूप और दुबली हो गई है।' भिखारिणी उनका समाधान करने लगी। माँ-बेटीका अब निश्चय हो गया था कि माँके साथ बेटी अब कभी भी सड़कोंपर भिक्षाके लिए नहीं जायगी। कुछ महीने इसी प्रकार बीत गये।

एक दिन अचानक नगरवासियोंने देखा, एक बड़ी गाजे-बाजेकी बरात-सी, चाँदी-सोने और रत्नोंसे जगमगाती, उनके नगरमे चढ़ आई है, और उसी दिन उन्होंने देखा कि उस देशके सबसे बड़े रजवाड़ेके महाराज अपने युवराजके साथ उस भिखारिणीकी अद्वितीय सुन्दरी कन्या को बड़े सम्मानके साथ विवाहकर ले गये हैं।

× × ×

इस कथाको सुननेके बाद मेरे कथागुरुने इसके पात्रोंका नाम-करण यों किया है :

भिखारिणी—विद्याधरी। उसकी पुत्री—धी-वाणी या (संक्षिप्त नाम) वाणी। ताम्र मुद्राका दान करनेवाला (युवराज)—सुपात्र समर्थ। उसके पिता (राजा)—नियति समर्थ।

और उनका कहना है कि उस भिखारिणीके पुराने पेशेपर चलने वालोंकी संख्या आजके विद्वत्—(विद्याधर) समाजमें लगभग सौ प्रतिशत छाई हुई है।

केवल एक बूँद और

किसी नगरमे एक साधु अपने कुछ शिष्योंके साथ आया। उस साधुके रक्तमें कोई ऐसी विशेषता थी कि जिन रोगी बालकोंकी पलकोंपर वह अपनी उँगलीका एक बूँद रक्त निकालकर लगा देता था वे उसी दिनसे स्वस्थ होने लगते थे।

धीरे-धीरे इस बातकी चर्चा सारे नगरमें फैलने लगी और एक दिन कुछ भक्तोंके प्रश्नपर उस साधुने प्रकट किया कि उसे गौरा-पार्वतीकी सिद्धि प्राप्त है और उसके रक्तसे सूखा रोगके बच्चे स्वस्थ हो जाते हैं। साधुका यह वक्तव्य सारे नगरमें बिजलीकी चालसे फैल गया।

उसी दिन दोपहरतक साधुकी कुटिया सोना-चाँदी, फल-फूल और भेंट-पूजाकी सभी प्रकारकी सामग्रियोंसे भर गई। लोगोंने कहा कि ऐसे परोपकारी सिद्ध महात्माको वे अब और कहीं न जाने देंगे और अपने नगरमें ही उसके लिए एक विशाल आश्रम बनवा देंगे और उसीके शिष्य बनकर शङ्कर-पार्वतीकी आराधनामें अपना जीवन बितायेंगे।

तीसरे पहरसे साधुकी कुटियाके सामने उन दम्पतियोंका ताँता लग गया जिनके बच्चे सूखा रोगसे पीड़ित थे। सबकी गोदीमें उनके रुग्ण-काय बालक थे। नगर बड़ा था—कलकत्ता, बम्बई जैसा ही—और उसमें सूखा रोगसे पीड़ित बालकोंकी संख्या हजारोंमें गिनी जा सकती थी।

दुखियों-रोगियोंकी इतनी भीड़ देखकर साधुका हृदय दयासे उमड़ पड़ा। उसने अपने त्रिशूलकी नोकपर उँगली रक्खी और उसमें रक्त छलछला आया। रक्तके टीकोंसे रोगी बालकोंकी पलकें भीगने लगीं। जब उस उँगलीमें रक्त आना बन्द हो गया तो साधुने दूसरी उँगली त्रिशूलपर रक्खी। रोगियोंकी पंक्ति धीरे-धीरे औषधि लेकर खिसकने लगी, लेकिन उसका अन्तिम छोर बढ़ता ही गया। साधुकी दसों उँगलियाँ जितना रक्त

दे सकती थी दे चुकीं पर रोगियोका अभी कोई अन्त नहीं था। हो सकता है, आस-पासके नगरो और गाँवोंके लोग भी उस समय तक आने लग गये थे।

कथाके विस्तारमें जानेकी आवश्यकता नही, क्योंकि उसका अन्तिम दृश्य ही पूरी कथा कह देता है। उस रात्रिके अन्तमें सूचना पाकर जब राज्यके कुछ अधिकारी घटनास्थलपर पहुँचे तो उन्होने देखा कि वह साधु पेडकी डालसे बँधा हुआ उल्टा लटक रहा है, उसका सारा शरीर घावोंसे छलनी हो रहा है और सफेद पड़ गया है, पासके वृक्षोंसे उसके शिष्यगण बाँधकर निरुपाय कर दिये गये है और साधुके लटकते हुए शरीरके पास खड़े गोदमे बच्चेको लिये हुए एक पति-पत्नी साधुके शिरके नीचे हाथ पसारे कह रहे है :

"महाराज ! एक बूँद हमे भी। हमारे यही एक बालक है। क्या हम्हीं इतने अभागी है कि आपके दरबारसे हमें निराश लौटना पड़ेगा ?"

× × ×

और क्या आजका मनुष्य उस नगर और उस समयके मनुष्योंसे कुछ भिन्न हो गया है ? आजके मनुष्यकी प्रकृतिका भीतरतक अध्ययन करनेवाले अन्वेषक जानते है कि वह उससे रत्ती भर भी भिन्न नहीं है। मेरे कथा-गुरुका कहना है कि उस घटनासे शङ्कर और पार्वती कुछ अधिक बुद्धिमान् हो गये है और यद्यपि उनका वैसा वरदान पाये हुए कुछ सिद्धजन अब भी संसारमे विद्यमान है, पर वे अब उन सिद्धजनोंको इस तरह खुलकर मनुष्योंके समाजमें जानेकी आज्ञा नही देते।

विफल सिद्धि

समुद्र-तटसे एक मंज़िलकी दूरीपर बसा हुआ एक छोटा-सा द्वीप था। इस द्वीपका धरातल समुद्रसे थोडा ही ऊँचा था और इसलिए तूफ़ानके अवसरोंपर यह सदैव खतरेमें रहता था। द्वीपका बहुत-सा भाग पहले ही समुद्रकी लहरोंमें गलकर नष्ट हो चुका था और वहाँके निवासी वैसी दुर्घटनाओंके लिए सदैव सतर्क रहते थे।

एक बार एक सिद्ध पुरुष उस द्वीपमें आ पहुँचा। उसे 'पादुका' नामकी सिद्धि सिद्ध थी। उसने द्वीपके सब लोगोंको एकत्रकर उनसे कहा—"मैं तुम सबको पादुका सिद्धि सिद्ध करा दूँगा। वैसे तो इस सिद्धिको प्राप्त करनेमें बारह वर्ष लगते हैं, पर मैं बारह महीनोंमें ही तुम्हें यह सिद्धि दिला दूँगा। इसे प्राप्त कर लेनेपर तुम लोग सिद्ध की हुई पादुका (खड़ाऊँ) पहनकर जलके ऊपर थलकी भाँति ही सुगमता-पूर्वक चल सकोगे और जलके उत्पातोंसे तुम्हें प्राण-हानिका कोई भय न रह जायगा। इस साधनाके लिए तुममेंसे प्रत्येकको मेरे पास एक महीने तक प्रति दिन ब्रह्मवेलामें एक पात्र समुद्रका जल लेकर आना पड़ेगा।"

इतना कहकर उस सिद्धने समुद्रमें उतरकर अपनी पादुका-सिद्धिका प्रदर्शन किया। द्वीपके निवासी इससे बहुत प्रभावित और आश्वस्त हुए। सिद्ध बाबाकी इस कृपापूर्ण देनका उन्होंने बड़े कृतज्ञ-भावसे स्वागत किया।

एक वर्ष तक सभी नगरवासियोंने (छोटे बालकोंको छोड़कर) सिद्ध बाबाके आदेशानुसार पादुका-सिद्धिकी साधना की और अन्तमें उसे प्राप्त कर लिया। सारे द्वीपमें केवल एक युवक ऐसा था, जिसने इस साधनामें भाग नहीं लिया। वह बहुत मस्त, आलसी और लापरवाह प्रकृतिका जीव था। उसका कहना था—"कौन सिद्धि-शक्तिके झगडेमें

पड़कर इतना झंझट करे, सबसे बड़ा सुख निश्चित होकर मौज करने मे है।"

संयोगवश कुछ ही वर्षों बाद एक ऐसा भयङ्कर तूफान आया कि वह सारा द्वीप समुद्रकी लहरोमे डूबने लगा। लोगोने अपना-अपना आवश्यक सामान कंधेपर लादा और अपनी-अपनी पादुकाएँ पहनकर समुद्रके पानीपर चल पड़े।

लेकिन तूफानके सामने कुछ ही दूर चलनेपर उनके पॉव लहरोपर टिके न रह सके। शरीरका संतुलन न रहनेके कारण उनके पॉव पादुका समेत जलके ऊपर उठ गये और वे सभी जल-मग्न हो गये।

अगली सुबह सहस्रो शवोके अतिरिक्त एक जीवित व्यक्ति भी भूभागके समुद्र-तटपर जाकर लगा। वह वही युवक था जिसने पादुका-सिद्धिकी साधना नही की थी।

× × ×

मेरे कथा-गुरुका कहना है कि जलपर तैरनेकी प्राप्त की हुई सिद्धियाँ या सहारे मनुष्यको तूफानी सागरमें डूबनेसे नही बचा सकते, सीमित अवस्थाओंमे ही उसका कुछ बचाव कर सकते है। वैसे, मनुष्यका शरीर कुछ ऐसे अनुपातोसे बना है कि वह कभी भी जलमें अपने-आप नहीं डूब सकता, जब तक कि मनुष्य चिन्ता और प्रयत्नके साथ स्वयंको न डुबा दे। वह युवक शरीर और जलके इस रहस्यको जानता था और निश्चिन्त, निष्प्रयास भावसे जलपर लेटकर उसे सहज ही पारकर गया था। कथा-गुरुका संकेत है कि सागरकी यह बात समूचे भव-सागरपर, और पादुकासिद्धिकी बात संसारकी सभी सिद्धियो और सहारोपर लागू होती है।

अदृश्य नाता

एक सेठजीके सोना-चाँदी, लेन-देन आदिके कई एक कारबार थे। एक शाम, दिनभरके व्यापारके बाद वह बैठे हुए अपनी तिजोरीकी रकम सम्हाल रहे थे कि एक हृष्ट-पुष्ट भिक्षुक उनके सामने आ खड़ा हुआ।

"भोजनका समय है सेठ, भिक्षा चाहिए।" उसने आवाज़ दी।

"इतने हट्टे-कट्टे होकर तुम भीख माँगते हो, बड़े शर्मकी बात है! अपने पेटभरके लिए तुम मेहनत-मज़दूरी करके कमाते क्यों नहीं?" सेठजीने उपदेश और तिरस्कार-मिश्रित स्वरमें कहा।

"इसलिए कि तुम अपने पेटसे कहीं अधिक, दूसरोंके पेटका हिस्सा भी कमा लेते हो।" भिक्षुकने अपने एक हाथसे सेठके दोनों हाथ पकड़कर, दूसरेसे नोटोंकी गड्डीमेंसे एक छोटा-सा, एक रुपयेका नोट उठाते हुए कहा और उसे लेकर एक ओर चल दिया।

'डाकू-चोर!' का शोर मचाकर सेठजीने सारे बाजारको इकट्ठा कर लिया। कुछ लोगोंने भिखारीको पकड़ लिया। वह पुलिसके हवाले कर दिया गया।

मुंसिफके सामने भिखारीकी पेशी हुई। उसने अपना अपराध स्वीकार किया।

"तब फिर इतने हट्टे-कट्टे होते हुए भी मेहनतसे पैसा कमानेके बदले तुमने यह डाका क्यों डाला?" मुंसिफने प्रश्न किया।

"इसलिए कि यह सेठ मेरे, और मेरे जैसे सैकड़ों हट्टे-कट्टे जवानोंके हिस्सेका पैसा स्वयं कमा लेता है।" भिखारीने अपना पहलेवाला उत्तर दुहराया।

मुंसिफके होठोंपर एक मुसकानकी रेखा खिंच गई। "तुम्हारा जवाब बहुत अच्छा है; लेकिन अगर इन सेठजीकी कमाईमें हिस्सा है तो इनकी मेहनतमें भी तुम्हारा हिस्सा होना चाहिए। इसके लिए तुम क्या करते हो?"

"सेठने दिनभरमें नोटोंकी यह गड्डी कमानेमें जितना परिश्रम किया उससे कुछ अधिक ही श्रम और शक्ति मैंने उस एक नोटको प्राप्त करनेमें खर्च की थी। इसके अतिरिक्त उस एक नोटको लेकर मैंने सेठके पापोंका भी कुछ बोझ अपने ऊपर उठाया है। मैं मुफ्तकी भीख कभी नहीं माँगता, अपने कर्ज़दारोंसे केवल अपना ऋण ही उगाहता हूँ।" कहते-कहते उस नौजवान भिखारीने अपनी बाँह पास ही खड़े हुए सेठके सामने फैला दी।

उस बाँहपर गुदे हुए अक्षरोंपर दृष्टि पड़ते ही उस सेठने लपक कर उस भिखारीको छातीसे लगा लिया। "मेरा बेटा! मेरा प्राण!" उसके मुँहसे निकल पड़ा।

× × ×

आठ वर्षकी अवस्थासे इस सेठका इकलौता बेटा घरसे निकल गया था। कुछ वर्षोंकी असफल खोजके बाद सेठने उसे मरा मान लिया था। अब सेठके बहुत आग्रह-विनय करनेपर भी वह उसके पास न रुका और दूसरे ही दिन अपनी भिक्षा-वृत्तिपर दूसरे नगरको चला गया।

यह तो खैर संयोगकी बात थी कि यह सेठ उस भिक्षुकका पिता था; लेकिन सभीसे भीख माँगना, और न मिलनेपर एक बारके भोजनके दाम बलपूर्वक वसूल कर लेना उस भिखारीका दैनिक काम था। मेरे कथागुरु का कहना है कि किसी विशेष नातेके अनुसार सभी मनुष्य एक दूसरेके पिता, पुत्र या बराबरीका हकवाले सगे भाई हैं और संग्रह और अपहरण की नीतिपर बनी हुई आजकी आर्थिक व्यवस्था जब समाप्त हो जायगी तब यह नाता स्पष्ट रूपसे देखा जा सकेगा और तभी संसारमें समृद्धिके दर्शन हो सकेंगे।

उद्देश्यके सच्चे

एक बार किसी देशमें इतनी ज़ोरकी वर्षा हुई कि सारी खेती बह गई। वर्षाका वेग घटनेपर खेतोंमें घास-पात और बनी झाड़ियाँ उग आईं। अन्नके अभावसे लोगोंके भूखों मरनेकी नौबत आ जाती, लेकिन दैवयोगसे, और नई उगी हरियालीके आकर्षणसे भी, समीपकी पहाड़ियोंसे सैकड़ों-हज़ारों पहाड़ी भेड़-बकरियाँ भी नीचे उतर आईं और उसका शिकार करके लोग जैसे-तैसे अपना पेट पालने लगे।

लेकिन इन भेड़-बकरियोंके लिए लोगोंमें आपसमें लड़ाई-झगड़े और खून-खराबियाँ होने लगीं। इन पशुओंकी मैदानोंमें टोह पाकर पहाड़ों परसे कुछ चीते-भेड़िये भी उतरने लगे और गाँवोंके शिकारियों और शिकारियोंसे भी आगे निहत्थे निवासियोंपर भी उनके आक्रमण होने लगे।

इन परिस्थितियोंका सामना करनेके लिए एक गाँवके लोगोंने, जो दूसरे गाँवके लोगोंसे कुछ अधिक बुद्धिमान् थे, सभा करके कुछ मजबूत और शिकारमें चतुर मनुष्योंका एक दल बना दिया, जिसका काम यह निश्चित किया गया कि वह सारे गाँवके लिए भेड़ों-बकरियोंका शिकार करेगा और हिंसक पशुओंसे गाँवकी रक्षा भी करेगा। उस गाँववालोंकी देखा-देखी दूसरे गाँवोंके लोगोंने भी अपने गाँवोंमें वैसी ही व्यवस्था कर ली। सम्भव है, गाँवोंकी पंचायतों और नगरोंकी म्यूनिसपैलटियोंका सूत्रपात उसी समयसे हुआ हो।

दुर्भाग्यवश उस देशमें अति-वर्षाका क्रम कई वर्षों तक चलता रहा। भेड़-बकरियोंकी संख्या अब इतनी न रह गई कि उनके माससे सबका पेट भर सके। अन्तमें उसी गाँवके एक आदमीने स्वयं कुछ दिनका प्रयोग करके उस शिकारी-दलके सामने एक नया प्रस्ताव रक्खा। उसने

कहा कि गाँवका वह दल भेड़ों-बकरियोंको मारनेके बदले उन्हे पकड़कर पालनेका प्रयत्न करे और मांसके बदले उनके दूधका प्रयोग करे तो एक भेड़ या बकरीसे इतने लोगोंका पालन हो सकता है जितनेका बीस भेड़ों बकरियोंके माससे नहीं हो सकता।

यह प्रथा मानव-सभ्यताके किसी आदिम युगकी न होकर बीचके ही युगकी है। उससे पहले भी लोग शिकारके अतिरिक्त खेती करना और पशुओंका दूध पीना जानते थे, लेकिन उपभोगकी पुरानी बाते समय-समय पर और देश-देशमे खोती-भूलती भी चलती हैं और इतिहास इसका साक्षी है। उस अशिक्षित भू-भागके लोग पशु-पालनकी कद्र नहीं जानते थे और अपने खेतोंको अपनी सबल बाहोंके परिश्रमसे ही जोतते थे।

उस आदमीके इस नये प्रस्तावका नगरके निर्वाचित दलने बड़ा विरोध किया। उन्होने कहा :

"हमारे दलका निर्माण खाद्य पशुओंके आखेट और हिंसक पशुओंसे गाँवकी रक्षाके लिए हुआ है। हमने इतने वर्षोंमें आखेटके बल और कलामें बहुत उन्नति की है। जिन पशुओंको मारनेके लिए हमारे दलका संगठन हुआ है उन्हें पालकर हम अपने मौलिक उद्देश्यसे डिगनेकी अनीति नहीं करेंगे; हम अपने उद्देश्यके प्रति सच्चे और वफ़ादार ही रहेंगे।"

और कुछ ही वर्षोंमें दस-बीस गावोंके उस छोटेसे प्रदेशके निवासी कुछ भूखसे क्षीण होकर और कुछ आपसमें लडकर समाप्त हो गये।

× × ×

मेरे कथा-गुरुका कहना है कि आजकी सभ्यतामें जगे हुए गाँवों और नगरों वाले उस देशकी मूर्खतापर हँसेंगे और शायद दो-चार आँसू भी बहा देंगे; लेकिन यदि वे ध्यानपूर्वक देख सकें तो देखेंगे कि उन गाँव वालोंकी उस समयकी परिस्थिति और मनोवृत्तिमें और इनकी आज की

परिस्थिति और मनोवृत्तिमें कोई मौलिक अन्तर नहीं है। आजकी पञ्चायतें, म्युनिसपैलटियाँ तथा शिक्षण और शासनकी संस्थाएँ अपने पूर्व-निश्चित कर्तव्यों और शैलियोंसे बाहर—बल्कि उनकी गहराईके ऐन भीतर—कोई नया क़दम उठानेके लिए क्या सचमुच तैयार हैं? मुझे तो इसमें पूरा सन्देह है।

छठी कला

छह मित्र किसी सुरम्य वनस्थलीमें एकत्र होकर बातचीत कर रहे थे।

संयोगवश पासके किसी गाँवकी ढोर चरानेवाली लड़की अपनी गायों को खोजती हुई उधर आ-निकली और उन लोगोंको एकत्र देखकर कुतूहलवश उनके पास रुक गई।

छहों मित्रोंने इस लड़कीको देखा। यौवन और रूपकी अनिंद्य मूर्ति वह तरुणी इतनी सुन्दर थी कि सभी उसे अपलक आँखोंसे देखते रह गये।

"तुम हमारे साथ हमारे राजनगरको चलो तो हम तुम्हें नगर महन्तसे कहकर महा-मन्दिरकी प्रधान देवदासी बना सकते है। मन्दिरकी प्रधान देवदासी बन जानेपर नगरके सभी सुन्दर और धनवान युवक, यहाँ तक कि युवराज भी नित्य साँझको तुम्हें अपने हाथोंसे पुष्पो और रत्नोंकी मालाएँ पहिनाने आया करेंगे। रत्नो और हर प्रकारके उपहारोका तुम्हारे पास ढेर लग जायगा और उन श्रेष्ठ जनोकी जो भी वस्तु तुम माँगोगी वही तुम्हें मिलेगी।" कुछ देर बाद उनमेंसे एक मित्रने उस तरुणीसे कहा।

"तब तो मै राजनगरमें देवदासी बननेके लिए अवश्य चलूँगी।" बालिकाने बड़े उत्सुक भावसे कहा, "यहाँके चरवाहे लड़के मुझे बिलकुल नही भाते और वे मुझे कोई अच्छी भेट भी नहीं दे सकते।"

छहो मित्र उस रूपमयीको साथ लेकर चल दिये। एक कोस चलनेके बाद—वह कुछ ऐसे ही चमत्कारोका युग और देश भी था—वह लड़की पत्थरकी हो गई। पत्थरकी होनेपर भी उसका मोहक रूप सजीव-सा ही बना रहा।

छहमेंसे पाँच मित्रोंकी राय हुई कि उस प्रस्तर-मूर्तिको ही उन्हे साथ ले चलना चाहिए। जो एक मित्र इस प्रस्तावसे सहमत नहीं था वह अकेला, सीधा नगरको चला गया और शेष पाँच उस मूर्तिको लेकर चले।

दूसरा कोस पार करते ही वह प्रस्तर मूर्ति एक पतली शिलापर श्याम-श्वेत वर्णोंमें अङ्कित एक चित्र मात्र रह गई। इसे भी व्यर्थकी वस्तु मानकर एक और मित्र अकेला घरकी ओर चल दिया और शेष चार उसे साथ लेकर आगे बढ़े।

तीसरे कोसपर चित्रवाली शिला भी विलीन हो गई और उसके स्थान पर उस तरुणीका मधुर कंठ-स्वर, आजके वायरलैस जैसे किसी विधानके अनुसार, उनके कानोंमें गूँजता सुनाई देने लगा। पर एक और, तीसरे मित्रने उसे व्यर्थकी एक कल्पना मानकर अपने कान बन्द कर लिये और सीधे, द्रुत गतिसे अपने नगरकी राह ली। शेष तीन मित्र सावधानीके साथ उस स्वरको सुनते हुए एक अन्य दिशामें, जिधरसे वह स्वर आता जान पड़ता था, बढ़ चले।

चौथे कोसके अन्तमें वह स्वर भी विलीन हो गया और चौथा मित्र इस पूरे मधुर अनुभवको एक प्रवञ्चना-पूर्ण नाटक समझकर अपने घरकी ओर चल दिया। शेष दो मित्र उस अलौकिक सुन्दरीकी मोहक चेष्टाओं, रूप-रंग और मधुर स्वरकी स्मृतियाँ दुहराते हुए मुग्ध और विरहातुर हृदयसे आपसमें उसकी चर्चा करते हुए आगे बढ़े।

लेकिन पाँचवें कोसके अन्तमें—इस समय तक रात भीज आई थी—उनमेंसे भी एक मित्रको यात्रा और भावना की थकानके कारण नींद आ गई और वह पथ-तटके एक वृक्षके नीचे सो गया।

उसके सो जानेपर छठा मित्र अकेला रह गया। वह सोचने लगा। अनायास उसका ध्यान उस सुन्दरीकी ओरसे हटकर अपने विरह-विकल हृदयकी ओर गया। मेरी इस हृदय-वेदनाका कारण वह सुन्दरी है या उसकी स्मृति? उसके मनमें सहसा एक प्रश्न उठा। वह उठ खड़ा हुआ। 'स्मृतिमें पीड़ा है, उसे छोड़कर मुझे उस सुन्दरीका ही पता लगाना चाहिए' उसने निश्चय किया और द्रुत गतिसे उसी वनस्थलीकी ओर

लौट पड़ा। वहाँ पहुँचते ही प्रकृतिकी ऊषा वेलामें उसने देखा, वह तरुणी, सजीव उसी स्थलपर खड़ी एक अभूतपूर्व मुसकानके साथ उसका स्वागत कर रही थी।

"तुम लौट आये! तुम्हारे दूसरे साथियोंको इतनी-सी बात नहीं सूझ पड़ी?" उसने कहा।

× × ×

मेरे कथा-गुरुका कहना है कि वह सुन्दरी तरुणी-प्रज्ञाकी देवी (Godess of Wisdom) थी। वे छहो मित्र कलाके मार्ग द्वारा उसकी खोजमें निकले थे। उनमेंसे पहिला मित्र केवल वास्तुक, दूसरा मूर्तिक, तीसरा चित्रक, चौथा गायक, पाँचवाँ कवि और छठा मुनि था। आजके युगमें अभी साधारणतया केवल पाँच कलाओंको स्वीकार किया जाता है, पर इस छठी और एक अन्य सातवीं कलाका भी परिचय आगेकी विकसित मानवताको प्राप्त होना है।

परखकी कसौटी

बात उस समयकी है जब संसारमें मनुष्यके उपजाये छल-प्रपञ्चों और कष्टोंका दौर प्रारम्भ नहीं हुआ था, लोग सरल और प्रसन्न थे और तीनों अवस्थाओंके सुखोंकी पूरी कदर जानते थे। उन्हीं दिनों एक देश-विशेषमें रूप और कलाका सम्मान सबसे अधिक था।

उस देशके एक बड़े नगरकी सर्व-श्रेष्ठ सुन्दरीकी युवावस्थामें ही जल-दुर्घटनासे मृत्यु हो गई थी। वह नगरकी सर्व-श्रेष्ठ सुन्दरी ही नहीं, नगरके युवकोंकी आकर्षणमयी श्रति, उदार हृदय-सम्राज्ञी भी थी और सभी नगर-वासियोंके प्रति उसकी सहृदय सहानुभूति सबसे आगे रहती थी।

नगरके एक कुशल मूर्तिकारने उस दिवंगता नगर-सुन्दरीकी एक सुन्दर मूर्ति बनाई। सभी नगरवासियोंने उस मूर्तिकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और नगरके प्रमुख उद्यानमें उसे स्थापित कर दिया गया।

दूर-दूरसे लोग उस मूर्त्तिको देखने आने लगे। उसकी चर्चा दूसरे देशोंमें भी फैल गई। मूर्त्तिकलाके पारखियों और शिक्षकोंके लिए कला-ग्रन्थोंमें उस मूर्त्तिका सविवरण और समालोचनात्मक उल्लेख होने लगा।

उस सुन्दरीसे अधिक उसके मूर्त्तिकारकी ख्याति बढ़ गई। लेकिन इतनी सब प्रशसा पर भी वह कुछ उत्साहित या अधिक प्रसन्न नहीं दीख पड़ा।

एक बार उस नगरके राज-दरबारमें—देशकी राजधानी उस नगरमें ही थी—बाहरका एक विश्वविख्यात कलाविद् आया हुआ था। उसने राजाके सामने उस मूर्त्तिकी बडी प्रशंसा की और कहा: "यह मूर्त्ति सचमुच नारी-रूप-चित्रणकी दृष्टिसे संसारकी सर्व-श्रेष्ठ मूर्त्ति है। मैं अपने देशको लौटकर विश्वकी नारी मूर्त्तियों पर एक ग्रन्थ लिखूँगा और उसमें इस मूर्त्ति की ऐसी विवेचनात्मक चर्चा करूँगा जैसी आज तक किसीने न की होगी।"

उस मूर्त्तिका निर्माता भी दरबारमें उपस्थित था। उस कलाविद्की बात पर भी वह चुपचाप अन्यमनस्क-सा ही बैठा रहा।

उस कलाविद्को तथा राजाको भी इस मूर्त्तिकारकी ऐसी रूखी गम्भीरता पर बड़ा आश्चर्य और कुछ असन्तोष भी हुआ। अन्तमें राजाके आग्रहपूर्वक प्रश्न करने पर उस मूर्त्तिकारने अपनी वर्षोंकी निरुत्साहिताका भेद खोला। उसने कहा :

"मेरी मूर्त्तिकी सब लोगोंने प्रशंसा की है और उसकी प्रशंसा सुनकर जितने भी लोग उसे देखने आते हैं उसकी प्रशंसा करते हुए ही जाते हैं। दूसरोंकी सम्मतिका इतना अधिक प्रभाव वे पहलेसे ही अपने ऊपर लिये हुए आते हैं कि उन दूसरोंकी आँखोंसे ही वे उसे देखते हैं और उसकी वास्तविक कलाको नहीं देख पाते। मूर्त्तिकलाके पारखियों और विवेचकोंमें आज तक कोई भी ऐसा नहीं आया जिसने निष्पक्ष भावसे बिना किसी पूर्व-धारणाके मेरी मूर्त्तिका विस्तारपूर्वक निरीक्षण किया हो और उसकी वास्तविक सुन्दरताको पहचाना हो।"

मूर्त्तिकारके इस वक्तव्यसे राजा और समस्त उपस्थित दरबारियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। अतिथि कलाविद्ने कहा :

"तब फिर आपकी मूर्त्तिमें ऐसी कौन-सी खूबी है जिसे आज तक कोई भी कलाविद् नहीं देख सका ? और यदि उसमें कोई ऐसी खूबी है जिसे केवल आप ही देख सकते हैं तो उसका लोक-हितके लिए उपयोग ही क्या है ?"

"मैं ही नहीं, सहज निर्भ्रान्त दृष्टिसे देखने वाले साधारणसे साधारण लोग भी उसकी खूबीको देख सकते हैं" मूर्त्तिकारने कहा, "मूर्त्तिके सामने वाले मैदानमें जो लड़के हार-जीतके खेल खेला करते हैं उन्हें बुला कर उनसे ही यह बात जानी जा सकती है।"

मूर्त्तिके सामने कुछ लड़के उस समय भी खेल रहे थे। राजाकी आज्ञासे कुछ राजपुरुष तुरंत ही बुलाकर उन्हें दरबारमें ले आये।

"नगर-सुन्दरी शिरोमाकी जिस मूर्त्तिके सामने तुम लोग खेला करते हो वह तुम्हें कैसी लगती है ?" राजाने उनमेंसे एक वयस्क, आठ-दस वर्षके बालकसे पूछा।

"अच्छी है महाराज, बुरी नहीं है। वह शिरोमा-जैसी ही लगती है लेकिन उसकी तरह चलती-फिरती नहीं है। इतना अवश्य है कि जब हम जीत जाते है तो वह मुसकराती है और जब हार जाते है तो रोती है।" उस बालकने कहा और दूसरोंने भी इसका समर्थन किया। सभीने देखा, उस बालकके इन शब्दोंके साथ ही मूर्त्तिकारका चेहरा खिल उठा था।

उसी समय राजा सब दरबारियों और उन बालकोंके साथ मूर्त्तिके स्थानपर पहुँचा और उस बालककी बातमें एक सच्चे रहस्यका और मूर्ति मे एक अनुपम विशेषताका पता लग गया।

अपने खेलके अनुसार जीतनेवाले बालक मूर्त्तिसे उत्तर-पूर्वकी ओर घासपर बने हुए आसनोंपर बैठते थे और हारने वालोंको मूर्त्तिसे उतनी ही दूर दक्षिण-पूर्वकी भूमि पर खडा होना पड़ता था। मूर्त्तिका मुख ठीक पूर्व दिशाकी ओर था। सामनेसे देखने पर मूर्त्ति बड़ी सौम्य और स्थिर मुद्रामें दीख पडती थी और सभी देश-विदेशके पारखी दर्शकोंने उसे सामने ही खड़े होकर विभिन्न दूरियोंसे देखा था। उत्तर-पूर्वके एक विशेष कोणसे देखने पर उस मूर्त्तिके होठ मुसकराते हुए और आखे एक विशेष भाव-पूर्ण अधखुली मुद्रामें दीख पड़ती थीं। लेकिन दक्षिण-पूर्वके उसी विशेष कोणसे देखने पर वह मूर्त्ति बडी सकरुण मुद्रामें स्थित दीखत थी और उसकी आखोंके नीचे अश्रु-बिन्दु भी ढुलके दिखाई पड़ते थे।

× × ×

उस कला-कृतिकी जैसी तीन विभिन्न मुद्राओंमें दीखनेवाली मूर्त्तियाँ सम्भव है आज भी कोई विद्यमान हो परन्तु अप्रभावित पूर्व-दृष्टि और एकाधिक दृष्टिकोणोंसे देखनेवाले पारखियोंका किसी सूक्ष्म अर्थमें आज एकदम अभाव हो गया है।

आसरेके बलपर

एक युवक भिक्षु विशेष सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट था। एक बार अपनी भिक्षा की फेरीमें उसने एक बड़े भवनके बाहरी उद्यानमें दो सुन्दर तरुणियोंको देखा। वे दोनों बहनें-बहनें थीं। वह उनकी ओर विशेष रूपसे आकृष्ट हो गया।

उनके पैरोंके आभूषणोंसे उसने जान लिया कि वे दोनों विवाहिता हैं।

"तुम्हारा पातिव्रत धर्म अटल रहे, सीता-सावित्री!" उसने उनके समीप पहुँचकर आवाज़ दी, "भिक्षुकका भोजनका सवाल है!"

दोनों बहनें भिक्षुकके इस आशीर्वादसे प्रभावित हुईं। पातिव्रत धर्म सचमुच उन दोनोंका विशेष प्रिय धर्म था और वे अपने-अपने पतिको ही अपना आराध्य मानती थीं।

उसे भिक्षा देनेके बाद एक महिला—बड़ी बहिनने भिक्षुसे कहा :

"साधूजी, आपने हमारा सबसे अधिक प्रिय आशीर्वाद हमें दिया है। आप हमें क्या कोई ऐसा पक्का जतन बता सकते हैं जिससे हमारी पति-भक्ति सदैव बढ़ती रहे और मृत्युके पश्चात् हम अपने पति-परमेश्वरमें ही लीन हो सकें?"

"अवश्य! मैं आपको एक ऐसा वृश्चिक यन्त्र दे सकता हूँ जिसे अपने पास रखनेसे आपका मन साक्षात् कामदेवके सामने भी नहीं विचलित हो सकता और इन्द्रदेव भी आपके पातिव्रतको नहीं डिगा सकते।" साधुने कहा और अपने झोलेमें से एक डिबिया निकालकर उसका ढक्कन खोला।

दोनों बहिनोंने देखा, उसमें किसी तीव्र सुगन्धित पदार्थकी बनी हुई बिच्छूकी एक श्वेत मूर्ति थी। साधुने ढक्कन बन्द करके वह डिबिया उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा :

"इस यन्त्रको आप सुरक्षित रक्खें। इसके रहते आपका पातिव्रतधर्म उत्तरोत्तर सिद्धिको प्राप्त होता जायगा। प्रति सोमवारको आप मध्याह्न-कालमें इस यन्त्रके दर्शन कर लिया करें और प्रति दिन पति-स्तोत्रका पाठ कर लिया करें। लेकिन मेरे पास इस समय केवल एक ही यन्त्र है। आपमें से एक, जो चाहें, इसे अभी ले सकती हैं और अगली फेरीमें मैं दूसरी देवीके लिए दूसरा यन्त्र लेता आऊँगा।"

बड़ी बहिनने, जो अपनी पातिव्रत साधनाके लिए विशेष उत्सुक और सतर्क थी, उस यन्त्रको ले लिया। छोटी बहिनने भी उसे ही यन्त्र रखनेकी अनुमति दे दी। चलते समय साधुने उस डिबियाके ढक्कनपर अपने त्रिशूलकी नोकसे एक छोटा-सा छेद कर दिया।

अगले ही दिन सोमवार था। बड़ी बहिनने विधिपूर्वक डिबिया खोल कर यंत्रके दर्शन किये।

दिन बीत चले। उस साध्वीको लगा कि उसके पातिव्रत और सतीत्व का तेज उसके शरीरसे फूटा पड़ रहा है। उसे प्रतीत होने लगा कि सती अनुसूया और अरुन्धतीका पद उसे सहज और शीघ्र ही प्राप्त होने वाला है।

एक सप्ताह और बीता· और अगले सोमवारको जब उसने यन्त्र-दर्शनके लिए वह डिबिया खोली तो देखा, वृश्चिकदेव उसमेंसे अन्तर्धान हो चुके थे!

सुन्दरीके विस्मय और विषादका पारावार न रहा। वह न जाने कितनी देर तक विचारोंके ऊहापोहमें निमग्न रही।

द्वारपर एक थपकीके स्वरसे उसकी विचारधारा टूटी। खोलकर देखा, वही युवक साधु द्वारपर खड़ा था। उसके होठोंमें आज एक विशेष मधुर मुसकान और आँखोंमें एक अनिवार्य मादक निमन्त्रण था।

"मेरी पातिव्रत-साधना लुप्त हो गई है। देवताओंको स्वीकार नहीं है कि मैं उसकी सिद्धि प्राप्त करूँ। मेरा पति कुरूप और निस्तेज है। मैं

उसके लिए तुम जैसे सुन्दर युवकके मधुर निमन्त्रणको अब अधिक टाल नहीं सकती—" कहते-कहते उस पति-भक्ताने उस साधुके गलेमें अपनी भुजाएँ डाल दीं और दोनों प्रेमालिंगनमें बँध गये।

छोटी बहिन, जो उस समय उनके असावधान क्षणोंमें ही वहाँ आ पहुँची थी, यह दृश्य देखकर कह उठी :

"बधाई देती हूँ साधुजी, आपको इस सिद्धिपर! लेकिन मेरा पति कुरूप या निस्तेज नहीं है और मै किसी सिद्धि-शक्ति या कीर्तिकी कामना अथवा किसी भयके बिना, केवल सहज निर्द्वन्द्व स्वभावसे ही उससे प्रेम करती हूँ। जिसदिन मेरा मन ज्ञात या अज्ञात रूपमे उस सहज प्रेमसे डिग जायगा उसी दिन देवता लोग मेरे पास भी पातिव्रतकी रक्षाके लिए कोई यन्त्र भेजकर मेरे मनमें उसका सहारा लेनेकी तीव्र लालसा उत्पन्न कर सकेंगे।"

बहुत मीठी, बहुत स्वादिष्ट

किसी समय एक गाँवमें अन्धे ही अन्धे रहते थे। बात यह थी कि उस देशमें कुछ वर्ष पहले एक ऐसा रोग फूट पड़ा था जिससे नये पैदा हुएसे लेकर छह-सात बरस तकके बहुत-से बच्चे अन्धे हो गये थे। वैद्योंने खोजकर पता लगा लिया था कि यह रोग कुछ ऐसा संक्रामक है कि यदि वे बच्चे दूसरे बच्चोंके बीच बस्तियोंमें ही रक्खे गये तो उन सबकी दर्शनेन्द्रिय पर इसका घातक प्रभाव पड़ेगा। इसीलिए राजाने उन बच्चोंको एक अलग गाँवमें बसा दिया था।

समय पाकर वे बच्चे युवा हुए और अन्धे नर-नारियोंका वह गाँव एक निराले ही ढङ्गकी बस्ती बन गया। उनके जीवन-निर्वाहका आवश्यक खर्च राजकोषसे आता था। आसपासके गाँवोंके चरवाहे अक्सर उनके गाँवमें आकर उन्हें अपनी लाठियोंके सिरे पकड़ाकर आसपासके गाँवोंकी सैर करा देते थे और समीपके जलाशयोंमें स्नान भी करा लाते थे। इसका बदला वे अन्धे उन्हें पैसों या खाद्य-पदार्थों द्वारा उनका सत्कार करके चुकाते थे।

इधर इतने वर्षोंकी लगातार खोजों और प्रयोगोंके पश्चात् राजदरबार के वैद्योंने एक ऐसी औषधिका निर्माण कर लिया जिससे उन बचपनके अन्धोंका सफल उपचार हो सकता था।

राजाने एक राजवैद्यको यथेष्ट मात्रामें वह औषधि लेकर उस गाँव वालोंका इलाज करनेके लिए भेजा। सूर्यास्तके समय गाँवमें पहुँचकर उस वैद्यने सब अन्धोंको एकत्र किया और सारी बात बताते हुए उनसे कहा कि अगली सुबह वह बारी-बारी उनकी आँखोंमें आयुर्वेदोक्त विधिसे उन रत्न-ज्योति नामकी औषधिको—जिसकी एक-एक टिकिया वह प्रत्येक अन्धेके लिए लाया था—लगायेगा और उन सबकी दृष्टि उन्हें वापस मिल जायगी।

अन्धोंने इस शुभ समाचारका, और इसे लानेवाले दूत वैद्यका बड़े हर्ष और उत्साहके साथ स्वागत किया। उन्होंने कहा कि अन्धेपनमें निस्सन्देह कुछ असुविधाएँ है और यदि उनको आँखोंसे उन्हें दीखने लग जायगा तो खेतोंकी हवा खाने और तालाबोंमे स्नान करनेके लिए उन्हें दूसरे गाँवके लड़कोपर निर्भर नही रहना पड़ेगा और इन बातोंका सुख वे स्वेच्छापूर्वक जब और जितना चाहेंगे ले सकेंगे।

गाँववालोंने बड़े सुख-सम्मानपूर्वक उस वैद्यको मन्दिरकी अतिथि-शालामे ठहराया और जब वह सो गया तो उन्होंने आपसमें सलाह की :

"यह रत्न-ज्योति नामकी औषधि कितनी सुन्दर और विचित्र आकार-प्रकारकी वस्तु होगी। हमलोग अन्धे होनेके कारण उसे देख तो नहीं सकते और न आयुर्वेदोक्त विधिसे उसे आँखोंमे लगाना ही जानते है, किन्तु छू और चख तो सकते हो हैं। तबतक हमलोग उस वस्तुका स्वाद लेकर उसका थोड़ा-बहुत परिचय क्यों न प्राप्त करें!"

यह निश्चय होते ही उनमेंसे एक व्यक्ति टटोलता-टटोलता वैद्यराजजी के उस पात्र तक जा पहुँचा जिसमें उन्होंने रत्न-ज्योतिकी टिकियाँ भरी हुई थी। उसने एक टिकिया उठाकर मुँहमें रखी। "बहुत मीठी, बहुत स्वादिष्ट!" अनायास ही उसके मुखसे निकल पड़ा।

हाथोहाथ वे टिकियाँ उन अन्धोंके दलमे बँट गई। सौभाग्य या दुर्भाग्यवश वे सचमुच खानेमे भी बहुत मीठी और स्वादिष्ट थीं और मुँह मे रखते ही घुल जानेवाली थीं।

अगली सुबह जब राजवैद्यजी सोकर उठे तब उन्होंने अपने औषधि-पात्रको रीता पाया। गाँववालोंने धन्यवादपूर्वक उन्हे राजदरबारकी ओर बिदा करते हुए कहा :

"आपकी औषधि आँखोंके लिए जितनी गुणकारी हो, होगी ही; लेकिन वह खानेमें भी अत्यन्त मीठी और स्वादिष्ट थी! ऐसी बढ़िया वस्तु हमारे पास तक लानेके लिए हम आपके बहुत ही कृतज्ञ हैं।"

वैद्यजी उदास मुँह लिये राजदरबारको लौट गये।

× × ×

ठहरिये! उन अन्धोंको भाग्यहीन और महामूर्ख कहनेके पहले आपको यह फैसला करना होगा कि आजका देखनेवाला समझदार मनुष्य किस तरह उन अन्धोंसे कम है। हम-आप जैसे आजके पढ़े-लिखे व्यक्ति भी क्या आँख द्वारा सेवन करनेकी वस्तुको जिह्वातक ही सीमित करके सन्तुष्ट नहीं हो रहते? जिस सुन्दर और उपयोगी जान पड़नेवाली विचारणीय बातकी वास्तविकताको उन्हें यथार्थ रूपमें देखना और बरतना चाहिए, क्या उसके व्याकरण, पद-लालित्य, काव्यालङ्कार अथवा मीठे-कोमल कण्ट-स्वरके स्वादों और उन स्वादोंकी चर्चामें ही अटककर वे उस सीधे अर्थको हृदयकी गहराईमें सोचनेसे इनकार नहीं कर देते?

निराश्रय की जीत

समुद्रके बीच बसा हुआ एक छोटा-सा द्वीप था। कभी-कभी पाससे निकलने वाले जहाज़ कुछ समयके लिए उसके तट पर लंगर डाल देते थे। इन जहाज़ोंके द्वारा उस द्वीपके भी कुछ निवासी दूसरे द्वीपों और महाद्वीपोंमें जाकर बस गये थे और उनमें से कुछ कभी-कभी इस द्वीपमें भी आकर कुछ समय रह जाते थे।

एक बार उस द्वीपमे ऐसा अकाल पड़ा कि लोगोंके भूखों मरनेकी नौबत आ गई। बाहरका जहाज़ भी बहुत दिनोंसे कोई नहीं आया था। बाहरसे खाद्य-सामग्री प्राप्त करने या द्वीप छोड़कर अन्यत्र जा बसनेका उनके पास कोई उपाय नही था। उनके पास जो छोटी-छोटी नौकाएँ थीं वे समुद्र पार करनेके लिए बिलकुल बेकार थीं।

द्वीपके मुखिया लोग इसी चिन्तामें एकत्र होकर सोच-विचार कर रहे थे कि अचानक एक युवकने उनकी सभामें आकर कहा :

"समुद्रके पार महाद्वीपमें पहुँचने का प्रबन्ध मैंने कर लिया है। आप सब द्वीपके सभी निवासियों सहित मेरे साथ चलनेको तैयार हो जायँ।"

"इस प्राण-रक्षक समाचारके लिए हम हृदयसे तुम्हारे कृतज्ञ है। क्या तुम उसी महाद्वीपसे आये हो ? तुम्हारे साथ कोई बड़ा जहाज़ आया है ? या तुम एकसे अधिक जहाज़ ला सके हो ? वह महाद्वीप किस दिशामें, कितनी दूरहै ?" आदि प्रश्नों की झड़ी उस युवकपर बरस पड़ी।

" मेरे पास कोई भी वैसा जहाज़ नही है। मै इसी द्वीप का रहने वाला हूँ। मैंने समुद्र-पारके महाद्वीपकी कभी भी यात्रा नहीं की। मैं केवल इतना जानता हूँ कि वह उत्तरकी ओर है। फिर भी, वह महाद्वीप कितनी भी दूर हो, मैंने उसतक पहुँचनेका प्रबन्ध कर लिया है और आप सबको अपने साथ चलनेका निमन्त्रण देता हूँ।" युवकने उत्तर दिया।

"जिसके पास कोई बड़ा जल-पोत नहीं, जिसने महाद्वीपकी यात्रा नहीं की और उसकी दूरीको भी नहीं जानता उसका साथ देकर हम अपनी आती हुई मृत्युको बुलानेमें कुछ शीघ्रता ही कर सकते हैं।" उन्होंने बदले हुए स्वरमें युवकको उत्तर दिया और अपनी चिन्तामें लग गये।

फिर भी अगले दिन जब उस युवकने द्वीपके उत्तरी समुद्रमें अपनी नाव खोली तब लोगोंने देखा, कुछ और भी युवक अपनी-अपनी नावें लेकर उसके साथ हो गये थे। वे सभी नावें पारस्परिक समीपता और वार्तालाप की सुविधाके विचारसे एक दूसरेके साथ रस्सियोंसे बँधी हुई थीं।

तट छोड़ते ही वेगका एक तूफ़ान समुद्रमें उठ खडा हुआ और द्वीप-तटपर खड़े देखने वालोंने अपने दूर्वीक्षण यन्त्रोंसे देखा, वे नावें एक दूसरेसे टकराकर और क्षत-विक्षत होकर समुद्रमें डूबने लगीं और कुछ ही घण्टोंमें जलके गर्भमें विलीन हो गईं।

इस भयंकर दुर्भाग्य-काण्डको देखकर द्वीपके लोग भरे हृदयसे अपने घरोंको लौटे।

उसी साँझ उनके आश्चर्यकी कोई सीमा न रही जब उन्होंने कुछ युवकोंको अपने सामने उपस्थित देखा। ये उन्हींमेंसे कुछ थे जो प्रातःकाल अपनी नावें लेकर समुद्रमें उतर गये थे और जिन्हें नौकाओं समेत डूबते हुए वे अपनी आँखोंसे देख चुके थे।

"समुद्रको सकुशल और निष्प्रयास पार करनेका रहस्य हमने जान लिया है। हमारी नावें जब छिन्न-भिन्न होकर डूबने लगीं तब हमारे साथीने हमें समुद्रकी अधिक-से-अधिक गहराईमें उतर जानेका संकेत किया। हमने भरसक प्रयत्न किया लेकिन अधिक नीचे नहीं उतर सके। नीचे जानेके प्रत्येक प्रयत्नने हमें अगले ही क्षण पानीके ऊपर ला फेंका। हमारा अनुभव है कि मनुष्य पानीमें डूबकर तभी मरता है जब वह उसकी गहराईमें जानेसे बचना चाहता है, अन्यथा समुद्रको मनुष्यका शरीर अपने भीतर

रखना सर्वथा अरुचिकर है। हमारे अधिकांश साथी निश्चिन्त जल-विहार पूर्वक उत्तरकी ओर बढ़े चले जा रहे हैं और हम कुछ लोग बीचसे ही इसलिए लौट आये है कि और भी जो लोग यहाँसे चलनेको तैयार हो सके वे हमारे साथ चलें।" उन युवकोंमेंसे एकने कहा।

× × ×

इस कथापर मेरे कथा-गुरुकी टिप्पणी है कि संसारकी बड़ी से बड़ी विपत्तियाँ भी मनुष्यको अपने भीतर रखना अरुचिकर समझती है, और उनमे फँसकर मनुष्य तभी अपनी कमर तोड़ लेता है जब उनसे बचनेके लिए बेतहाशा भाग-दौड़ करता है। उनका यह भी संकेत है कि छोटी-बड़ी लौकिक विपत्तियोंसे लेकर विश्वकी महामाया तकसे बचनेके लिए वास्तवमें मनुष्यको किसी समर्थ, जानकार, मुक्त या सिद्ध 'गुरु'के सहारे और पथ-प्रदर्शनकी अनिवार्य आवश्यकता नहीं है और वह अकेला और निराश्रय होकर ही इनपर अन्तिम विजय पा सकता है।

अरोग फल

किसी यात्री दलके कुछ लोग अपने साथियोंसे बिछुड़ कर एक घने वन में फँस गये। जब उस वनके बाहर निकलनेका उन्हें मार्ग न मिला तो वे उसीमें बस गये और जंगलके फल-पत्ते खाकर अपने दिन काटने लगे। एक दिन उनमेंसे एक आदमीको ऐसा वृक्ष दिखाई पड़ा, जिसकी महक दूर तक फैल रही थी और वह फलोंसे लदा पड़ा था। फल देखनेमें बहुत सुन्दर थे।

उस आदमीने उस वृक्षका एक फल तोड़कर चखा और उसे अत्यन्त स्वादिष्ट पाया—उसने पेट भरकर वे फल खाये और अपने सभी वनवासी साथियोंको भी उसकी सूचना दे दी।

उस फलकी बड़ी विशेषता यह थी कि एक बार फल तोड़ने पर उनकी जगह नये फल रातों-रात निकल आते थे, और एक पखवारेमें ही वे खाने योग्य हो जाते थे।

वह फल अब उन वन-वासियोंका प्रधान और सर्व-श्रेष्ठ आहार बन गया। लेकिन उस फलका उन लोगों पर यह प्रभाव पड़ा कि उनकी दर्शन-शक्ति धीरे-धीरे क्षीण होती गई और कुछ दिनोंमें वे प्रायः बिलकुल ही अंधे हो गये। उनमेंसे एक व्यक्ति अवश्य ऐसा बचा, जिसकी आँखों पर वैसा कोई भी कुप्रभाव नहीं होने पाया।

कुछ दिनो बाद संयोगवश कुछ राज-पुरुषोंकी सवारी उधरसे निकली। इन वन-वासियोंका पता लगने पर उन्होंने इनकी पूरी कथा सुनी और सबको राज-नगरमें ले गये।

वह कौन-सा इतना सुन्दर और स्वादिष्ट फल है, जिसके खानेसे मनुष्य अन्धा हो जाता है और जिसके फल एक पखवारेमें तैयार हो जाते हैं। राजदरबारके वैद्योंने अपने किसी भी ग्रन्थमें उसकी चर्चा नहीं पढ़ी थी। राजाकी आज्ञासे वैद्योंने उस वनमें जाकर उस वृक्ष और उसके

फलोंका भली-भाँति निरीक्षण और परीक्षण किया और अन्तमें उसका परिणाम घोषित किया :

"इस फलमें कोई भी ऐसा तत्त्व नहीं है कि जिसे खानेसे आँखों या शरीरके किसी भी अंगपर किसी भी प्रकारका कुप्रभाव पड़े; प्रत्युत यह विशेष रूपसे स्निग्धकर और पौष्टिक है, और शीघ्र ही पचने वाला होनेके कारण किसी भी मात्रामें खाया जा सकता है। हाँ, इस फलके छिलकेमें यह कुप्रभाव अवश्य है कि यदि इसका सिरके किसी भी भाग पर अधिक दबाव पड़े तो वह अनिवार्य रूपसे आँखोंकी ज्योतिको हरने वाला है। जान पड़ता है, इन लोगोंने फल तो स्वाभाविक भूखके अनुसार ही खाये है, लेकिन अपने सिरो पर इनके बोझ बहुत अधिक ढोये है। जिस एक व्यक्ति की आँखें पूर्ण स्वस्थ बनी हुई है वह इस तथ्यका प्रत्यक्ष प्रमाण है।"

मेरे कथा-गुरुका कहना है कि उस वृक्षका नाम काम-वृक्ष और उसके फलो का नाम काम-फल है; और संसारका मनुष्य किसी भी काम-फलके भोग या अतिभोगसे नही, बल्कि उसके अति-संग्रह और अतिवहनके कारण ही अंधा और अस्वस्थ होता है।

बेल और अंगूर

गंगा-यमुनाके बीच अन्तर्वेद प्रदेशमें किसी समय एक ऐसा भू-भाग था जिसमें बेल-वृक्षोंके बहुत-से बाग़ थे। उस देशमें खेती बहुत कम होती थी और बेल-फल वहाँके निवासियोंका एक मुख्य आहार था। पुराने वृक्षोंके सूख जाने पर वे उनके बदले नये बेलके ही वृक्ष लगा देते थे। एक बार उस देशके राजाने एक नया कृषि-मंत्री नियुक्त किया। उसने अनुसन्धान करके पता लगाया कि उस देशमें अंगूरकी खेती बहुत अच्छी हो सकती थी।

लोगोंको बताया गया कि खाद्य-पदार्थके रूपमें बेल एक बिल्कुल क्षुद्र और अंगूर बड़े उपयोगकी वस्तु है। बेल-वृक्षोंके आरोपणको बहुत कुछ निरुत्साहित करके अंगूरके बगीचे लगानेके लिए लोगोंको हर तरहका उत्साह और सहयोग राज्यकी ओरसे दिया जाने लगा।

लोगोंने नई भूमि तैयार करके उस पर अंगूरोंके बगीचे लगा दिये। कुछ राज्य-कर्मचारियोंने बेलके बागोंको कटवाकर उनकी जगह अंगूरके बगीचे लगवानेका भी काम प्रारम्भ कर दिया।

कुछ समय बाद कृषि-मंत्रीने इस नई कृषि-प्रगतिका निरीक्षण करनेके लिए देशका दौरा किया। सारे देशको अंगूरोंके बगीचोंसे लहलहाता देख-कर वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने जनताकी, और अपने विभागके कर्मचारियोंकी भी बड़ी प्रशंसा की।

लेकिन देशकी राजधानीमें पहुँचकर कृषि-मंत्रीने अपने निवास-भवनके बड़े अंगूरी बगीचेसे अंगूरकी सब बेलोंको उखड़वा डाला और उसमें बेलके सैकड़ों पौदे लगवा दिये।

कृषि-मंत्रीके इस कार्यसे उसके विभागके सभी राज-कर्मचारियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने उसकी इस विचित्र कार्यवाही पर जिज्ञासा करते हुए उससे निवेदन किया :

"मान्य श्रीमन्! आपने ही अंगूरोंकी खेतीका महत्त्व बताकर राज्य और जनताको उनकी खेतीके लिए प्रोत्साहित किया और उसका परिणाम भी हर प्रकारसे अच्छा ही प्रकट हुआ। लेकिन अब आपने ही इतने अच्छे अंगूरोंके अपने बगीचेको उजड़वाकर उसकी जगह बेल-वृक्ष लगवा दिये हैं। इसका रहस्य क्या है?"

मंत्रीने कहा :

"निस्सन्देह अंगूर बेलकी अपेक्षा बहुत ऊँची कोटिका फल और खाद्य-पदार्थ है, लेकिन बेलोंका भी यथावसर अपना उपयोग है। मैंने यह कभी नहीं कहा था कि अंगूर लगानेके लिए बेलके वृक्षोंको नष्ट किया जाय; किन्तु आप लोगोंने सभी बेल-वृक्षोंको कटवाकर उनकी जगह अंगूरकी बेलें लगवा दी है। यह देशके लिए एक बड़ा अनर्थ हुआ है। यहाँकी जलवायु के अनुसार लोगोंको अपने स्वास्थ्यके लिए बेल-फलकी बड़ी आवश्यकता है और उसीको देखते हुए विवश होकर, मुझे अपने अंगूरी बाग़को कटवा कर उसकी जगह बेलके वृक्ष लगवाने पड़े हैं।"

× × ×

मेरे कथा-गुरुका कहना है कि किसी भी नई और उपयोगी वस्तुको कितने भी वेग और बलके साथ प्रस्तुत करनेका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि पिछली वस्तुको एकदम अनावश्यक मानकर उसे नष्टकर दिया जाय। उनका यह भी कहना है कि उनके निजी शिक्षार्थियोंके लिए इस कथामें एक अति आवश्यक संकेत है और उनके सम्पर्कमें आने वाले अन्य लोगोंको भी इस अन्तर्निहित सर्व-परिवेष्ठी अभिप्रायकी जानकारी रहे तो अच्छी बात है।

रूपका लेखा

भूलोकसे मरकर प्रतिदिन जो सहस्रो मानव-आत्माएँ भुवर्लोकमे पहुँचती हैं उनमें एक दिन एक ही नगरकी तीन स्त्रियाँ एक साथ पहुँची। वे तीनो मृत्युके समय पूर्ण युवती और अतीव सुन्दरी थीं। वे इतनी सुन्दर थी कि राहमे जाते हुए यक्ष, गन्धर्व और किन्नर उन्हे एक बार भर-आँख देखनेके लिए अवश्य रुक जाते थे। इस सबके प्रति तीनो स्त्री-आत्माओ का व्यवहार बिलकुल अलग-अलग था। पहली स्त्री उन राह चलते देखने वालोको देखकर घृणा और तिरस्कारके साथ अपना मुँह इधर-उधर फेर लेती थी; दूसरी सहज स्निग्ध भावसे उनका मुग्ध स्वागत स्वीकार करती और अपनी मधुर रूप-चेष्टाओंसे उनका सत्कार करती हुई आगे बढ़ रही थी; और तीसरी अपनी भुजाएँ फैलाकर मानो उन्हे अपने बाहु-पाशमे बाँधनेके लिए उनके पीछे कुछ दूरतक भटक जाती थी और जब वे अदृश्य हो जाते थे तभी अपने मार्गपर लौटकर मन्द और अनिश्चित गतिसे आगे चलती थी।

भुवर्लोकके सातो खण्ड पार करके जब वे तीनो आत्माएँ स्वर्लोक—स्वर्ग लोक—के द्वारपर पहुँची तब उन्हें स्थानीय धर्मराजके न्यायालयमे ले जाया गया। चित्रगुप्तके दूत, जो जीवन भर इन आत्माओंके साथ संसारमे रहे थे, इस समय भी इनके साथ थे।

धर्मराजकी आज्ञा पाकर लिपिकाजनो—चित्रगुप्तके दूतो—ने निवेदन किया :

"महाराज! इनमेसे पहली स्त्री अत्यन्त पतिव्रता और पति-परायणा रही है। इसका तन, मन और सारी भावनाएँ एव कामनाएँ केवल इसके पतिको ही समर्पित और उसीमे केन्द्रित रही है। इसने किसी भी अन्य पुरुषकी ओर मुग्धता, प्रशसा या सहज सम्मान की भी दृष्टि नहीं डाली।

दूसरे पुरुषोंकी दृष्टिसे इसने सदैव अपने रूप और यौवनको छिपाकर ही रक्खा है। पतिकी आराधनामें इसने कठोर संयम और व्रत किये है और संसारकी सभी प्राचीन सती-साध्वियोंके पद-चिह्नोंपर चलनेका इसने प्रयत्न किया है।"

"लिपिकाजनोंका यह कथन सत्य है?" धर्मराजने अब उस स्त्रीको लक्ष्यकर उसका समर्थन चाहा।

"अक्षरशः सत्य है, महाराज!" स्त्रीने उत्तर दिया, "मैंने बड़े-बड़े श्रीमान् और रूपवान् पुरुषोंकी कुदृष्टिका उत्तर उनके मुखोंपर थूककर ही दिया है और उनकी कुदृष्टि पड़नेपर गंगाजल छिड़ककर अपने शरीरको पवित्र किया है! वासनाकी दृष्टिसे देखनेवाले पुरुषोंसे मुझे सदैव घृणा रही है और किसी भी दुराचारिणी स्त्रीको मैंने अपने घरमें पाँव नहीं रखने दिया। अपने पतिसे भिन्न किसी पुरुषको मैंने पुरुष ही नहीं माना। पुरुष तो क्या, यक्षों, गन्धर्वों और किन्नरोंको भी मैंने किसी गिनतीमें नहीं गिना। मुझे आश्चर्य और दुःख है कि ऊँचे लोकोंके निवासियोंकी दृष्टि भी पवित्र नहीं है और वे परायी स्त्रियोंको इतने निर्लज्ज और वासनापूर्ण भावसे देखते है।"

धर्मराजने कहा: "ठीक है। लेकिन इतनी कठोर पति-भक्ति और सतीत्वकी साधना तुमने किस अभिप्रायसे की है, बता सकती हो?"

"किस अभिप्रायसे?" स्त्रीने कुछ विस्मित स्वरमें कहा, इसमें अभिप्रायका क्या प्रश्न है? प्रत्येक भली स्त्रीको संसारमें ऐसा ही करना चाहिए और जिन पुरानी सती-साध्वियोंकी संसारमें पूजा होती है उन्होंने भी ऐसा ही किया है; इसीलिए मैंने भी यह किया है। सती पार्वतीकी तरह मैं भी जन्म-जन्मान्तरमें एक ही पतिको वरण करना चाहती हूँ।"

धर्मराजकी आज्ञा पाकर अब लिपिकाजनोंने दूसरी स्त्रीका लेखा सुनाया:

"इस दूसरी स्त्रीने अपने पतिसे गहरा प्रेम किया है। और सुख-दुःखमें सदैव उसकी हृदय-संगिनी रही है। शारीरिक सहवास और पुत्रोत्पत्तिके लिए अपने आपको केवल पति तक ही सीमित रखकर इसने अपने रूप, वाणी और व्यवहारसे दूसरे पुरुषोंका भी स्वतन्त्र और सहृदय भावसे सत्कार किया है और उनके हृदयोंमें अनेक कोमल और कसकीली भावनाएँ भी जगाई हैं। इसने अपने रूप और चेष्टाओंसे अनेक युवकोंको प्रेरणाएँ दी हैं और अनेक नवयुवा बालाओंको रूप और आकर्षणकी कलामें दीक्षित किया है। इसने किसीसे घृणा, किसीका तिरस्कार नहीं किया और यथा-सम्भव किसीका हृदय नहीं दुखाया। इसने किसीको नीच नहीं माना और मानव-हृदयकी दुर्बलताओंके प्रति पूरी सहानुभूति दिखाई है। दुर्बल चरित्र वाली युवतियोंकी ओर यह विशेष रूपसे आकृष्ट हुई है और समाजकी लाञ्छनाओंके विरुद्ध उनका इसने बहुत पक्ष लिया है।"

"और यह तीसरी स्त्री" लिपिकाजनोंने धर्मराजका संकेत पाकर कहा: "इसने अपने यौवनकी पहली उमङ्गके साथ ही अपने रूपको ही अपना आराध्य बना लिया था। दूसरे पुरुषोंके रूपों और प्रलोभनोंपर बरबस रीझना और जितने भी दूसरे इसकी ओर आकृष्ट हो सकें उन सबको अपने रूप-जालमें बाँधकर उनके साथ निर्विवेक भावसे सर्वांगीण सम्पर्क स्थापित करना इसका जीवन-क्रम रहा है। अपने पतिसे पहले छल-दुराव द्वारा और फिर प्रकट विच्छेद द्वारा इसने अपने व्यवहारको गतिशील रक्खा है।"

धर्मराजने निर्णय दिया:

"इन तीनों स्त्रियोंको नारी सौन्दर्यकी विशेष पूँजी देकर पृथ्वीपर भेजा गया था। इनमेंसे पहलीने उसका लगभग कुछ भी उपयोग नहीं किया और अन्ध-कामना वश उसे एक पुरुष तक ही सीमित रखकर शेष मानव-समाजका उससे हित और सत्कारकी जगह अहित और अनादर किया है। इसने देवताओं द्वारा दिये हुए अपने अति सुन्दर रूपको सारे संसारसे

छिपाकर रखनेका ही प्रयत्न किया है। इसलिए इसे भूलोकमें ही ले जाकर चमगादड़ीकी योनिमें जन्म दिया जाय। उस योनिमें यह अपने शरीरको दूसरोंकी दृष्टिसे बचाने और स्वयं भी उनके रूप-दर्शनसे बचे रहनेकी अपनी इच्छाकी बहुत कुछ पूर्ति कर सकेगी और अपनी अन्य कामनाओंका उपभोग भी उस अन्धकारपूर्ण जीवनमें इसे मिल जायगा।

"दूसरी स्त्रीने अपने रूप और नारी-जीवनका भरपूर उपयोग किया है और उन्हें ठीक संतुलनमें भी रक्खा है। इसे एक सहस्र वर्षके लिए अपने प्रियजनोंके साथ स्वर्गका विहार देकर फिर पृथ्वीपर अपने गुणोंके अगले विकासके लिए, राजाकी एकमात्र सन्तान और राज्याधिकारिणी राजकन्याके रूपमें जन्म दिया जाय। और तीसरी स्त्रीको इसी समय पृथ्वी पर ले जाकर मकड़ीकी योनिमें जन्म दिया जाय, जहाँ वह अपने ही रूप जालमें बँधकर उसमें दूसरोंकी कीट-पतङ्ग-वत् निम्न भावनाओंको फाँसने और उनका ही आहार करनेका अपना अपूर्ण कार्यक्रम पूरा करे और अपनी अतृप्त कामनाओंको तृप्त कर सके। पहली और तीसरी आत्माएँ जब अपना इच्छित भोग-भोग चुके तब उन्हें फिर हमारे पास लाया जाय, जिससे हम उनकी प्रगतिको देखकर उन्हें पुनः भूलोकमें मानव-जन्म देनेकी व्यवस्था कर सकें।"

महा अस्त्र

एक बार दो पड़ोसी गावोंके बीच किसी बातको लेकर झगड़ा हो गया। बढ़ते-बढ़ते यह झगड़ा इतना बढा कि एक गाँववालोंने खुले युद्धकी घोषणा कर दी। दोनों गावोंके बीचके मैदानमें दोनों दल हथियारोंसे लैस होकर आ-डटे और भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया।

जिस अति प्राचीन युगकी यह कथा है उसमें मनुष्योंके शरीर ऐसे होते थे कि उनका बड़ेसे बड़ा घाव एक दिनमें पुर जाता था और युद्ध अथवा दुर्घटनामें उनकी मृत्यु तभी होती थी जब उनका शरीर गले, धड़ या कमरसे बिलकुल कट कर दो टुकड़े हो जाता था। आधुनिक इतिहास भी इस बातका समर्थक है कि ज्यो-ज्यो हम भूतकालकी ओर बढ़ते है, मानव-शरीरकी यह शीघ्र स्वस्थ होनेकी क्षमता बढ़ती हुई दीख पड़ती है।

. दोनो गावोंकी सेनाएँ सुबहसे शाम तक युद्ध करतीं और संध्याको अपने घायलों समेत अपने गावोंको लौट जातीं। दो-तीन दिनमें वे घायल फिर लडने योग्य समर्थ होकर मैदानमें आ-डटते। दिन भरकी लड़ाईमें कठिनाईसे कोई इक्का-दुक्का योद्धा जानसे मारा जाता।

धीरे-धीरे इन दोनों दलोंके पक्षोंमें दूसरे, दूर-दूरके गाँव वालेभी आकर सम्मिलित होने लगे। कुछ ही वर्षोंमें यह युद्ध एक देशीव्यापी युद्ध बन गया।

इस युद्धको चलते-चलते जब सौ वर्ष बीत गये और पहले लडाकुओं की चौथी पीढ़ी भी जब मैदानमें उतरने लगी तब देवताओंको चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा कि इस तरह तो यह सारी मनुष्य जाति कल्पके अन्त तक लड़ती भिडती ही रहेगी और जिस उद्देश्यसे उसे इस पृथ्वीपर जन्म दिया गया है वह कभी पूरा न होगा।

बहुत सोच-विचारके बाद, इस युद्धका शीघ्र ही अन्त करने की दृष्टिसे,

देवताओंने एक गाव वालोंको, जिनका दोष इस युद्धमें अपेक्षाकृत कम था, एक रात कुछ अधिक तीक्ष्ण और घातक अस्त्र दे दिये।

फल-स्वरूप अगले दिनसे वह युद्ध भीषण हो उठा। दूसरे पक्षमें घायलों और मृतकोंकी संख्या बढ़ने लगी। अपनी पराजय होती देख इस दूसरे दलके लोगोंने बलकी जगह छलसे काम लेनेकी राह सोच निकाली। उन्होंने पहले दलके बहुत-से नये अस्त्रोंकी चोरी करवा ली। दोनों दल फिर बराबरी पर आगये।

देवताओंने पहले दलको और भी तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र दिये और मनुष्योंके बीच जन-संहारके साथ-साथ अस्त्रोंकी चोरी और बल-पूर्वक हरणका एक नया युद्ध-विभाग चालू हो गया।

जब देवता लोग अपने बड़ेसे बड़े अस्त्र-शस्त्र दे चुके और उनके पास कोई तीक्ष्णतर हथियार अपने संरक्षित मानव-दलको देनेको न रह गया तब वे कठिनतम चिन्तामें पड़ गये। जितने घातक शस्त्र मनुष्योंके हाथ पहुँच चुके थे उनसे यह निश्चित दीखता था कि मनुष्य जाति कुछ ही वर्षोंमें लड़कर समाप्त हो जायगी।

देवताओंने विवश होकर अन्तमें असुरोंके नायक शनिदेवका आवाहन किया। सारी कथा सुनकर शनिदेवने लकड़ीका बना हुआ एक विशेष प्रकारका बड़ा-सा पीपा उन्हें देते हुए कहा :

"भीतिकर नामका यह अमोघ अस्त्र मैं आपको देता हूँ। इससे बढ़ कर कोई दूसरा अस्त्र इस त्रिलोकमें नहीं है। युद्धमे रत मनुष्योंके किसी एक दलको न देकर आप इसे दोनों गावोंके बीच युद्ध-स्थलके किनारे वाले बड़े वट वृक्षकी ऊँची डालमे घनी पत्तियोंमें छिपा कर बँधवा दीजिए। इससे आपकी मनोकामना शीघ्र ही पूरी हो जायगी।"

देवताओंने शनिदेवके आदेशका पालन किया। उस पीपेको पेड़में बाँधते ही उसके भीतर हवाके आने-जानेसे एक विचित्र प्रकारका अति भयंकर स्वर निकलने लगा। वायुके बहनेसे जितनी ही तेजीसे वृक्षके पत्ते

हिलते थे उतने ही वेगका वह स्वर होता था। रात्रिके कपट-युद्धके लिए जब एक दलके लोग दूसरे दलमें जाने लगे तब उन्होंने बरगदके ऊपरसे वह अपूर्व-श्रुत भयंकर शब्द सुना। उसे विपक्षी दलका कोई नया, वृक्षकी ऊँचाईसे बरसने वाला युद्धास्त्र समझकर वे लोग अपने दलको लौट आये।

अगले दिन जब दोनों दलोंकी सेनाएँ युद्ध भूमिकी ओर बढ़ीं तो उन दोनोंने ही वट-वृक्षसे आते हुए उस महाभयंकर स्वरको सुना। दोनोंके पाँव अपने मोर्चों पर पहुँचनेके पहले ही रुक गये और दोनोंने ही उसे अपना न जाननेके कारण विपक्षी दलका ही कोई भयंकर युद्ध-विधान समझा। जिसका स्वर ही इतना भयङ्कर है उसकी मार तो एक ही चपेटमें उनके सारे दलको नष्ट कर देगी, उन्होंने सोचा।

अन्तमें विवश और भयभीत होकर दोनों दलोंने आपसमें सन्धि कर ली और हजार वर्षों तक युद्ध करनेके पश्चात् वे मिल जुलकर मानव-जीवनकी कलाओंके विकासकी ओर अग्रसर हुए।

× × ×

मेरे कथा-गुरुका कहना है कि शनिदेवका वह 'भीतिकर' अस्त्र सचमुच त्रैलोक्यका सबसे बड़ा अस्त्र है। यदि वह अस्त्र संसारमें न आता तो मनुष्य दूसरे मनुष्यों और पशुओंको, तथा पशु दूसरे पशुओं और मनुष्योंको मारकर खा जाते और पृथ्वीपर जीवनका विकास असम्भव हो जाता। लेकिन इस 'भीतिकर' अस्त्रने जहाँ एक समय और सीमा तक मनुष्यों और पशुओंकी रक्षा की है वहाँ उस समय और सीमाके आगे यह 'भीतिकर' अस्त्र ही मनुष्योंके अगले विकास और मृत्युञ्जय जीवनका सबसे बड़ा बाधक भी है। इस भीतिकर अस्त्रने उन्हें ससारमें बुरी तरह बाँध रक्खा है; और देवता लोग बड़ी सलग्नताके साथ इन दिनों 'अभयङ्कर' नामके एक ऐसे अस्त्रके निर्माणमें लगे हुए हैं जो इस 'भीतिकर' अस्त्रको काटकर मानव-जातिको आगे बढ़नेके लिए मुक्त कर सकेगा।

वह और क्या देता !

किसी नगरकी विद्वत्-शालामे अर्वन नामका एक युवक विद्वान् आकर रहने लगा। इस विद्वत्-शालाके संचालन और अतिथि-सत्कार आदि का प्रबन्ध नगरके धनिक जन मिलकर करते थे। इस विद्वत्-शालाके कारण नगरमें विशेष जीवन और चर्चा-विचारका प्रचार रहता था।

अर्वनके शील, स्वभाव और ज्ञानकी चर्चा द्रुत गतिसे सारे नगरमें फैल गई। उसकी योग्यता, सदाशयता और मिलनसारीका सभी वर्गके लोगोंपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा और वह नगरका एक अत्यन्त लोकप्रिय मित्र हो गया। नगरके छोटेसे छोटे व्यक्तिसे लेकर बड़ेसे बड़े शासनाधिकारी तक उसका सम्मान करने लगे।

विद्वत्-शालाके प्रधान संचालक, नगरके सबसे बड़े सेठके पास जब अर्वनकी ऐसी चर्चा पहुँची तो वह भी उससे मिलने और उसे अपना मित्र बनानेके लिए उत्सुक हो गया। सेठके कुछ अन्तरङ्ग मित्रोंने उसे बताया कि अर्वन विद्वान् और नगरके बड़े-बड़े अधिकारियोंका सम्मानपात्र ही नही, एक अच्छा भक्त और साधक भी है।

सेठका निमंत्रण पाकर अर्वन तुरन्त ही उसकी हवेलीमें पहुँचा और उस प्रथम मिलनमें उन दोनोंकी बहुत देर तक बातें हुईं। चलते समय अर्वनने सेठसे कहा कि उसे कुछ विशेष वस्तुओंके लिए सौ मुद्राओंकी आवश्यकता है। सेठने यह रक़म उसी समय मँगाकर उसे दे दी। अर्वन को सत्कार-सहित विदा करते हुए उसने कहा :

"आप सुविधानुसार कभी-कभी मेरी कुटियापर पधारकर मुझे दर्शन देते रहिए। जब मुझे अवकाश मिलेगा तो मैं भी आपके स्थानपर आकर आपके दर्शन करूँगा। महीनेमें एक बार तो आपसे भेंट होती ही रहनी चाहिए।"

अगले महीने फिर अर्वन ही एक दिन सेठकी हवेलीमें जा पहुँचा। कुछ ज्ञान-चर्चा तथा नागरिक राजनीतिकी बातोंके उपरान्त अर्वनने कहा :

"विद्वत्-शालाकी भोजन और निवासकी व्यवस्था मेरे लिए सुविधा-जनक नहीं है। यदि आप मेरे लिए अलग कुछ मासिक सामग्री और धनका प्रबन्ध कर दें तो मेरा कष्ट दूर हो जाय और मैं अपना काम अधिक उत्तमतासे कर सकूँ।"

यह कहकर उसने एक लिखित चिट्ठा सेठके सामने रख दिया। उसने बताया कि विशेष आवश्यक समझकर इस चिट्ठेमें उसने इस बात का भी अवकाश रक्खा है कि एक-दो सुपरिचित अतिथियोंका भी इसी से स्वयं सत्कार कर सके। सेठने अर्वनकी यह मासिक, लगभग चालीस स्वर्णमुद्रा प्रति मासकी माँग भी स्वीकार कर ली।

तीसरे महीने अर्वन फिर सेठके पास पहुँचा। भक्ति और लोक-मंगलकी कुछ चर्चाके पश्चात् अर्वनने उसी नगरके एक व्यवसायीका नाम लेकर उससे कहा :

"वह बहुत अच्छा और ईमानदार आदमी है। उसे व्यवसायमें घाटा हो गया है। इस समय आप उसे एक सहस्र मुद्राएँ ऋण देकर उसका व्यवसाय और जीवन सदाके लिए सुधार सकते हैं।"

"लेकिन वह तो ईमानदार आदमी नहीं है। बाजारमें उसकी साख समाप्त हो चुकी है।" सेठने प्रतिवाद किया।

"लोग तो बहुत जल्द गिरने वालेको डुबानेके लिए तैयार हो जाते हैं। आप मेरा विश्वास कीजिए। मैं इस कामके लिए व्यक्तिगत रूपसे आपका कृतज्ञ हूँगा।" अर्वनने आग्रह किया।

सेठने एक सहस्र मुद्राएँ उस व्यक्तिको देना स्वीकार कर लिया।

चौथे महीने अर्वन फिर सेठके पास पहुँचा। सिद्धियों—शक्तियों और सिद्ध पुरुषोंके चमत्कारों पर कुछ देर बातचीत होनेके पश्चात् अर्वनने कहा :

"मेरे एक गुरु-भाईके परिवारमें रोग-संकट आ पड़ा है और उसे

तुरंत ही कुछ आर्थिक सहायता भेज देनी बहुत आवश्यक है। उसके लिए आप कुछ धन मुझे दे सकें तो पुण्यके साथ साथ मुझ पर भी बड़ी कृपा करेंगे।"

सेठने दस मुद्राएँ मँगवाकर उसे दे दीं।

पाँचवे महीने जब अर्वन सेठसे मिलने गया तो सेठने भीतरसे ही कहला भेजा कि उसका बच्चा बीमार है और वह इस समय उससे मिलनेमें असमर्थ है।

अर्वन अपनी शालाको लौट गया। सेठकी हवेलीसे चर्चाएँ फैलने लगीं कि अर्वन लोभी, धूर्त और दिखावे मात्रका ही विद्वान् है। अर्वनके साथ सेठका जो व्यवहार चला था उसकी चर्चा सेठने स्वयं अपने मित्रोंसे कर दी थी। जब बात नगरमें फैल गई तब अर्वनके कुछ प्रशंसक बड़े अधिकारियो और नगरके श्रेष्ठ जनोंने विद्वत्-शालामें एकत्र होकर अर्वनसे कहा :

"सेठके इन अक्षेपोपर हम विश्वास नहीं कर सकते। उसने अपनी किसी कुप्रवृत्तिके वशीभूत होकर आपको बदनाम करनेका प्रयत्न किया है। हम उसकी अच्छी तरह खबर लेंगे।"

अर्वनने कहा :

"सेठका कहना अक्षरशः सत्य है। मैंने उससे जिस प्रकार जो-जो कुछ लिया है उसने उसमें कुछ भी बढ़ा कर नहीं कहा। समता, सम्मान, विश्वास और गुण-ग्राहकताके गुणोंका उसके पास अभाव है। उसके पास केवल धन है और दूसरी वस्तुओंके अभावमें मैंने उससे धन ही प्राप्त किया है। धनके बोझसे उसकी ऊँची कामनाएँ और हृदयकी स्वतन्त्रताएँ दब गई हैं और स्पष्ट विचार, स्पष्टवादिता आदिकी क्षमताएँ उसमें नही रह गई है। फिर भी जो कुछ मैंने उससे पाया है उसके लिए उसका उतना ही अनुगृहीत हूँ जितना आपमें से किसीका भी; और अब मुझे उससे प्राप्त भेंटका उचित मूल्य उसे चुकाना है।"

बिल्लीका बोझ

किसी समुद्र-तटके कुछ साहसी नाविक एक बार नये द्वीपोंकी खोज करनेके लिए एक बड़ी समुद्री नाव पर सवार, महासागरमें उतरे। कई दिनोंकी यात्राके बाद उन्हें एक भू-प्रदेश दिखाई दिया और वे बड़े उत्साह के साथ नाव खेकर उस द्वीपके तट पर पहुँच गये। वह छोटा-सा द्वीप बहुत सुन्दर और फलों-फूलोंसे सम्पन्न था, परन्तु उसमें कोई मानव-आबादी नहीं थी। घूमते-फिरते उन्हें एक स्थलपर कुछ बहुत ही सुन्दर बिल्लियाँ दिखाई दीं। आगे बढ़कर खोजने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि उन बिल्लियोंका बहुत बड़ा परिवार उस द्वीपमें निवास करता है। वे बिल्लियाँ इतनी सुन्दर, सु-स्वभाव, विविध रूप-रंग वाली और मृदु-भाषिणी थीं कि वे नाविक इनके लोभका संवरण नहीं कर सके और उनमेंसे प्रत्येकने अपने लिए एक-एक बिल्ली उस द्वीपसे ले ली। द्वीपकी यथेच्छ सैर करके वे अपनी-अपनी बिल्लियोंको कन्धो पर बिठाये नावपर आ बैठे।

नाविकोंने डाँड पानीमें उतार दिये और नावको देशकी ओर खेने लगे, लेकिन नाव आगे न बढ़ी। उन्होंने बहुत बल लगाया: नावके सभी अतिरिक्त डाँड, जो सौ से ऊपर ही थे, पानीको अपनी हथेलियोंसे चीरने लगे लेकिन तब भी वह नाव टससे मस न हुई। अंतमें एक निपुण नाविकने खोजकर पता लगाया कि नावमें पहले ही नाविकों और उनके सामानका पूरा बोझ था और अब इन बिल्लियोंके आ जानेके कारण वह पानीके भीतर धरती पर जा टिकी है।

अब प्रश्न नावके बोझको घटानेका उठ खड़ा हुआ।

कोई भी व्यक्ति अपनी सुन्दर बिल्लीसे बिलग होनेके लिए तैयार नहीं था। यह भी निश्चित था कि नावको पानी पर उठानेके लिए सभी बिल्लियों को बाहर निकाल देना आवश्यक नहीं है।

"एक-दो दिन हम लोग यहाँ और ठहरे। इतने समयमें हमारी खाद्य-सामग्री कुछ और खर्च हो जानेसे उतना बोझ घट जायगा, तब हम आसानीसे चल सकेंगे।" उनमेंसे एक व्यक्तिने प्रस्ताव रखा। उसकी बात मान ली गई और तीन दिन तक वे लोग वहीं और ठहरे रहे। तीन दिनमें उन नाविकोंने और उनकी अतिथि बिल्लियोंने जितना भोजन किया उससे नाव पानी पर न उठी और अधिक दिन वहाँ रुकनेमें यह समस्या सामने दिखाई दी कि उनके देश पहुँचने तकके लिए पर्याप्त भोजन भी नावमें न बच पायेगा।

एक-दूसरेको समझाने-फुसलानेका कि वह अपनी बिल्ली नावसे बाहर फेंक दे—लोगोंने बहुत प्रयत्न किया, लेकिन अपनी बिल्लीका परित्याग करनेके लिए कोई तैयार नहीं हुआ। नाव तीन दिन और उसी समुद्र-तट पर पड़ी रही और अब निश्चित हो गया कि यदि वे नाविक अपने देशको पहुँचेंगे भी तो बिना कई दिनोंके उपवासके नहीं पहुँच सकेंगे। प्रत्येक व्यक्ति यह सोचता था कि यदि उसने अपनी बिल्ली फेंक भी दी, तो भी दूसरे लोग अपनी बिल्लियाँ नहीं फेंकेंगे और वह वैसा करके केवल अपनी व्यक्तिगत हानि ही करेगा।

अन्तमें, सातवें दिन एक नाविकने कुछ सोच-विचार कर अपनी बिल्ली पानीमे फेंक दी। उसके पानीमें गिरते ही छह और दूसरे नाविकोंकी बिल्लियाँ उसके पीछे अपने आप समुद्रमें कूद पड़ी। यह देखकर एक दूसरे नाविकने भी अपनी बिल्ली फेंक दी और उसके पीछे भी छह और बिल्लियाँ कूद पड़ीं। इस प्रकार एक-एक स्वेच्छा पूर्ण त्यागके पीछे छह-छह अनिच्छित त्याग अपने आप होने लगे और कुछ ही समयमें वह नाव बिल्लियोंसे आवश्यकतानुसार खाली हो कर पानीमें तैर चली और वे सभी जैसे तैसे, कुछ भूखे-उपासे अपने देशको पहुँच गये।

× × ×

मेरे कथा-गुरुका कहना है कि उस नावसे करोड़-गुनी बड़ी एक नाव अब भी एक पर-द्वीपके छिछले समुद्र-तट पर अटकी पड़ी है और उसके निस्तारका यही एक रास्ता है कि उसके कुछ सवार, दूसरा कोई बल-कौशल बरतनेके बदले केवल अपनी बिल्लीको पानीमें उतार फेंकनेके लिए तैयार हो जाएँ। कथा-गुरुका यह भी कहना है कि प्रत्येक फेंकी हुई बिल्लीके पीछे छह बिल्लियोंका अपने आप पानीमें कूदना एक स्वाभाविक सत्य और उनका वंशानुगत रहस्य है।

कल्पना सम्मेलन

बहुत पुराने समयकी बात है कि एक बार कुछ मनुष्योंने मिल कर 'कल्पना-सम्मेलन' नामको एक सभाकी स्थापना की। इस सभाके प्रथम समारोहकी अध्यक्षताके लिए उन्होंने देवाधिदेव महादेवको निमंत्रित किया। महादेवजीने अधिवेशनकी अध्यक्षता स्वीकार तो कर ली, पर समय पर कारण-वश स्वयं नहीं आ सके और देवगुरु बृहस्पतिजीको अपना स्थानापन्न बनाकर भेज दिया।

मनुष्योंने, जिनमें कुछ ऋषि, मुनि और लोक-लोकान्तरका इतिहास जानने वाले विद्वान् भी सम्मिलित थे, देवगुरुका अपने नगरमें बड़ा शानदार स्वागत किया और सात सौ हिरनोंसे जुते रथ पर उनका जुलूस निकाला। उन्होने देव-गुरुको एक सार-गर्भित मानपत्र भी भेंट किया। देवगुरुके साथ कुछ देवता जन भी इस सम्मेलनमें आये हुए थे।

सम्मेलनकी कार्यवाही प्रारम्भ होने पर प्रज्ञावर अग्रव्यासने कहा :

"इस सम्मेलनके अध्यक्ष-पदके लिए हमने देवकुलको इसलिए निमंत्रित किया है कि हम अपने निर्माण कार्य में देवताओंसे कुछ विशेष सुविधाएँ और तत्सम्बन्धी अनुमतियाँ चाहते हैं। शुक्रकुल-भूषण भगवान् सनत्कुमारने हमे आत्म-रतिकी तन्द्रासे जगाकर जो चिन्तन और कल्पना की प्रेरणाएँ दी हैं उनसे हमने अपनी लौकिक परिस्थितियों और भावनाओं के निर्माणका कार्य प्रारम्भ कर दिया है। इतिहास, नीति और आचारके हमारे कुछ सुविज्ञ स्वजनोंने अभी-अभी दो-तीन प्रारम्भिक पुराणोंकी रचना की है और हम चाहते है कि पुराणके नामसे ऐसी सहस्रों गाथाओंकी रचना और करें। इनमें हम मानव और पूर्व-मानव सृष्टिके ऐतिहासिक तथ्यों, विकासकी धाराओं और दूरातिदूर भविष्यके लिए आवश्यक संकेतो का भी कुशलता-पूर्वक समावेशकर देना चाहते हैं जिससे कि आने वाली बीचकी कुछ सहस्राब्दियोंके जाग्रत-मस्तिष्क किन्तु प्रसुप्त बुद्धि वाले हमारे

मानव-स्वजनोके हाथोंमे भी उस ज्ञान-भंडारकी कुंजी किसी न किसी रूपमे बनी रहे और आगे चलकर यथासमय उसका उपयोग हो सके। अपनी उन गाथाओंके लिए हमे देवताओंसे बढ़कर दूसरे रूपक और चरित्र-नायक नहीं मिल सकते, क्योकि उनसे हम वे सब विशेष और विचित्र काम ले सकते है जो मानव-पात्रोके लिए असभव और अस्वाभाविक दीख सकते है। अस्तु, हम देवजनोंकी अनुमति चाहते है कि हम उनके नामो और उनकी जीवनकथा-वस्तुओंका भी अपनी इन गाथाओंमें यथेच्छ उपयोग कर सके; और मानव-प्रवृत्तियोके अनुसार यदि हमे कहीं-कही उनके चरित्र को कुछ अतिरंजित या कुरंजित भी करना पड़े तो देवता जन इसका बुरा न माने।"

"निस्सदेह आप हमारे नामो और कार्योंका अपने पुराणोंमे यथेच्छ उपयोग कर सकते है" देवगुरु बृहस्पतिने कहा, "आपका उद्देश्य महान् है और हमे किसी भी रंगमे रजित या कुरंजित करनेसे हमारा अपमान नही हो सकता। अपने जिन 'जाग्रत मस्तिष्क' स्वजनोके लिए आप अपने पुराणोकी रचना करेंगे, उनकी मान्यताओंके अनुसार जो बड़ेसे बड़ा 'कुरंग' होगा उसका लेपन भी हम सहज, निर्विकार भावसे स्वीकार कर लेंगे। आप निश्चिन्त भावसे अपनी रचनाओंमे प्रवृत्त हो। जब तक आपके मानव रचयिताओंका अभिप्राय आपका जैसा ही शुद्ध और मागलिक बना रहेगा तब तक हमारा पूरा सहयोग आपकी कल्पना-कृतियोंमे रहेगा और जब उसमे कुछ विकार आने लगेगा तब हम अपना हाथ खींच लेंगे।"

"तब फिर पहला अतिरंजन या कुरंजन जो हम आपका करना चाहते है वह यह है कि आपके कुलको दो भागोमे बॉट कर उन्हे एक दूसरेके विरोधीके रूपमे दिखायें। आपके कुलको सुर और असुर इन दो कुलोंमे बॉटकर हम आपकी सह-गति-पूर्ण प्रवृत्तियोंको एक भयंकर युद्धके रूपमे दिखाना चाहते है और आपके परम बन्धु सात्र-पति

शनिदेवको विरोधीदलके नायकके रूपमें प्रस्तुत करना चाहते हैं।" अग्रव्यासने कहा।

"ऐसा ही कीजिए। और कुछ?" देवगुरुने मुसकराते हुए कहा।

"और हम आप लोगोंकी प्रवृत्तियोंको आवश्यकतानुसार मनुष्यकी नव-जाग्रत कामेन्द्रिय-सम्बन्धी इच्छाओंसे प्रेरित भी दिखाना चाहते है और कुछ दृश्योंमें आप लोगोको वासनाके वशीभूत हो कर, मानव मान्यताओं के अनुसार सम्भव और असम्भव कामक्रियाएँ करते हुए भी दिखाना चाहते है।" ऋषिवर कामश्रवाने कहा।

"आप हमारे सुन्दरतम, स्वल्पायुतम अनुचर कामदेवको कभी-कभी हमारे शासकके रूपमे दिखाना चाहते है!" देवगुरुने वैसे ही मुसकराते हुए कहा, "हमें यह सहस्र हर्ष-घोषोंके साथ स्वीकार है। तभी तो आपके स्वजन, वे मानव इन चरित्रोंकी ओर विशेष रुचिके साथ आकृष्ट होंगे और उनमेसे कुछ उनके भीतरी मर्म तक भी पहुँच सकेंगे। सोम, इन्द्र, ब्रह्मपुत्र नारद, और हम तो कहेंगे कि ब्रह्माजीको भी आप इस काम-भूषा में चित्रित करें तो बड़ा विनोद रहेगा।"

"अवश्य करेंगे देवगुरु!" कामश्रवाने कहा, "और अपने अनेक मनुओं और ऋषि-मुनि मानव-गुरुजनोंको भी इस भूषामें सजायेंगे।"

इसके आगे अन्य आवश्यक और कुछ गोपनीय विचार-विमर्शके पश्चात् सम्मेलनकी कार्यवाही समाप्त हुई।

अन्तमे देव-शिल्पी विश्वकर्मन्ने कहा:

"आपकी कल्पना-कृतियोंमें जो कुछ विचित्र और मनुष्यके लेखे असम्भव और अस्वाभाविक होगा उसके अनुरूप सजीव चित्रोंका निर्माण अपने सूक्ष्म लोकोंमें हम करेंगे और इस प्रकार आपकी उपयोगी कल्पनाओंको स्थायी रूप प्रदान करेंगे। सृष्टिकी रचनामें हम शीघ्र ही आप

मानवोंको अपना समकक्ष बनाकर अपने आदि पितृ-ऋणसे उऋण होना चाहते हैं।"

× × ×

मेरे कथा-गुरुका कहना है कि पुराणोंमें जो सम्भव-असम्भव, मान्य-अमान्य और नीतिकर-अनीतिकर असंख्य विविध श्रेणीके विवरण भरे पड़े हैं उनका अभिप्राय इस कथासे थोड़ा-बहुत प्रकट हो जाता है। उनका यह भी कहना है कि उस कल्पना-सम्मेलनका अधिवेशन प्रत्येक सौ वर्षमें अब भी एक बार इस पृथ्वीपर हो जाता है, और उन पुराणोंके आन्तरिक रहस्यों पर पड़े हुए परदोंमें छोटे-बड़े छिद्रोंका प्रादुर्भाव पिछली कुछ शताब्दियोंसे प्रारम्भ हो गया है।

उलटा जूता

एक बार इस पृथ्वीपर दैवी प्रकोपोंकी बाढ़ आई। कहीं अतिवर्षा, तो कहीं सूखा पड़ जानेके कारण अन्नकी उपज एकदम घट गई। कहीं महामारियोंके प्रकोपसे, तो कहीं युद्धोंसे ही पृथ्वीकी जनसंख्या क्षीण होने लगी। इस कठिन संकटको देखकर देवता लोगोंने भी इस समय पीठ फेर कर मनुष्योंके सम्पर्कमें आना छोड़ दिया। विवश होकर मानव कुलके बड़े बड़े ऋषि-मुनि अपनी कन्दराओंसे बाहर निकल आये और मनुष्योंके उदय हुए बुरे कर्मोंका शमन करनेके प्रयत्नमें लग गये। यह निश्चित था कि यह सारी विपत्ति मनुष्योंके अविचारसे उत्पन्न पाप और अनाचारकी प्रवृत्ति बढ़ जानेके कारण ही उनपर आई थी।

उसी समय एक देशविशेषमें, वहाँ वर्षा न होनेके कारण सारी धरती सूख गई थी, एक ऋषिराजने उस देशके राजनगरमें जल वर्षाके लिए एक बड़े 'लक्षाहुति' यज्ञका आयोजन किया और साथ-साथ उनके बीच साधना और सदुपदेशका भी क्रम प्रारम्भ कर दिया।

नगरसे कुछ दूर एक बड़े मैदानमें यज्ञ और सत्संगका आयोजन किया गया था। प्रातःसे मध्याह्नकाल तक यज्ञ होता था और तीसरे पहरसे पहर रात गये तक ज्ञान-चर्चाका क्रम चलता था। नगरकी पाँच लाखकी जन-संख्यामेंसे पचास यजमान चुन लिये गये थे और प्रत्येक घरके कमसे कम एक प्रतिनिधिका यज्ञमें प्रारम्भसे लेकर अन्ततक उपस्थित रहना अनिवार्य था। विधानके अनुसार तीस दिनमें यह एक लाख आहुतियोंका यज्ञ पूरा हो जाना था।

तीसरे पहरके सत्सङ्गमें प्रतिदिन ऋषिराजके प्रवचनोंके अतिरिक्त कुछ अन्य अधिकारी साधक तथा पण्डित जन भी थोड़ा-थोड़ा समय लेकर जनताके सामने भाषण करते थे। एक दिन नगरके चर्मकारने, जो सभा

की अन्तिम पंक्तिमें बैठा था, खड़े होकर निवेदन किया कि वह भी उपस्थित जनतासे कुछ कहना चाहता है।

सभाके प्रबन्धकोंने उसे इसकी अनुमति न देकर अपने स्थानपर बैठ जानेका संकेत किया। शूद्र जातिके अपढ़ चर्मकारको वे ऐसी धर्म-सभामें बोलनेकी अनुमति नहीं दे सकते थे।

दूसरे दिन फिर उस चर्मकारने सत्संग-सभामें खड़े होकर कहा—"महाराज, मैं भी उपस्थित जनोंके हितार्थ कुछ आवश्यक परामर्श देना चाहता हूँ। मुझे आज्ञा दी जाय।"

नगरके प्रधान पुरोहितने उसे आज भी झिड़कीके संकेत द्वारा बिठा दिया।

इसके पश्चात् प्रतिदिन वह चर्मकार सभामें उठकर वही माँग करता और उसी प्रकार कठोर अनुशासनके आदेश द्वारा बिठा दिया जाता।

अन्तमें अधिकारियोंने तङ्ग आकर उस चर्मकारके सभामें आने पर ही रोक लगा दी। वह अब केवल प्रातःकालीन यज्ञ-समारोहमें ही उपस्थित होता और सबसे पिछली पंक्तिमें बैठकर यज्ञकी समाप्तिपर अपने घर लौट जाता।

तीन सप्ताह बीत गये और वृष्टि-यज्ञ आधा भी नहीं हो पाया। इसका स्पष्ट कारण यह था कि सभी लोग प्रातःकाल निश्चित समयपर यज्ञ-शालामें नहीं पहुँच पाते थे। लगभग आधे घरोंके प्रतिनिधि प्रतिदिन देर करके पहुँचते थे और परिणाम-स्वरूप यज्ञ देरसे प्रारम्भ हो पाता था। ठीक मध्याह्नके समय दैनिक यज्ञकी पूर्णाहुति अनिवार्य थी। इसी कारण यज्ञकी सम्पूर्णतामें विलम्ब बढ़ता जाता था।

बहुत प्रयत्न और शासन-अनुशासन करनेपर भी सभी लोग प्रातःकाल ठीक समयपर यज्ञारम्भके लिए न पहुँच सके और तीन दिन पूरे होनेपर देखा गया कि सात सहस्र आहुतियोंकी यज्ञमें कमी रह गई थी।

उस अन्तिम दिनके सायंकालीन सत्सङ्गमे ऋषिराजने उपस्थित जनता को सम्बोधित कर कुछ भरे हुए स्वरमें कहा :

"यज्ञका मास आज पूरा होगया, किन्तु यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हो सका। प्रारब्ध कर्मके विरुद्ध हमारे नये अनुष्ठानकी यह पीड़ामयी पराजय हुई है। अब अगले वर्ष इसी महीनेमे यह यज्ञ-अनुष्ठान फिरसे किया जा सकता है। उसके पहले हमारे हाथमें आजकी दशाको सुधारनेका कोई उपाय नहीं है। लेकिन हमारे इस यज्ञकी विफलताके मूलमें आपकी विचार-विवेक-हीन अन्ध धारणाकी प्रवृत्ति ही है। आपने यदि उस चर्मकारका सत्परामर्श सुन लिया होता तो इस यज्ञको सफल करनेमें समर्थ हो गये होते। आपके सभा-विधानमें हस्तक्षेप करनेका मेरा अधिकार होता तो मै अवश्य ही उसकी बात सुननेका आपसे अनुरोध करता। अब, जबकि इस पूरे मासकी नियमित कार्यवाही समाप्त हो चुकी है, मै आपसे निवेदन करता हूँ कि यदि अनुचित न समझे तो भविष्यमें सावधानीके लिए उस चर्मकारको इस समय बुलाकर उसकी बात सुन ले।"

चर्मकारको उसी समय सभामे बुलाया गया। आदेश पाकर उसने कहा :

"मैं आप लोगोसे यह कहना चाहता था कि समस्त नगर वासियोंके लिए अबकी बार मैंने जो जूते बनाये है वे दाहिने और बाएँ पैरोंके लिए अलग-अलग हैं। अर्थात् दाहिने और बाएँ पैरोंके जूते भिन्न प्रकारके है और एक पैरका दूसरे पैरमें सुविधा-पूर्वक नहीं पहना जा सकता। चर्म-ऋषि प्रणीत पाद-पुराणमें, जोकि अभी तक लोक-दृष्टिसे गुप्त है, लिखा है कि जब कलियुग आयेगा तब लोगोमे वैषम्य, विरोध और अपने परायेकी भावना इतनी बढ़ेगी कि उनके एक पैरकी जूती भी दूसरे पैरके काम न आ सकेगी, और जब भूतलके सभ्य लोग लोक-सम्मत प्रथाके रूपमे वैसी जूतियाँ पहनने लगेंगे तब उनके जीवनमें कलियुगका पूरा प्रवेश निश्चित माना जायगा। इसी वर्षसे कलियुगका आरम्भ हुआ है और मैंने प्रयो-

गात्मक रूपमें युग-धर्मके अनुसार अबकी बार वैसी जूतियाँ बनाई हैं। मैं अपने नगर-वासियोंको बताना चाहता था कि वे ध्यानपूर्वक जाँचकर दाहिने पैरकी जूती दाहिने, और बाएँकी बाएँमें ही पहनें। इसपर ध्यान न देनेसे उन्हें चलनेमें असुविधा होगी और एक घड़ीकी यात्रामें उन्हें सवा घड़ीका समय अवश्य लग जायगा। मुझे भय था कि जिस दिन जिन लोगोंके पैरमें संयोगवश उलटी जूतियाँ पहन जायँगी वे सभी उसदिन यज्ञशालामें विलम्ब करके ही पहुँच सकेंगे।"

कर्म-हीन

हिमालयकी किसी कन्दरामें एक सिद्ध महात्मा रहते थे। एक बार एक साहसी तरुण साधु उनके पास पहुँच गया और उसने उनकी बड़ी सेवा की। महात्माजीने उसे अपना शिष्य बना लिया और कुछ ही दिनोंके अभ्याससे उसने अनेक सिद्धियाँ-शक्तियाँ प्राप्त कर लीं।

एक दिन महात्माजीने उससे कहा :

"वत्स, तुमने सभी लौकिक सिद्धियाँ और शक्तियाँ प्राप्त कर ली हैं। लेकिन यह संसार कर्म-भूमि है। जबतक तुम संसारमें जाकर कर्म नहीं करोगे, तुम्हारा पूरा कल्याण नहीं होगा। इसलिए जाओ और संसारमें कुछ उपयोगी कर्म करो।"

गुरुकी आज्ञा शिर-माथेपर लेकर वह साधु बस्तियोंकी ओर चल दिया। राहमें उसे एक दुर्बल-सा मनुष्य मिला जो अपने सिरपर एक बड़ी-सी गठरी लिये जा रहा था। बोझके कारण उसका दम फूल रहा था और पैर नहीं उठ रहे थे। साधुको उसपर दया आई और उसने अपने सिद्ध 'बैताल'का आवाहन कर उसे आज्ञा दी कि उस आदमीकी गठरी उठाकर उसके साथ-साथ जाये और उसे उसके अभीष्ट स्थानपर पहुँचा आये। संयोगवश उस आदमीको भी उधर ही जाना था जिस ओर यह साधु जा रहा था। अस्तु, यह साधु भी उसके साथ ही चला।

एक गाँवके समीप तालाब-किनारेकी एक घनी झाड़ीमें पहुँचकर उस आदमीने अपनी गठरी रखवा ली। वहाँपर पहलेसे ही उसकी स्त्री छिपी हुई उपस्थित थी। साधुको यह पता चलाते देर न लगी कि यह दुर्बल आदमी एक चोर है और दूसरे गाँवके किसी घरसे सामान चुराकर लाया है। साधुको उस चोरपर बड़ा क्रोध आया और पश्चात्ताप भी हुआ कि किस कुपात्र दुष्टकी उसने सहायता की! उसने वह गठरी उसी समय

चोरके सिरपर लदवाकर उसे आज्ञा दी कि तुरन्त उसे उसके मालिकके पास ले जाकर लौटाये और अपने कुकृत्य की क्षमा माँगे। उसने अदृश्य रूपमे अपने बैतालको चोरके साथ कर दिया, जिससे वह चोर इस आदेश के पालनमें कोई गड़बडी न कर सके।

आदेशका पालन कराकर बैतालने साधुको इसकी सूचना दी और बताया कि उस गठरीका मालिक एक बडाही भगवद्-भक्त किन्तु निर्धन गृहस्थ है। अपनी पुत्रीका विवाह करनेके लिए उसने जो सामान पेट काट-काटकर इकट्ठा किया था उसे ही वह चोर चुरा लाया था! चोरके मुखसे सारी कथा सुनकर भक्तने उसे, आपको और भगवान्को बड़े-बडे धन्यवाद दिये।

साधुने सोचा कि ऐसे निर्धन भगवत्-भक्तकी उसे कुछ और सहायता करनी चाहिए। उसने संकल्प किया कि वह स्वयं उसके घर जाकर उसे सौ स्वर्ण मुद्राएँ भेंट करेगा।

साधु लौट पड़ा और उस गृहस्थ भक्तके गाँवके बाहर ही उसे कुछ लोग आपसमें बातें करते हुए मिले। ये उस गृहस्थकी ही चर्चा कर रहे थे। उनमेंसे एक व्यक्ति कह रहा था कि उस गृहस्थ भक्तने उससे पाँच स्वर्ण मुद्राएँ उधार ली थीं और देनेके नामपर हमेशा टाल-मटोल करता है और कभी-कभी कुवचन बोलकर उसका तिरस्कार भी करता है। इस साधुने देखा कि वह व्यक्ति सचमुच इस समय बडी गरीबीकी दशामें है। साधुने उसी समय 'प्राप्ति' सिद्धि द्वारा पाँच स्वर्ण मुद्राओंका आवाहन किया और उस व्यक्तिको अलग बुलाकर वे मुद्राएँ उस गृहस्थकी ओरसे उसे दे दीं।

भक्तके बारे में इस जानकारीसे साधुको कुछ क्षोभ भी हुआ और उसने सोचा कि ऐसे भक्त गृहस्थको किसी गरीबका पैसा नहीं रोकना चाहिए था और अपने ऋण-दातासे दुर्वचनोंका व्यवहार तो कदापि नहीं

करना चाहिए था। उसने निश्चय किया कि ये पाँच स्वर्ण मुद्राएँ उसे उन संकल्पकी हुई सौ स्वर्ण मुद्राओं मेंसे काट लेनी चाहिएँ।

भक्त गृहस्थके घर पहुँचने पर उसने साधुका एक अभ्यागत अतिथिके रूपमें बड़े आदर-भावसे स्वागत किया। साधुने गृहस्थको यह नहीं ज्ञात होने दिया कि चोर वाले प्रकरणमें उसीका हाथ रहा है। बातचीतमें उस साधुको ज्ञात हुआ कि वह व्यक्ति जिसे उसने पाँच स्वर्ण मुद्राएँ दी थी वास्तवमें उस गृहस्थ भक्तके पिताका बीस स्वर्ण मुद्राओंका ऋणी है और उसने एकबार पाँच स्वर्ण मुद्राएँ उस ऋणकी अदायगीमें ही दी थीं और अब उन्हे अपनी स्वतंत्र देन बताकर उनका तकाज़े पर तकाज़ा करने लगा था।

साधुने 'अणिमा' सिद्धि द्वारा बहुत छोटा रूप धर कर उस व्यक्तिके घरमें प्रवेश करके वे पाँचों स्वर्ण मुद्राएँ वापस ले लीं।

साधु रात भर उस गृहस्थका अतिथि रहा और रातमें ही उसने 'प्राप्ति' सिद्धि द्वारा पच्चानवे और स्वर्ण मुद्राओका आवाहन करके, पिछली पाँच समेत सौ स्वर्ण मुद्राएँ अपने पास अगली सुबह भेंट करनेके विचारसे रख लीं।

उस गृहस्थका एक पुत्र बड़ा दुर्व्यसनी और नीच प्रकृतिका निकल गया था। उसने इस अतिथिके पास स्वर्ण मुद्राओंकी झलक पाकर रातो-रात पचास मुद्राएँ चुरा लीं। सुबह जब साधुने अपनी थैलीको आधी रीती पाया तो उसे बड़ा क्षोभ हुआ। अपनी 'योगिनी'का आवाहन कर उसने इस चोरीका पूरा भेद जान लिया और गृहस्थसे उसके पुत्रकी शिकायत की।

गृहस्थने कुछ उत्तेजित स्वरमें कहा :

"महाराज, यह ठीक है कि मेरा पुत्र दुष्ट है, पर आपका यह लाञ्छन तो सर्वथा झूठा ही प्रतीत होता है। आप साधु हैं, आपके पास पचास स्वर्ण मुद्राएँ कहाँसे आईं? आप भले अतिथि बनकर एक ग़रीब गृहस्थ

पर पचास स्वर्ण मुद्राओंका बोझ और लादना चाहते है ! आप इस तरह ठगी करके क्यों अपने साधु वेशको कलंकित और सीधे-सादे गृहस्थों को अपमानित करते फिरते है ?"

यह सुनते ही साधुको बड़ा क्रोध आया। उसने गृहस्थको भस्म करने के लिए ज्योंही अपने सिद्ध 'वज्र'का आवाहन किया वैसे ही उसके गुरुने प्रकट होकर उसका हाथ रोक लिया और कहा :

"वत्स ! संसारमे कर्म करना बडी-बड़ी सिद्धियोंको प्राप्त करनेसे भी अधिक कठिन है और संसारके लोग प्रतिकारो और प्रतिक्रियाओंके वेगमे बहकर कर्म करने मे असमर्थ हो रहे है। उस प्रतिक्रियाके वेगमे बहकर तुम भी अपने संकल्प किये हुए कर्मोंपर स्थिर नहीं रह सके। यदि तुम अपने वैताल द्वारा ही उस चोरकी गठरी मालिकके पास भेज देते, उस व्यक्तिसे पॉच मुद्राएं वापस न ले आते, और इस निर्धन भक्त गृहस्थको सौ नहीं तो कमसे कम उसके नामकी शेष पचास मुद्राएँ भी दे देते तो अपने निश्चित कर्ममे कुछ स्थिर माने जा सकते। तुम्हारे ही हितमे मै अपनी दी हुई सिद्धियॉ तुमसे वापस लेता हूँ और तुम्हे परामर्श देता हूँ कि गृहस्थाश्रममे ही लौटकर अपने नये किये हुए इन अपकर्मों के फल-भोगके साथ-साथ विद्या, सत्संग और चिन्तन द्वारा उचित लोक-व्यवहार की प्राप्ति करो।"

आदि रोग

यह कथा उस समयकी है जब संसारमे रोगोका जन्म नही हुआ था और मानव-समाज सुखी और आजसे भी कुछ अधिक सभ्य था। शरीर-विज्ञानके वेत्ता चिकित्सक लोग उस समय भी होते थे, पर उनका काम केवल चोट आदि दुर्घटना-जनित क्षतियोंका उपचार करना ही था।

उन्हीं दिनो एक बार एक आदमीको एक नया रोग लग गया। उसने अनायास ही बड़े पीड़ा-पूर्ण स्वरमें रोना-चिल्लाना प्रारम्भ कर दिया, जैसे उसे कोई गहरी चोट लगी हो। चिकित्सा-शास्त्रियोंने बड़े ध्यानके साथ उसका निरीक्षण किया और निश्चय किया कि उसके शरीरके किसी भी बाहरी या भीतरी अवयवमे कोई चोट नहीं लगी है।

चिकित्सकोंने अपनी पूरी विद्या और योग्यताका बल लगाकर उसे स्वस्थ करनेका प्रयत्न किया। उन्होंने उसे विविध जलवायु और ताप-मानोंके स्थानोंमें रक्खा, उसकी प्रत्येक माँगको तुरन्त ही पूरा करनेकी, उसकी प्रत्येक आशङ्काका तुरन्त ही निवारण करनेकी व्यवस्था की; पर उसका रुदन-क्रन्दन किसी तरह नहीं रुका। निद्रावस्थामे और जब रोते-रोते वह थक जाता था तब थोड़ी देरके लिए उसका रुदन रुकता था और फिर प्रारम्भ हो जाता था। चिकित्सको, उपचारकों, सेवकों और सहानुभूति रखनेवाले स्वजनो एवं प्रिय जनोकी भीड़ उसके समीप निरन्तर रहने लगी और सभी परिचित-अपरिचित लोगोंने भरपूर उसकी सेवा-सहायताका प्रयत्न किया पर सब व्यर्थ ही रहा!

बात यहीं तक नहीं रही और उस व्यक्तिके रोगका प्रभाव उसके समीपवर्ती कुछ अन्य लोगोपर भी पड़ने लगा। चिकित्सकोंने शीघ्र ही यह पता लगा लिया कि यह रोग अत्यन्त संक्रामक है। उस प्रथम रोगीके उपचारकों और प्रियजनोंमे इस रोगके कीटाणु इतने प्रवेश कर गये थे

कि उनसे उनकी रक्षा करना अब असम्भव था। अब यह रोग द्रुत गतिसे सारे देशमें फैलने लगा।

चिकित्सा-सम्बन्धी नई-नई खोजें की गईं। मानसिक चिकित्सा-प्रणालियोंका आविर्भाव हुआ। राज्यकी ओरसे बहुतसे चिकित्सालय इस रोगके खोल दिये गये और उनमें रोगियोंकी हर प्रकारकी सुविधाका प्रबन्ध रक्खा गया। चिकित्साकी नई प्रणालियोंसे रोगकी रोकथाम भी होने लगी, पर वह अस्थायी ही सिद्ध हुई। देशमें रोगका प्रसार बढ़ता ही गया।

अन्तमें एक चिकित्सकने बड़े परिश्रमके साथ इस रोगका सर्वथा स्वतन्त्र और मौलिक रूपमें अध्ययन करके अपनी सेवाएँ प्रस्तुत कीं। उसने इस रोगका नाम रुदन महारोग बताया।

जो थोड़ेसे रोगी प्रयोगात्मक रूपमें उसे पहले दिये गये उन सबको उसने अस्पतालोंसे निकालकर बस्तीसे दूर, अलग-अलग कुटियोंमें बसा दिया। खान-पानकी बहुत ही आवश्यक वस्तुएँ सीमित मात्रामें उन्हें दी गईं और बहुत कम लोगोंको उनसे मिलनेकी अनुमति दी जाने लगी। जिन थोड़ेसे लोगोंको वह चिकित्सक अपने रोगियोंसे मिलने देता था उन्हें आदेश रहता था कि वे रोगीसे किसी प्रकारकी ममता और सहानुभूति नहीं दिखायेंगे, उसकी कोई माँग पूरी नहीं करेंगे, उसकी किसी वास्तविक या कल्पित आशङ्काको घटाने या मिटानेका प्रयत्न नहीं करेंगे, उसे किसी प्रकारकी सान्त्वना या आशा नहीं देंगे और उसके रुदन-क्रन्दनमें कोई भी रुकावट नहीं डालेंगे। उस चिकित्सकने कुछ ऐसे तैयार किये हुए परिचारक भी नियुक्त कर दिये जो इन रोगियोंके पास जाते थे और उनसे उनके रुदन-क्रन्दनका कारण पूछते थे। उत्तरमें वे रोगी भाँति-भाँतिकी पीडाओं, आशङ्काओं और सामने दीखती हुई विपत्तियोंके नाम लेते थे और ये परिचारक उनसे कुछ इस प्रकारकी बातें करते थे :

"निस्सन्देह यह पीड़ा या विपत्ति बड़ी भयङ्कर है और वह आशङ्का सर्वथा ठीक जान पड़ती है। यह बढ़ती हुई नदी अवश्य ही तुम्हारी इस कुटियाको दो-तीनमें डुबा देगी। तुम्हारे उस प्रियजनकी आँखें तुम्हारे लिए रोते-रोते अब तक अवश्य अंधी हो गई होगी। इस कुटियाके पीछेवाले टीलेमे काले सर्पने ही वह बांबी बनाई जान पड़ती है। तुम्हारी इन सभी मुसीबतोका किसीके पास कोई उपचार नहीं है; तुम्हें ये अपने ऊपर झेलनी ही पड़ेगी।"

इस उपचार-प्रणालीसे पहले तो उन रोगियोंका रोग—उनका रुदन-क्रन्दन—और भी बढ़ा पर धीरे-धीरे वह घट चला। पहले जब उनकी कल्पित पीड़ाओ और आशङ्काओंको घटाने और छिपानेका प्रयत्न किया जाता था तब वे उन रोगियोको लोगोंके दिये हुए अनुमानसे अधिक ही जान पड़ती थीं; और अब, जब कि उन्हें बढ़ाने और अधिकसे अधिक बतानेका प्रयत्न किया गया तो वे इस नये अनुमानकी अपेक्षा बहुत कम निकलने लगी। फलतः यह रोग घटकर धीरे-धीरे पूर्ण नियन्त्रणमें आ गया और उस देशके लोग उससे अपने आपको सर्वथा मुक्त करनेमें समर्थ हो गये।

× × ×

मेरे कथा-गुरुका कहना है कि इस महासंक्रामक रुदन महारोगके कुछ कीटाणु फिर भी मानव-जातिमें शेष रह ही गये और उनकी कुछ पीढ़ियो बाद यह रोग फिर प्रकट हो गया। उनका यह भी कहना है कि इस रोगको आजके चिकित्सा-शास्त्री भी उन्माद रोगकी शाखाके रूपमें स्वीकार करते हैं, पर वास्तवमें यह रोग उन्मादकी शाखा नहीं है प्रत्युत आजके सभी शारीरिक और मानसिक रोग—चोट और दुर्घटना-जनित क्षतियोंको छोड़कर—इस महारोगकी ही शाखाएँ हैं और यह रुदन महा-रोग ही मनुष्य जातिका आदि रोग है।

ऊर्ध्व चक्र

ब्रह्माजीको जब मानव-सृष्टिकी प्रेरणा मिली तब उन्होंने सबसे पहले सात मनुष्योंको उत्पन्न किया। ये सातों मनुष्य लोक-लोकान्तरमें विचरण करने लगे।

लोक-लोकान्तरोंमें विचरण करते-करते इन आदि मानवोंको कुछ विश्राम की इच्छा हुई। इन्होंने ब्रह्माजीकी आराधनाके लिए तपस्या की। जब ब्रह्माजीने इतनी तपस्यासे प्रसन्न होकर इन्हें वरदान माँगनेकी अनुमति दी तब इन्होंने कहा :

"हे पितामह! हम लोक-लोकान्तरोंमें भ्रमण करते-करते थक गये हैं। आप हमारे विश्राम और निवासके लिए एक निश्चित लोककी रचना कर दीजिये।"

ब्रह्माजीने कहा: "एवमस्तु!" और उनके निवास और विश्रामके लिए पृथ्वीलोककी रचना कर दी। पृथ्वीपर बड़े-बड़े जल भाग—समुद्र—भी थे।

इस पृथ्वी पर उन सातों आदि मानवोंने अपनी क्रिया-शक्ति द्वारा सन्तानोंकी उत्पत्ति की। इन संतानोंने विविध प्रणालियों द्वारा अपने वंशोंकी वृद्धि की—इन्होंने क्रमशः छाया-सन्तति, स्वेद-सन्तति, अंड-संतति और उदर-सन्ततिकी उत्पत्ति की।

इस प्रकार कुछ युग बीत गये। मानव-वंशके अधिक विस्तारके कारण मनुष्योंका मोह पृथ्वीसे ही अधिक होता गया और दूसरे लोक-लोकान्तरोंसे उनका सम्बन्ध घटता गया। इसका परिणाम यह हुआ कि लोक-लोकान्तरोंमें उनका आना-जाना लगभग समाप्त हो गया और फलतः उनकी पृथ्वी लोकसे बाहर विचरण करनेकी शक्ति भी क्षीण हो गई। वे अब एक प्रकारसे पृथ्वीमें ही बँध गये।

शक्तिके ह्रासके कारण दूसरे लोक-लोकान्तरों, ग्रहों और नक्षत्रों, यहाँ तक कि अपने जीवन-स्रोत सूर्यका भी सीधा सम्पर्क उन्हें असह्य होने लगा। अपने वंशका यह कष्ट देखकर उन्हीं सातो आदि मानवोंने फिर ब्रह्माजीकी आराधनामे तपस्या की और उनके प्रकट होने पर निवेदन किया :

"हे प्रजापते ! हमारी सन्ततिको सूर्यादिके सीधे सम्पर्कसे कष्ट होता है और वह उनका तेज सहन करनेमे समर्थ नही है। आप सूर्यतापसे उसकी रक्षाके लिए कुछ प्रबन्ध कर दीजिये।"

ब्रह्माजीने कहा, 'एवमस्तु' और पृथ्वी पर गुफा-कन्दरा वाले पर्वतों तथा वृक्षो और वनोंकी रचना कर दी। इनकी छायामे मनुष्योंको बड़ा सुख मिलने लगा और वे इच्छानुसार सूर्य-ताप और तरु-छायाका उपयोग करने लगे।

कुछ समय बाद मनुष्योंको इनसे भी असन्तोष होने लगा। उन्होने देखा कि ये वृक्ष उनकी इच्छा और आवश्यकताके अनुसार ऊँचे-नीचे और घने-विरले नहीं होते और दिशाओंसे आनेवाली ठण्डी और गरम हवाओ से उनकी यथेष्ट रक्षा नहीं कर पाते।

उन सातों आदि मानवोंने अपनी सन्ततिका यह असन्तोष देखकर फिर ब्रह्माजीके लिए तपस्या की और उनके प्रकट होने पर अपनी समस्या उनके सामने प्रस्तुत की।

ब्रह्माजीने कहा :

"हे पुत्रो ! तुम्हारी सन्ततिके लिए हम जो कुछ कर चुके है उससे आगे और कुछ नहीं कर सकते। फिर भी कोई चिन्ताकी बात नहीं। मनुष्यने अपने भीतर जो विस्तार-बुद्धिके विपरीत सङ्कोच-बुद्धिका विकास कर लिया है उसके द्वारा वह आप ही अपनी इस कठिनाईका उपाय निकाल लेगा।"

कुछ ही समय पश्चात् मनुष्योंने छतों, दीवारों और धीरे-धीरे विविध प्रकारके भवनोंका निर्माण प्रारम्भ कर दिया। पर्वतों, वृक्षों और वनोंकी अपेक्षा ये भवन उन्हें अधिक सुविधा-जनक जान पड़े और वे इनमें ही अधिकाधिक रहने लगे। इसका स्पष्ट परिणाम यह हुआ कि उनकी दृष्टि और विचार अधिकाधिक सीमित होते गये और उनकी ध्यान और दूर-दर्शनकी रचनात्मक शक्तियोंका सवेग गतिसे ह्रास होने लगा। अदूर-दर्शिताके कारण भय, स्वार्थ और संग्रहकी प्रवृत्तियाँ उनमें बढ़ गईं और वे अत्यधिक क्लेशोंमे फँस गये।

अपनी सन्ततिका यह अति कठिन कष्ट देखकर उन सातों आदि मानवोंने फिर—यह अभी हालकी ही बात है—ब्रह्माजीके लिए तपस्या की। प्रकट होने पर, सारी कथा सुनकर ब्रह्माजीने कहा :

"स्वनिर्मित सीमाओंके बन्धनका कष्ट कुछ समय तो मनुष्योंको भोगना ही पड़ेगा। पर शीघ्र ही इस युगके प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र भारत-वर्षमें एक ऐसे चिन्तनशील मनुष्यके हृदयमें, जिसका यथासमय उस देशकी शासन-व्यवस्थामें भी कुछ सशक्त हाथ होगा, छतों और दीवारोंकी सीमाओं को तोड़कर अपने देश-वासियोंको पुनः वृक्षों और वनोंकी ओर ले जानेकी प्रेरणा जागेगी और वह एक देश-व्यापी आन्दोलनके रूपमें इस कार्यको प्रारम्भ कर सकेगा और भौतिक शक्तियाँ इसके लिए अनुकूल परिस्थिति पहलेसे ही उत्पन्न कर देंगी। मानव-समाजके लिए यह संकोच-बुद्धिसे विस्तार-बुद्धिकी ओर एक प्रकारसे परिवर्तनका बिन्दु होगा। शेध-चक्रमें उसका निवान बिन्दु उस समय तक अपनी अधोन्मुख यात्रा पूरी करके ऊर्ध्व-मुख हो जायगा। इसके फलस्वरूप कुछ मनुष्योंमें वृक्षों और वनोंका अनुराग जागेगा और वे प्रकृतिके अधिक समीप आकर अपनी खोई हुई दूर-दर्शिता और ध्यान शक्तिको पुनः प्राप्त करने लगेंगे। अनेक

सिद्ध मानव और देवता-जन भी उस नवीन प्रवृत्तिमें अपने समर्थ हाथोंका सहयोग देंगे और मानव-जाति अपने क्लेशोंसे मुक्तिके मार्ग पर चल पड़ेगी।"

× × ×

देशकी नवीनतम हलचलों और मेरे कथागुरुके संकेतके अनुसार भी ब्रह्माजीके इस अन्तिम आशीर्वचनके फलनेका समय आया जान पड़ता है।

लघुकी महत्ता

एक बार मेघोंके देवता वरुण और पृथ्वीके बीच कुछ ऐसी अनबन हो गई कि वरुणदेवने पृथ्वीपर जल न बरसानेका सुदृढ़ निश्चय कर लिया।

कई वर्ष तक वर्षा न होनेके कारण पृथ्वी झुलस उठी। पशु-पक्षी, मनुष्य और वनस्पति तक भूख-प्याससे तड़प उठे और चारों ओर हाहा-कार मच गया।

देवताओंके राजा इन्द्रके पास जब यह समाचार पहुँचा तो उन्होंने वरुणदेवको बुलाकर समझाया कि उन्हें अपना हठ छोड़कर प्यासी धरती के प्राण बचाने चाहिएँ। लेकिन वरुणने इन्द्रकी इस बातको, और जब बातने आज्ञाका रूप ले लिया तो आज्ञाको भी, स्वीकार करनेसे इनकार कर लिया।

वरुणदेवके इस रुखसे देवताओंमें भी बड़ी खलबली-सी मच गई। इन्द्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन अभी तक किसी भी पदारूढ़ देवताने नहीं किया था। पृथ्वीकी चिन्ताके बराबर ही अपनी शासन-व्यवस्थाको भी अक्षुण्ण बनाये रखनेकी चिन्ता इन्द्रदेवको हो गई।

लेकिन अन्तमें एक बड़े ही चातुर्य-पूर्ण राजनीतिक कौशलने—जिनकी चर्चा निस्सन्देह विशेष आश्चर्यजनक और रोचक होती, किन्तु प्रस्तुत कथा-लक्ष्यसे उसका कोई आवश्यक सम्बन्ध न होनेके कारण उसे यहाँ नहीं उठाया जा रहा है और इतना ही कहना पर्याप्त है कि—इन्द्रने वरुणको पृथ्वीपर मेघमालाएँ ले जाकर जल बरसानेके लिए विवश कर दिया। वरुणने देखा कि यदि वह पृथ्वीपर जल बरसाने नहीं जायगा तो अग्नि और वायुके देवता उससे असहयोग कर देंगे और उसके मेघोंका अस्तित्व ही मिट जायगा।

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके मैं पृथ्वीपर जल बरसाने जाता हूँ यद्यपि मैंने ऐसा न करनेकी शपथ ले ली थी।" वरुणने चलते समय पराजित और उदास स्वरमें इन्द्रसे कहा।

"शपथका निर्वाह केवल मध्यकोटिके जीवोंके लिए आवश्यक और आदरणीय है। निम्न कोटिके जीव प्रायः शपथका निर्वाह कर नहीं सकते और उच्च कोटिके जीवोंके लिए उसका निर्वाह अनावश्यक है—वे शपथके बन्धनमें नहीं रहते। अभी कुछ ही वर्ष हुए, विगत कौरव-पाण्डव युद्धमें विष्णुने कृष्णके रूपमें अपनी शपथको स्वयं ही तोड़कर युद्धमें अस्त्र उठाया था। आप तो उच्च कोटिकी एक देवविभूति है, आपको शपथका बन्धन कैसा! जाइये, प्रसन्न मनसे पृथ्वीको जीवन-दान दीजिए।" इन्द्रने सम्मान-पूर्वक वरुणका उत्साह बढ़ाते हुए कहा, यद्यपि उनके इस कथनमें कहीं पर कुछ व्यंग्य भी था।

वरुणने पृथ्वीपर मेघमालाएँ ले जाकर यथेष्ट जल-वर्षा की। धरतीके सभी जीव प्रसन्नता और कृतज्ञतासे नाच उठे।

पृथ्वी लोकसे बड़े-बड़े राजे-महाराजों, ऋषियों-महर्षियों तथा पशु-पक्षी और वनस्पति राज्योंके विविध शासकों तथा अनेक भूलोक-वासी देवों और मनुष्योंकी ओरसे आये हुए धन्यवादों, बधाइयों और आशीर्वादोंका इन्द्रके पास ढेर लग गया। इन्द्रके तत्कालीन दरबार-सचिव सोमदेवने इन सभी सन्देशोंका सङ्कलन किया।

देव-दरबारमें ये सभी सन्देश—बधाइयाँ, साधुवाद आदि—पढ़कर सुनाये गये और इन्द्रने इनसे अपने आपको विशेष सम्मानित और पुरस्कृत अनुभव किया।

और सब सन्देश पढ़ चुकनेके बाद सोमदेवने केवल एक सन्देशको बिना सुनाये यों ही अनावश्यक पत्रोंके पात्रमें डाल दिया।

"उस पत्रको आपने क्यों नहीं सुनाया ?" इन्द्रने उसीकी ओर संकेत करके पूछा।

"वह कोई कामका पत्र नहीं, महाराज !" सोमदेव सङ्कुचितसे कहने लगे।

इन्द्रने स्वयं बढ़कर उस पत्रको उठा लिया। उसकी पंक्तियोंपर दृष्टि फिराते ही उनके मुखकी प्रसन्नता दुगुनी दमक उठी।

"सबसे अधिक सार्थक और सम्मान-प्रद साधुवाद तो मेरे लिए इसी बधाईमें है।" इन्द्रने देव-दरबारमें उस सन्देश-पत्रको माथेसे लगाते हुए कहा, "इसीके बलपर मैं पितामह ब्रह्मासे अपने लिए कुछ विशेष सम्मान और अधिकार प्राप्त कर सकूँगा।"

इन्द्रने देव-दरबारमें स्वयं उस सन्देशको पढ़कर सुनाया। वह पृथ्वीके एक निर्जन मरुस्थलके बीच बने, एक पुराने सूखे कुएँमें रहनेवाले एक मेंढककी भेजी हुई बधाई थी। उसमें कहा गया था कि पिछली अनेक वर्षा ऋतुओंमें भी निर्जल रहनेके पश्चात् अबकी बारकी वर्षासे उस सूखे कुएँके स्रोतमें भी पानी आ गया था।

कहा जाता है कि उस मेंढककी बधाईके कारण ही देवराज इन्द्रको स्वर्ग और मर्त्यलोककी कुछ निम्न कोटिकी योनि-जातियोंपर—भी जिनका प्रबन्ध पहले सीधे ब्रह्माजीके हाथोंमें ही था—शासन करनेका अधिकार ब्रह्माजीने दे दिया और इन्द्रकी इस प्रतिष्ठाके उपलक्ष्यमें वह मेंढक शीघ्र ही मनुष्य-योनि प्राप्त करके महामुनि मण्डूकके नामसे प्रसिद्ध हुआ। यह अभी तक सन्दिग्ध है कि इस कथाके महामुनि मण्डूक ही माण्डूक्योपनिषद्के रचयिता हैं या उनसे भिन्न हैं!

तीसरी राह

किसी तपोवनमें एक आत्म-ज्ञानी महात्मा रहते थे। एक बार किसी गाँवके तीन जाटोंके मनमे उनके शिष्य बनकर आत्म-ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा हुई। तीनों उस तपोवनकी ओर चल दिये।

उन सन्त-महात्माको किस प्रकार अपना गुरु बनाकर उनसे आत्म-ज्ञान प्राप्त किया जाय, इसी विषयपर वे तीनों राहमें बात करने लगे।

पहले जाटने कहा :

"आत्म-ज्ञानका मार्ग दुनियादारीके मार्गसे अलग है। मै तो जाकर महात्माजीके पैरोंपर गिर जाऊँगा और उनके पैरोंकी धूल अपने माथेपर लगा लूँगा। अगर इतनेपर उन्होंने मुझे आत्म-ज्ञानका उपदेश कर दिया तो ठीक है ही, नहीं तो मै उनके आश्रमके द्वारपर यों ही बिना खाये-पिये, रोता-पुकारता पड़ा रहूँगा। कभी न कभी उन्हे मुझपर दया आयेगी ही और वे मेरी भक्तिको इतना पक्का देखकर मुझे आत्म-ज्ञानका उपदेश दे देंगे।"

दूसरे जाटने कहा :

"भाई, तुम्हारी बात कुछ-कुछ तो ठीक है, पर उसमें एक बात जरा धोखे की है। सन्तोंके दरबारमे रोने-धोनेकी महिमा बहुत बड़ी है और सन्त लोग दयालु भी बहुत होते है। लेकिन भूखे-प्यासे रहनेकी बात ऐसी है कि जबतक सधी, सधी और जब न सधी तो न सधी! इसलिए मैं तो महात्माजीकी पिलकर सेवा करूँगा। उनके चरण दबाऊँगा, स्नान कराऊँगा, उनकी हरेक छोटी-बड़ी, ऊँच-नीच सेवा करूँगा और उनका हरेक काम करनेके लिए चौबीसो घण्टे उनके द्वारपर मुस्तैद रहूँगा। सन्तोंको और क्या चाहिए? वे सेवासे ही प्रसन्न होते है। मेरी सेवासे प्रसन्न होकर वे किसी-न-किसी दिन मुझे आत्म-ज्ञानका उपदेश ज़रूर कर देंगे।"

इसपर तीसरे जाटने, जो सबसे तगड़ा था, अपना मोटा लट्ठ धरतीपर पटकते हुए कहा :

"मेरा तो भाई, जनमका साथी यह लट्ठ है। मैंने दुनियामें जो कुछ कमाया है, इसीके बलपर, और महात्माजीसे जो कुछ पाऊँगा वह भी इसी के बलपर! सन्त लोगोंके सेवक भी बहुत होते हैं। तुम्हें महात्माजीने आज्ञा दे दी कि बस करो बेटा बस, तुम आराम करो और दूसरे सेवकोंको सेवा करने दो तो तुम्हारा काम तो इस आज्ञा-बरदारीमें ही चौपट हो जायगा। और महात्माजीने अगर तुम्हारे रोने-धोनेपर तरस खाकर किसी चेलेके हाथों एक पत्तल कड़ाह-परसाद तुम्हारे पास भेजकर तुम्हें हुकुम भेजा कि बेटा, रो मत, हाथ-मुँह धोकर यह हलवेका प्रसाद पा ले, तो तुम भी उनका हुकुम मानोगे ही और तुम्हारा भी असली मामला यों ही टरकता रहेगा। इस सबसे तो भाई, मेरा यह लट्ठवाला नुस्खा ही पक्का है।"

"लट्ठ?" पहले जाटने कहा, "अरे मूरख, कहीं लट्ठके बलपर आत्म-ज्ञान प्राप्त किया जाय है? सन्तोंका तेज तुम नहीं जानते। एक कोप-भरी दृष्टि तुम्हारी तरफ उठा देंगे तो लट्ठ समेत वहींपर भस्म हो जाओगे।"

तीनों जाटोंमें इस प्रकार कुछ आलोचना-प्रत्यालोचना और फिर तू-तू मैं-मैं की भी नौबत आगई। लेकिन तीसरे जाटके लट्ठके संकेतसे यह मतभेद बहुत जल्द समाप्त हो गया और तय हुआ कि तीनोंका मार्ग अपने अपने लिए ठीक है और उसीपर तीनोंको अमल करना चाहिए।

आत्म-ज्ञानके ये तीनों जिज्ञासु जब महात्माजीके आश्रममें पहुँचे तब पहला जाट उनके सामने पृथ्वीपर गिरकर फूट-फूटकर रोने लगा। दूसरा सीधे उनके पैरोंपर हाथ लपकाकर उन्हें दबाने लगा। और तीसरेने उनके सामने अपने लट्ठका सिरा धरतीपर पटकते हुए कहा :

"महात्माजी, मुझे आत्म-ज्ञान चाहिए। आपके पास वह ज्ञान है और मैंने सुना है कि ज्ञान देनेसे घटता नहीं है। इसलिए मुझे आत्म-ज्ञान

देनेमें आपका कोई घाटा नहीं है। इसपर भी आपको अगर मेरी विनती माननेमें कोई आना-कानी हो तो महाराज, मैं तो एक सीधा-सादा जाट हूँ, समझ लीजिये कि आप है और मेरा यह लट्ठ है।"

महात्माजीने इन तीनों जिज्ञासुओंका यथावत् समाधान करते हुए पहलेको अपने हाथोंसे उठाकर उसके माथेपर हाथ फेरा, दूसरेकी पीठ थपथपाई और तीसरेके साहस और पौरुषकी प्रशंसा की। उन्होंने वचन दिया कि वे यथाधिकार तीनोंको आत्म-ज्ञान देनेका प्रयत्न करेंगे।

अगले दिन तीनोको बुलाकर महात्माजीने पहले जाटको भजन-पूजन सम्बन्धी कुछ प्रार्थनाओ और स्तोत्रोंको कण्ठस्थ कर लेनेका आदेश देते हुए उसे उसकी इच्छानुसार जी खोलकर भक्ति-पूजा करनेका उपदेश दिया। दूसरे जाटको अपने आश्रमके नये पौदोको जल देनेकी सेवा सौप दी; और तीसरेसे कहा :

"रातको तुम अपना लट्ठ लेकर मेरी कुटियाके द्वारपर ही रहा करोगे। आधी रातके बाद कुछ भूत-प्रेत यहाँ मेरी समाधिमें विघ्न करनेके लिए आते है। उन्हें दूर रखनेका काम तुम्हारा होगा। रातको इस पहरेके लिए तुम्हें कुछ अधिक जागना पड़ेगा, इसलिए दिनके भोजनमें तुम्हें कुछ कमी करनी पड़ेगी।"

"कुटियाके द्वारपर तो महाराज, मै आपके बिना कहे भी लट्ठ लेकर पहरा दूँगा; और आधी रात नही, पूरी रात पहरा दूँगा चाहे उस जागरनके लिए मुझे कुछ कम नहीं, आधा-चौथाया पेट भरकर ही रहना पड़े। भूतोंसे अधिक तो मुझे आपका पहरा देना है। किसी रात चुपचाप कुटियासे निकलकर आप चले गये तो मेरे हाथसे तो सारा मामला ही निकल जायगा।"

महात्माजी मुसकराये और तीनो साधक अपने-अपने कामपर लग गये। वर्षोंतक यह क्रम चलता रहा।

एकदिन सुबह जागनेपर पहले और दूसरे जाटने देखा कि महात्माजीके आसनपर वह तीसरा जाट विराजमान है और महात्माजीका पता नहीं है। इस तीसरे जाटके मुखके चारों ओर एक अभूतपूर्व तेजकी किरणें-सी फैल रही हैं। उसने इन दोनों जाटोंको सम्बोधित करते हुए कहा :

"मेरे प्यारे बेटो, आत्म-ज्ञानकी सिद्धि पुरुषार्थसे ही होती है, किसीसे भीख मांगने या अविचार-पूर्ण मनमानी सेवा करनेसे नहीं। कोई किसीको कोई वस्तु दे नहीं सकता। प्रत्येक व्यक्ति अपने पुरुषार्थसे ही सब कुछ पा सकता है। महात्माजीने मेरे विवेक-हीन पुरुषार्थको बाहरी दुष्ट-पुंजिये धनिकोंकी ओरसे मोड़कर मेरे विवेक-पूर्ण पुरुषार्थको मेरे भीतरके ही महा-धनिकोंको लूटनेकी ओर प्रवृत्त किया। मैंने अपने भीतरके शत्रुओंको पराजित किया और भीतरके ही खजानेको लूटा। मुझे आत्म-ज्ञानकी प्राप्ति हो गई। इस आश्रममें रहकर अधिकारी जिज्ञासुओंका पथ-प्रदर्शन करनेका काम मुझे सौंपकर महात्माजी दूसरे, उससे भी बड़े कामके लिए अपने अगले कार्य-क्षेत्रको चले गये हैं।"

इस कथाके समर्थनमें मेरे कथा-गुरुने ईसाई सन्तोंकी उस उक्तिकी ओर संकेत किया है जिसमें उन्होंने कहा है कि स्वर्गका राज्य बल-प्रयोगसे ही प्राप्त किया जा सकता है।[1]

१ "The Kingdom of heaven is taken by force" say the Christian Mystics.

आत्म-परीक्षा

किसी आश्रममें एक महात्माजी अपने एक शिष्यके साथ रहते थे। अनेक प्रारम्भिक साधनाओंमें पारङ्गत कराकर महात्माजी उस शिष्य को पहली महादीक्षाके लिए तैयार कर रहे थे।

एक दिन एक अत्यन्त निर्धन मनुष्य उस आश्रममें आया। महात्माजीने उसपर दया करके पत्थरकी एक बटिया भीतरसे निकाली और उस आदमीके एक हाथमें पड़े हुए लोहेके कड़ेसे छुआ दी। वह कड़ा तुरन्त ही सोनेका हो गया। उस आदमीने कृतज्ञ भावसे महात्माजीको ग्यारह बार दण्डवत्-प्रणाम किया। फिर वह चला गया।

शिष्यने पहली बार ही यह चमत्कार देखा था। उसकी जिज्ञासापर गुरुने बताया कि वह पारसकी सिद्धि-बटिका है और उससे संसारका सारा लोहा सोनेमें बदला जा सकता है।

शिष्यको सारी रात नींद नहीं आयी। उसने सोचा कि यदि वह पारस उसे मिल जाय तो वह सारे संसारका मालिक बन सकता है; राज-पाट, यश-ऐश्वर्य और संसारके सभी भोग उसकी मुट्ठीमें आ सकते हैं। धनसे धर्म और धर्मसे दीक्षा और दीक्षासे मुक्ति—दीक्षा और मुक्तिका यह भी तो एक मार्ग है।

अगली सुबह उसने अपने मनकी सारी बात गुरुसे कह दी।

गुरुने कहा—'निस्संदेह बेटा, यह पारस एक दिन तुम्हें प्राप्त होना ही चाहिए। लेकिन उसके पहले बीचकी दो-तीन साधनाएँ तुम्हें और साधकर पहली महादीक्षा प्राप्त कर लेनी चाहिए। उसके पश्चात् तुम्हे संसारमे जाकर भले और बुरे मनुष्यकी पहचान प्राप्त करनी पड़ेगी। और वह पहचान आते ही पारससिद्धि तुम्हें तुरन्त ही प्राप्त हो जायगी और तुम उस सिद्धिके दुरुपयोगसे बचकर उसका सदुपयोग ही करोगे।'

'तो गुरुदेव, क्या यह सम्भव नहीं कि मैं पहले संसारमें जाकर मनुष्यकी पहचान प्राप्त कर लूँ और उसके पश्चात् महादीक्षाकी शेष साधनाएँ पूरी करूँ ? महादीक्षाका आयोजन इस वैशाख-पूर्णिमाको नहीं तो अगले वर्षकी वैशाख पूर्णिमाको हो जायगा।' शिष्यने कहा।

'सम्भव क्यों नहीं; चलो पहले यही सही' गुरुने कहा और उसे साथ लेकर वे देशाटनको निकल पड़े।

चलते-चलते एक नगरमें सन्ध्या-समय वे एक बड़े दानी सेठके अतिथि हुए। रातको ही भोजनादिसे निवृत्त होकर महात्माजीने उस बनियेसे कहा कि वह अपने घरका सारा लोहा एकत्र करे और वे प्रातःकाल उसे पारस छुलाकर सोना देंगे।

सेठने अपने नौकरोंको लगाकर पड़ोसके एक लुहारके घरका सारा लोहा चोरी करा लिया और अपने घरके लोहेके साथ महात्माजीके सामने रख दिया। महात्माजीने अगली सुबह उसे पारस छुलाकर सोना कर दिया और पडोसी लुहारके लिए भी कुछ आदेश देकर उन्होंने आगेकी राह ली। राहमें उन्होंने अपने शिष्यको उस बनियेकी चोरीका भी समाचार बता दिया।

अगली साँझ एक दूसरे नगरमें उसी प्रकार वे एक गरीब सद्-गृहस्थके अतिथि हुए। वह और उसकी धर्मपत्नी अपने धर्मभाव और सच्चरित्रताके लिए बहुत प्रसिद्ध थे। महात्माजीने उनका भी वैसा ही उपकार करनेका प्रस्ताव रखते हुए एक शर्त यह रक्खी कि उसे रातभरके लिए अपनी पत्नी सेवाके लिए उन्हें देनी होगी। गृहस्थ बड़े कुत्सित सन्देह और असमंजसमें पड गया और अन्तमें सोच-विचारकर उसने निश्चय किया कि एक रातके लिए अपनी पत्नी उन्हें दे देगा और फिर दुबारा उसे ग्रहण न कर वह पापसे बचा रहेगा। वह प्राप्त सोनेके धनसे अपनी परित्यक्ता पत्नीके भरण-पोषणका भी भार उठाता रहेगा और अपने लिए दूसरी पत्नी

ब्याह लेगा। गृहस्थने अपनी पत्नीको राजीकर महात्माजीके पास भेज दिया। महात्माजीने उसी समय उस गृहस्थके घरके लोहेको सोनेमें बदलकर बाहरकी राह ली और नगरके बाहरी मन्दिरमे आकर रात काटी। गृहस्थकी पत्नी उसीके घर रही।

तीसरी रात उन्होने तीसरे नगरमें एक लोक-प्रसिद्ध विद्वान्‌के घर बितायी। महात्माजीकी माँगपर, उनकी स्वर्ण भेंटके बदले उस विद्वान्‌ने स्वीकार लिया कि वह अपने रचित सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थपरसे अपना नाम हटाकर यह घोषित कर देगा कि यह ग्रन्थ उसका नहीं, बल्कि उन महात्माजीका ही रचा हुआ है। महात्माजीने अपनी सोनेकी भेंटसे उस विद्वान्‌की कीर्तिका क्रय कर लिया और उसे फिर उसीको लौटाकर आगेकी राह ली।

चौथी रात वे राजाके अतिथि हुए। उन दिनों राजाके लड़केके पड़ोसी राज्यकी राजकन्यासे विवाहकी तैयारियाँ धूम-धामसे हो रही थीं। महात्माजीने राजासे कहा :

'यदि तुम देवीके समक्ष बलिदान करनेके लिए मुझे किसीका एक नवजात बालक दिला दो तो मैं तुम्हारे रथ-गृहके सभी रथ और हाथी-घोड़ोंके साज-सामान अपनी पारस-सिद्धि द्वारा सोनेके बना दूँगा।'

राजाने तुरन्त महलोंके पीछे रहनेवाली एक अनाथ विधवाका—जिसके पतिको मरे महीना भी पूरा नही हुआ था—नवजात बालक उठवाकर महात्माजीकी भेंट कर दिया। महात्माजी अपना वचन पूरा करके उस बालकको लेकर चल दिये और उसे उसकी रोती-बिलखती माँको सौंपकर आगे बढ़े।

इसी प्रकार सौ रातोंतक गुरु-शिष्यने सौ विभिन्न व्यक्तियोंका परीक्षण किया। कञ्चनके लोभसे अछूता कोई भी व्यक्ति उन्हे नहीं मिला, जो उसके लिए बड़े-से-बड़ा दुष्कर्म करनेके लिए तैयार न हो। कोई कमपर गिरा तो कोई अधिकपर; परन्तु इस लोभके आगे विचलित सभी हुए।

आश्रमको लौटकर गुरुने शिष्यसे पूछा : 'देखा बेटा ! तुमने मनुष्यकी पहचान कर ली न ? बताओ, मनुष्य कैसे हैं ?'

'मनुष्य सभी पापी, धूर्त, नीच और मूर्ख हैं। स्वर्णके लिए वे अपने धर्म, यश, सुख-शान्ति और सर्वस्वको ही निछावर करनेके लिये तैयार हैं। ऊपरसे कोई कैसा भी हो, भीतरसे देखनेपर सभी लोभी और निकृष्ट हैं।' शिष्यने कहा।

'तुम्हारा निष्कर्ष सर्वथा यथार्थ है' गुरुने कहा, 'मनुष्य अपनी प्रकृतिसे सचमुच नीचातिनीच है और अवसर आनेपर वह लोभके वशीभूत होकर सभी कुछ कर सकता है। मनुष्यकी कहीं प्रकट और कहीं छिपी इस प्रकृतिकी जानकारी और इससे सतर्क रहनेकी सावधानी साधक द्वारा लोक-कल्याणके लिए आवश्यक है। इससे क्षमा और सहिष्णुताका उदय होता है। अब इस पारस-सिद्धिको प्राप्त करनेके लिए तुम्हें केवल एक प्रश्नका ठीक उत्तर और देना है। यदि वे सौ व्यक्ति भी यहाँ पर इस पारस-सिद्धिके सम्भावित अधिकारीके रूपमें तुम्हारे साथ खड़े कर दिये जायँ तो उनमें सबसे बड़ा अनधिकारी और सबसे छोटा अनधिकारी कौन होगा ?'

शिष्यने कुछ देर सोचकर कहा—'महाराज ! सबसे अधिक नीच और मूर्ख, अतः सबसे बड़ा अनधिकारी मैं राजाको कहूँगा, जिसने अपने पुत्रकी बारातको सजानेके लिए एक विधवाकी जीवन-आशाको ही समाप्त करने और मानव-हत्याके महापापको अपनानेका उपक्रम किया। और सबसे छोटा अनधिकारी मैं उस सेठको कहता हूँ जिसने पटौनके लुहारकी चोरी करायी।'

'नहीं पुत्र !' महात्माजीने कहा, 'सबसे बड़ी नीचता, मूर्खता और पापकी अभिव्यक्ति तो तुम्हारे ही द्वारा हुई है: क्योंकि तुमने सोनेके लिए अपनी महादीक्षाका तिरस्कार किया है। औरोंने तो केवल साधारण नैतिक आचारों, हृदयकी सहज भावनाओं और लौकिक यश-कीर्तिका ही सोनेके लिए त्याग किया है: पर तुमने उसके लिए अपनी महादीक्षासे होनेवाले

संसारके महाकल्याणकी अवहेलना की है। यदि तुम मनुष्यकी, और इस प्रकार इन एक सौ एक मनुष्योंमें अपने स्थानकी ठीक पहचान कर लेते तो निःसंदेह इसी समय इस पारस-सिद्धिके अधिकारी हो जाते। अब तुम्हारे सामने केवल दो मार्ग है—या तो यहीं रहकर अपनी प्रारम्भिक साधनाओं का फिरसे अभ्यास करके उन्हें पुनः प्राप्त करो और अपने खोये हुए विवेकको जगाओ या संसारमें जाकर एक साधारण गृहस्थका जीवन व्यतीत करो।'

पृष्ठ-द्वार

दो पड़ोसी राज्योंमें एक बार बड़ा भीषण युद्ध हुआ। फल स्वरूप हारे हुए राज्यकी बहुत-सी प्रजाको दूसरे राज्यके लोग बन्दी बनाकर अपने देशमें ले गये और उनसे दासोंका काम लेने लगे। कुछ समय बाद दास-वर्गके ये लोग अपने विजेताओंमें घुल-मिल गये और विवाह-व्यवहार आदिमें कोई भेद-भाव न रह जाने के कारण ये धीरे-धीरे उनके समकक्ष उसी राज्यकी प्रजा बन गये।

इस प्रकार बहुत समय बीत गया। पहले राज्यके राजाके मनमें—यह हारे हुए राजाके बाद उसके वंशमें सातवाँ उत्तराधिकारी था—विचार आया कि उसे पड़ोसी राज्य द्वारा छीने हुए अपने स्वजनोंको वापस अपने देशमें ले लेना चाहिए। उसके देशकी जन-संख्या बहुत गिरी थी और निस्संदेह उसके देश-वासी पड़ोसी राज्य-वासियोंकी अपेक्षा बहुत ऊँची जातिके भी थे। इन दो कारणोंसे उसने तुरन्त ही आवश्यक कार्यवाही का निश्चय कर लिया। इस समय तक उस दूसरे देशमें बहुत कुछ अराजकता फैल गई थी। राजवंशको नष्ट कर लोगोंने अपने-अपने दल बना लिये थे और सारा देश बीसियों लुटेरे सरदारोंमें बँट गया था।

इस कामके लिए राजाने अपने देशकी सरहद पर एक बहुत बड़ा मजबूत किला बनवाया और अपने एक सेनापतिको एक बड़ी सेना देकर उस देशको जीतनेके लिए भेज दिया।

सेनापतिने बड़ी वीरता और कौशलके साथ उस देशके लड़ाकुओंसे युद्ध किया। इन लड़ाकुओंमें दोनों देशोंके लोग सम्मिलित थे और पहले देशके लोग भी अब अपने आपको दूसरे देशके निवासी ही मानते थे। सेनापतिने सात हजार लड़ाकुओंको अपने किलेमें बन्दी कर लिया। उस किलेमें इससे अधिक बन्दियोंके लिए स्थान नहीं था। बन्दियोंकी इतनी संख्या हो जानेपर सेनापतिने उन सबको एकत्र कर उनसे कहा :

"आपमेंसे कुछ लोग मेरे ही उच्च वंशके वंशज है। कुछ शताब्दी पहले इस देशका एक राजा उनके पितामहोंको युद्धमें हरा कर उन्हे बन्दी बनाकर यहाँ ले आया था। अपने वर्तमान राजाकी आज्ञासे मैने यह युद्ध इसीलिए किया है कि आपमेंसे जो लोग मेरे वंश और जातिके वंशज हो उन्हें आदर-सत्कार सहित अपने देशमें चलकर वहाँ बसनेका अवसर मिले। मेरे देशमें शान्ति और समृद्धिका राज्य है और वहाँ प्रत्येक व्यक्ति सुखी और स्वतन्त्र है। मैं अपने स्वजनोंको इस अशिक्षित देशके आतंककारी सरदारोंके बन्धनसे छुड़ानेके लिए यहाँ आया हूँ और आपको निमंत्रण देता हूँ कि आपमेंसे जो अपने पूर्वजोंको मेरे देशसे आया हुआ जानते हों वे मेरे साथ मेरे देशको लौट चलें।"

"मै जानता हूं" उन बन्दियोंमे से एक प्रमुख व्यक्तिने कहा, "मैं जानता हूँ कि मेरे पूर्वज आपके देशसे ही आये थे और इस देशमें जितने भी आपके देश और जातिके लोग है उनमेसे बहुतेरे अपनी इस ऐतिहासिक वास्तविकताको जानते है। लेकिन इससे क्या होता है? हम अब इसी देशके निवासी है, यहीं हमारे परिवार और कारबार है और यहीं हम संतुष्ट है। आपके इस युद्धको हम सर्वथा अनुचित और अन्यायपूर्ण मानते हैं और आपका घोर विरोध करते हैं। उस देशके निवासियोंकी स्वतन्त्रतामें हमारा कोई विश्वास नहीं है जहाँ ले चलनेके लिए आपने हमें बन्दी बनाया है।"

सेनापतिके बहुत समझाने-बुझानेपर उन सात हजारमें से केवल सात व्यक्ति ऐसे निकले जो अपने परिवारो सहित उस देशको वापस लौट चलनेके लिए तैयार हुए। इस परिणामको तनिक भी संतोषजनक न पाकर सेनापति असमंजसमे पड गया। अन्तमें वह उन सातो हजार बन्दियोंको बन्दी रूपमें ही लेकर राजधानीमें जा पहुँचा। वहाँ जाँच करनेपर पता लगा कि उनमेंसे केवल सत्तर व्यक्ति ही उनके अपने स्वजन देश-बान्धव और

शेष ६६३० उस दूसरे देशके निवासी थे। राजाने इन सभी परदेशी वन्दियोंको छोड़ दिया और उसके स्वदेशी स्वजन उस देशमें बस गये।

राजाने सेनापतिको उसके परिश्रमके लिए धन्यवाद दिया, पर उसके कामको वहुत कम संतोषजनक बताया। इसके पश्चात् तुरन्त ही उसने एक दूसरे सेनापतिको उतनी ही सेना देकर उसी प्रकार भेजा। इसने भी उसी शैलीपर काम किया—अपने स्वजनोंको वापस लेनेके लिए पहले उस देश वालोंसे युद्ध करके उन्हें वन्दी बनाना और फिर उनमेंसे अपने स्वजातियोंकी छाँट करना। वहाँकी परिस्थितिके अनुसार इस कामका यही एक मार्ग था। यह दूसरा सेनापति भी सात हजार लड़ाकुओंको वन्दी बनाकर लाया और उनमेंसे ७७ व्यक्ति इस देशके वंशज निकले। शेष अपने देशको लौटा दिये गये।

यह क्रम चलता ही रहा और तीसरे सेनापतिके सात हजार वन्दियोंमें से—उस किलेमें सात हजार वन्दी ही आ सकते थे, यह स्मरणीय है—उस देशके वंशज ८४ निकले। चौथे, पाँचवें और छठे सेनापतियोंके सात हजार वन्दियोंमेंसे क्रमशः केवल ९१,९५ और १०५ वन्दी ही उस देशके स्वजन निकले।

सातवें सेनापतिको उस देशकी ओर विदा करते हुए राजाने उसे आवश्यक आदेश दिये। सेनापतिने उत्तरमें कहा कि वह अपने देशके समस्त स्वजनोंको वापस लेकर ही लौटेगा।

इस सेनापतिको युद्धमें दूसरे सेनापतियोंसे सतगुना समय लगा। जब वह लौटा तो उसके साथ लाये हुए विजितोंकी संख्या पिछले सेनापतियोंके वन्दियोंसे कुछ ही कम थी। लेकिन वे वन्दी-रूपमें नहीं, स्वतन्त्र नागरिकके रूपमें राजधानीमें लाये गये थे; वे सभी इसी देशके वंशज थे।

इस सेनापतिने राजदरबारमें पाये हुये अपने अति-विशेष सम्मानका उत्तर देते हुए अपनी सम्पूर्ण सफलताका रहस्योद्घाटन इन शब्दोंमें किया:

"मैंने उस किलेके पृष्ट-भागकी दीवार तोड़कर उसमें एक छोटा-सा दरवाजा बना दिया था और हर संध्याको अपने बन्दियों को पूरी बात बताकर उनसे कह देता था कि उनमेसे जो मेरे देश-जन न हो या अपने देशको वापस न लौटना चाहते हो वे उस पिछले द्वारसे किलेके बाहर जा सकते है, और जो मेरे देश-जन हों और मेरे साथ लौटना चाहते हो वे युद्धके कुछ दिनोतक स्वतन्त्रभावसे उस क़िलेको अपना घर मानकर उसमें रह सकते है। मेरे इस प्रबन्धसे प्रतिदिन बननेवाले एक सहस्र बन्दियोमेंसे दस-बारहको छोड़कर शेष सब उसी रात किलेसे बाहर निकल जाते थे। ४८ दिनमें इस प्रकार पॉच सौ के लगभग स्वजन किलेमें एकत्र हो गये थे और ४९ वे दिन बिना युद्धके ही सारे देशके हमारे देश-जन अपने आप किलेमे आकर एकत्र हो गये और, जैसा कि आप देख रहे है, इन सबकी ठीक संख्या ६४७५ है।"

मेरे कथागुरुका कहना है कि अपने स्वजातीय देशजनोंको परदेश और परराज्यसे वापस लानेके लिए किलेमें ही नही; मनुष्यके सजातीय सहज गुणों और सत्परिस्थियोंको भी वापस पानेके लिए उसके हृदयमें भी एक पृष्ठ-द्वारकी आवश्यकता है, क्योकि स्वजनो और स्वगुणों दोनोंमेंसे किसीको भी बलात्कारपूर्वक बाँधकर प्राप्त नही किया जा सकता !

दहेज़

एक ऋषिराजके आश्रमके पास एक नवयुवा हिरनी रहती थी। वह अत्यन्त रूपवती थी और उसके नेत्र मानव-सुन्दरियोंकी भाँति सुन्दर और भाव-तरल थे। आश्रमके संसर्गसे उसके हृदयमें धार्मिक भावनाएँ भी विशेष रूपसे जाग उठी थीं।

एक बार धर्म-भावनाके विशेष उद्रेकके कारण उसने निश्चय किया कि आगामी एकादशीके दिन ही प्राण त्यागकर मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए। इस पाप-मय संसारमें अधिक दिन टिकना उसे बहुत बुरा लगने लगा था। अगली एकादशीके दिन वह सवेरे ही प्राण-त्यागका संकल्प करके वनमें निकल पड़ी। कुछ देर बाद उसे तीर-कमान धारण किये एक बहेलिया आता हुआ दीख पड़ा।

इस स्वस्थ हिरनीको देखकर बहेलियेके मुँहमें पानी भर आया। उसने सोचा कि यह हिरनी उसके तीरका निशाना बन सके तो उसे आज स्वादिष्टतम और प्रचुरतम मांस मिल सकता है। हिरनीको अपनी ओर ही आता देख वह घात लगाकर एक झाड़ीके पीछे छिप गया।

हिरनी बहेलियेके पास जा पहुँची और अपनी आँखोंमें मधुरतम अनुरोध भरकर बोली :

"हे वधिकराज ! मैं आज एकादशीके दिन प्राण-त्याग करना चाहती हूँ। मैंने सुना है कि एकादशीके दिन प्राण-त्याग करनेसे मुक्तिकी प्राप्ति होती है। आप अपने बाणसे मेरा वध करनेकी कृपा कीजिए। मैं आपकी बहुत ही अनुगृहीत हूँगी।"

वधिक यह सुनकर मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ, किन्तु हिरनीकी ओरसे ही इस प्रस्तावके आनेके कारण उसके मनमें एक और लालच उठ खड़ा हुआ। उसने सोचा कि हिरनीका मांस तो उसे प्राप्त हो ही

रहा है, उसके साथ कुछ और भी दक्षिणा मिल सके तो उसे क्यो छोड़ा जाय। उसने हिरनीसे कहा :

"हे तिय-नयनी! तुम्हारी मुक्तिमे सहायक होना मुझे सहर्ष स्वीकार होता, पर बाधा यह है कि मैंने पशुओंके वधका काम त्याग दिया है, क्योंकि उससे पाप लगता है। धनुष-बाण मैं केवल हिंसक पशुओंसे वन-चारियोकी रक्षाके लिए धारण करता हूँ। फिर भी तुम्हारी मुक्तिके लिए मै यह पाप अपने सिरपर उठानेके लिए तैयार हूँ, यदि तुम इसके बदले मुझे कुछ विशेष दक्षिणा दे सकती हो!"

हिरनी सोचमें पड़ गई। अपने स्वादिष्ट मांस और सुन्दर चर्मके अतिरिक्त उसके पास देनेके लिए और कोई वस्तु नहीं थी। उसने अपनी विवशताकी बात कह सुनाई। तब वधिकने ही उसे सुझाया :

"आश्रमके सरोवरमें आज जो राजकुलकी कन्याएँ स्नान करने जायँगी उनमेंसे किसीका तटपर रक्खा हुआ रत्न-हार तुम सुगमता-पूर्वक अपने मुखमे दबाकर उठा ला सकती हो। यदि यही तुम करो तो मैं तुम्हारा काम करनेके लिए प्रस्तुत हो सकता हूँ।"

एक टीलेके पीछे छिपा हुआ सियार आरम्भसे ही इन दोनोंकी बातें सुन रहा था। बहेलियेका यह सुझाव सुनते ही वह तुरन्त सामने आ गया और बोला :

"हे हरिणसुन्दरी! वधिकराजकी यह तुम पर सचमुच बड़ी कृपा है जो इतने कम पारिश्रमिक पर वह तुम्हारी मुक्तिका आयोजन करने के लिए उद्यत है। पर मै ऐसा प्रबन्ध कर सकता हूँ कि तुम उन्हें इस कृपाके बदले सहस्र रत्नोके मूल्यकी एक सर्प-मणि दे सको। मेरे एक मित्र सर्पके पास वैसी मणि है और वन-बन्धुताके नाते वह सहर्ष तुम्हारे लिए उसे इन वधिक-शिरोमणिको दे देगा।"

इतना कहकर वह सियार वधिक और हिरणीको साथ लेकर एक कन्दराके द्वारपर पहुँचा। वहाँ एक बड़ा सर्प बैठा वायु-सेवनकर रहा था और उसका फन मणिके प्रकाशसे जगमगा रहा था। सियारने सर्पके पास जाकर कुछ बात-चीत की और एक ओरको मुँह घुमाकर जोरकी एक पुकार लगाई। उसे सुनते ही आस-पाससे आठ-दस और सियार निकल-कर वहाँ आ गये।

सियारके आदेशानुसार वधिकने अपना तीरोंसे भरा तर्कस उस सर्पके पास रक्षार्थ रख दिया और कमानपर एक तीर चढ़ाकर हिरनीके वधके लिए प्रस्तुत हो गया। सियारके संकेतपर वधिकने तीर चलाया और हिरनी का उसीसे काम-तमाम हो गया। उसके प्राण निकलते ही सियारने वधिक से कहा :

"हे वधिकराज! आप वधिक-शिरोमणि ही नहीं मूर्खशिरोमणि भी हैं। जब इस हिरनीने अपने आपको आपके सामने उपस्थित किया था तभी पूरी कृतज्ञताके साथ आपको इसका वध करके इसके मांस और चर्मका लाभ करना चाहिए था और व्यर्थके अनुचित लोभमें न पड़ना चाहिए था। अब इस मृगीका स्वादिष्ट मांस मैं और मेरे दूसरे उपस्थित जाति-बन्धु मिलकर खायेंगे और मेरा मित्र सर्प आपके तरकसको अपने फनकी छायामें रक्खेगा जिससे आप उसे लेकर अपने तीरोंसे हमारा कोई अनिष्ट न कर सकें। जब तक हम अपना भोजन-कार्य पूरा करें तब तक आप अपने प्राण लेकर यहाँसे जितनी दूर जा सकें जा सकते हैं, नहीं तो इस मृगीके मांससे निवृत्त होकर हम लोग आपके मांसके भी रसा-स्वादन का प्रयत्न करेंगे, क्योंकि इस समय हम लोग दस-ग्यारह हैं और आप अकेले और निरस्त्र हैं!"

एकादशीके दिन इस प्रकार प्राण-त्याग करनेसे उस मृगीको मुक्तिकी प्राप्ति हुई या नहीं; इसका निर्णय करना, मेरे कथागुरुकी रायमें, मेरा या आपका काम नहीं है। इस कथाकी पूरी सार्थकता क्या है, यह कहना

कुछ कठिन जान पड़ता है पर प्रसङ्गवश एक बात यह अवश्य कही जा सकती है कि आजके मानव-समाजमें नारीके जीवन-सङ्ग (विवाह) का परम ग्राहक जो पुरुष-वर्ग उस 'सङ्ग' के साथ-साथ कुछ आर्थिक 'दहेज' की भी माँग करता है वह उस मूर्ख और लोभी बहेलियेका ही अनुकरण करता है और उसकी इस कथासे कुछ विचार ले सकता है।

स्वर्ग और उपस्वर्ग

संसारमें अपना काम पूरा करके जब मैं स्वर्गके द्वार पर पहुँचा तो देखा, मेरा प्रतिद्वन्द्वी भी उसी समय वहाँ आ पहुँचा था।

द्वारपालने हमें रोका। "तुम दोनोंमें से एक ही व्यक्ति, जो दूसरे से श्रेष्ठ हो, स्वर्गके राज्यमें प्रविष्ट हो सकता है" उसने कहा।

द्वारपालके आदेश पर हम दोनोंने अपने-अपने गुणों और कार्योंका बखान किया। मेरे प्रतिद्वन्द्वीके गुण और कार्य मुझसे कहीं अधिक थे और संसारमें अधिकाश अवसरों पर मुझे उसके हाथों हार ही खानी पडी थी। लेकिन जिस ढंगसे मैंने अपने गुणोंका वर्णन किया उससे द्वारपाल हम दोनोंके बीच कोई निश्चित तुलना नहीं कर सका।

"तुम दोनों ही आगे जा सकते हो। तुम्हारा निर्णय अगले द्वार पर ही हो सकेगा।" उसने हम दोनोंको मार्ग देते हुए कहा।

अगले द्वार पर उसके रक्षकके सामने हम दोनोंको फिर अपने गुणों और कार्योंको उसी प्रकार दोहराना पड़ा।

"क्या तुम अपने किसी ऐसे गुण और तत्सम्बन्धी कार्यका उल्लेख कर सकते हो जिसमें तुम निश्चित रूपसे अपने आपको अपने प्रतिद्वन्द्वीसे अधिक समझते हो?" उसने हम दोनोंसे पूछा।

"लोक-सेवाकी अटूट लगन मेरा वह गुण है जिसमें निश्चित रूपसे मैं अपने प्रतिद्वन्द्वीसे अधिक हूँ। मैंने लोक-सेवाके अधिकसे अधिक अवसरों को हस्तगत करने का प्रयत्न किया है और इसीलिए अपने प्रतिद्वन्द्वीको अधिकाश अवसरों पर हरा कर उसमें अधिकतर सफलता भी पाई है।" मेरे प्रतिद्वन्द्वीने कहा।

"सभीके प्रति निष्पक्ष और कभी न हारने वाली श्रद्धा मेरा वह गुण है जिसमें मैं निश्चित रूपसे अपने प्रतिद्वन्द्वीसे अधिक हूँ। अपने प्रतिद्वन्द

के सामने अधिकाश बार पराजित होने पर भी मैंने सदैव, स्वजनों और पर-जनोके सामने भी, उसके गुणोकी सराहना ही की है। जितनी श्रद्धा मै उस पर कर सकता हूँ उतनी वह मुझ पर कभी नही कर सकता।" मैंने कहा।

मेरी यह बात इतनी स्पष्ट और लोक-विदित थी कि इस पर मेरे प्रतिद्वन्दीको कोई आपत्ति नहीं हो सकती थी; जब कि उसकी बात पर आगे भी कुछ छानबीनकी गुंजाइश थी।

इस द्वारपालने एक एक प्रवेश-पत्र हम दोनोंको देते हुए कहा :

"निस्संदेह तुम (मुझे लक्ष्य कर उसने कहा) अपने प्रतिद्वन्दीसे श्रेष्ठ हो, और जिस गुणमे तुम उससे श्रेष्ठ हो उसमे तुम्हे पराजित करने की ओर तुम्हारे प्रतिद्वन्दीका ध्यान भी नहीं है, इसलिए तुम्हें स्वर्गका 'पास' दिया जाता है; और तुम्हें (मेरे प्रतिद्वन्दीको लक्ष्य कर उसने कहा) उपस्वर्गका। स्वर्गलोकमें इस समय ऐसे लोगोके लिए स्थान नही है जिन्होने लोक-सेवाके बड़े-बड़े कार्य किये है, बल्कि वहाँ अभी ऐसे लोगोकी आवश्यकता है जो दुबारा संसारमे लौट कर लोक-सेवाके बड़े कार्य करेगे। स्वर्गके बगलमें ही, उसीकी नकलका यह उपस्वर्ग अभी कुछ समयसे ही उन महाजनोके संतोषके लिए बसाया गया है जो अपने प्रतिद्वन्दियोंसे किसी भी बातमे पूर्णतया पराजित हो चुके है। तीसरे द्वारका द्वारपाल तुम दोनोको अपने-अपने गन्तव्य स्थानका मार्ग बता देगा।"

कीर्ति-रक्षा

बात मेरे पिछले जन्मकी है, जबकि मैं संसारके एक नामी देशका लोक-प्रसिद्ध योद्धा था। मेरे घोड़ेने विजय यात्राओंके क्रममें सारे संसारकी परिक्रमा पूरी कर ली थी। मेरे देशवालोंको मुझपर बड़ा गर्व था।

मेरे देश-वासी अपने शूर-जनोंकी कीर्ति-रक्षामें बड़े तत्पर थे। मेरे पश्चात् मेरी कीर्ति-रक्षाके लिए भी उन्होंने एक बहुत ही भव्य कीर्ति-स्तूप बनानेका निश्चय कर लिया था।

मृत्युके पश्चात् जब मैं स्वर्गमें पहुँचा तो वहाँ भी मुझे यह जाननेकी बड़ी लालसा थी कि मेरा कीर्ति-स्तम्भ कैसा बन रहा है और मेरे प्रति लोगोंकी श्रद्धा किस रूपमें निखर रही है।

मैंने अपने साथी एक देवदूतसे अपनी यह लालसा प्रकट कर दी। उसने तुरन्त अपना आकाश-यान मँगाया और मुझे साथ बिठाकर पृथ्वीके आकाशपर उतर आया।

"तुमने संसारमें अनेक जन्मोंमें बड़ी-बड़ी कीर्तियाँ कमाई हैं। चलो, पहले मैं तुम्हें तुम्हारे भूलोक-जीवनका सबसे पहला कीर्ति-स्तम्भ दिखाऊँगा।" उसने मार्गमें मुझसे कहा।

निर्जन वनके एक टूटे, झाड़-झङ्खाड़से घिरे, सूखे कुएँके पास उसने अपना यान उतारा और उसके भीतर झाँकनेका आदेश देते हुए मुझसे कहा :

"यह देखो, कुएँके बीचों-बीच सूखी हुई मिट्टीमें वह जो बाँसकी-सी दो हाथ ऊँची खपची गड़ी दीखती है वही तुम्हारा कीर्ति-स्तम्भ है। उस जन्ममें तुम इस कुएँमें रहने वाले मेढकोंके राजा थे और तुम्हारी कीर्ति-रक्षा के लिए उन्होंने यह स्तम्भ खड़ा किया था।"

अपने देव-मित्रकी सहायतासे मैंने पढ़ा, मेढकोंकी भाषामें उस ब्रॉस की-सी खपच्ची पर लिखा था :

"हमारे कुलका सबसे अधिक शक्तिशाली सदस्य, जिसे इस कुएँके भीतर सबसे ऊँची, तीन फीटकी, छलाँग भर सकने के उपलक्ष्यमें हमने अपना राजा निर्वाचित किया था। उसकी कीर्ति-रक्षाके लिए हम लोग इस कुएँके भीतर आई हुई इस सबसे अधिक आश्चर्यजनक धातुका यह कीर्ति-स्तम्भ खड़ा करते हैं।"

मैंने अपने मित्रसे तुरंत ही वापस अपने स्वर्ग-निवासको लौट चलने का आग्रह करते हुए कहा :

"मुझे कीर्ति-स्तम्भोंकी आवश्यकता नहीं है। ये मेरी नई महानताकी नहीं, मेरी पिछली क्षुद्रताओंका ही लेखा रख सकते हैं।"

स्वर्गसे पृथ्वी पर इस जन्ममें लौटने पर अब भी मुझे उस घटनाकी याद बनी हुई है। इसीलिए जब कभी मेरी या मेरे किसी स्वजनकी कीर्ति-रक्षा की बात लोग चलाते हैं तो मैं सावधान हो जाता हूँ।

साखका सौदा

किसी नगरमें बाहरसे आकर एक व्यापारी बस गया।

नगरका जो पहला सार्वजनिक कार्य उसके सामने आया उसमें उसने नगरके सभी सेठोंसे बढ़कर दस सहस्र मुद्राओंका दान दिया।

नगर भरमें उसकी चर्चा फैल गई। लोगोंको मालूम हो गया कि वह एक बड़ा दानी सेठ है और बाहरके नगरोंमें दूर-दूर तक उसका व्यापार फैला हुआ है।

अगले महीने एक आदमीके हाथ उसने नगरके एक सेठके नाम परचा लिखकर भेजा: 'मेरे इस आदमीको पाँच सहस्र मुद्राएँ दे दो। साथ ही यह भी सूचित करो कि ये तुम्हें कब तक वापस मिल जानी चाहिएँ।'

सेठने पाँच सहस्र मुद्राएँ उस व्यक्तिको दे दीं और कह दिया कि तीन महीने पूरे होने पर, या जब भी उसे सुविधा हो वह ये मुद्राएँ वापस कर सकता है।

तीन महीने पूरे होने के एक दिन पहले इस व्यापारीका दूसरा आदमी एक दूसरे सेठके पास पहुँचा। इस दूसरे सेठसे इस व्यापारीने उसी प्रकार दस सहस्र मुद्राओंकी माँग की। इसने भी वह माँग सहर्ष पूरी कर दी। पहले सेठको उसकी रक़म उचित ब्याज समेत ठीक निश्चित दिन पर लौट गई।

दूसरे सेठकी रकमकी अवधि पूरी होनेके एक सप्ताह पहले उसने उसी प्रकार तीसरे सेठसे बीस सहस्र मुद्राएँ मँगा कर यह ऋण भी ब्याज समेत चुका दिया।

इस व्यापारीके लेन-देनका ऐसा ही क्रम चल निकला। पिछले ऋणसे यथेष्ट अधिक धन अगली जगहसे उधार लेकर वह पिछला ऋण ठीक समय पर चुका देता और कभी-कभी, ऋणदाताकी आवश्यकता पर, वादेसे

पहले भी चुकाने में न चूकता। वह बड़े ठाठ-बाटसे रहता, उसके नौकरों का वेतन हर महीने अग्रिम बँट जाता, सार्व-जनिक कार्यों तथा दीन-दुखियों की सहायतामे उसका हाथ सबसे आगे रहता। नगरके व्यवसायियोपर ही नहीं, सारी जनतापर भी उसका प्रभाव बहुत बढ़ गया; और सच तो यह है कि उसने दूसरे सेठोको वैसे सेवा-कार्योंमे अधिकसे अधिक हाथ लगाने की बहुत बड़ी प्रेरणा भी दी। उसकी सेवा, दानशीलता, बुद्धिमत्ता और ईमानदारीकी साख लोगोके हृदयोंमें जम गई। अपने प्रभाव द्वारा उसने अपने नगरके व्यवसायी वर्गका यथेष्ट हित-साधन भी किया। उसका यश दूर-दूर तक छा गया और उसकी साख बाहरके सेठोंमे भी हो गई।

इसी प्रकार जीवन-यात्रा करते वह वृद्ध हो गया। जब वह मृत्यु-शय्या पर जा पहुँचा तब देशके एक बड़े सेठके पास उसकी दस करोड़ की हुण्डी थी। उसने अपना वाहक भेजकर एक अन्य, देशके सबसे बड़े सेठको बुलवाया और उससे कहा :

"मै अपने नामकी साख तुम्हारे व्यवसायके हाथो सौपनेके लिए तैयार हूँ। तुम अपनी व्यवसाय-संस्थामे आजसे अपने नामके साथ मेरा नाम भी जोड़ सकते हो। इसके लिए मै तुमसे केवल ग्यारह करोड़ मुद्राएँ चाहता हूँ। मुझे विश्वास है कि मेरे नामके साथ जिस कोटिकी ईमानदारी और प्रतिष्ठा अभिन्न मानी जाती है, तुम्हारी संस्था उसका निर्वाह कर सकेगी।"

इस सेठने सहर्ष ग्यारह करोड़ मुद्राओंमें इस व्यापारीकी साख खरीद ली और उसके आदेशानुसार दस करोड़ पिछले ऋणदाताको लौटाकर शेष एक करोड़ पुरस्कार स्वरूप उसके कर्मचारियोंमे बाँटकर उन्हें छुट्टी दे दी।

उस व्यापारीके सम्बन्धमे आपकी सुनिश्चित, पहली या दूसरी राय क्या है?

मुक्ति

संसारमें अच्छेसे-अच्छे कर्म, जो कोई मनुष्य करता है, मैंने पृथ्वी लोकके अपने जीवनमें किये थे।

भूलोकके जीवनसे निवृत्त होकर जब मैं स्वर्गमें पहुँचा तो वहाँ मेरा बड़ा आदरपूर्ण सत्कार हुआ। कुछ समय पश्चात् स्वर्गके प्रधान अधिकारीने विनम्र भावसे मुझसे कहा: "कहिए, अब आपके विश्राम या अभीष्ट सुखके लिए किस प्रकारका आयोजन किया जाय?"

मैंने अपने स्वभाव-सिद्ध स्वरमें उनसे कहा:

"देखो भाई, मैंने भले कर्म स्वर्गलोकमें सुख भोगनेके लिए तो किये नहीं। स्वर्ग क्या, मुझे किसी ऊँचे-से-ऊँचे लोकके सुखोंकी भी चाह नहीं है। जीवनकी अन्तिम सार्थकता मायाके सभी प्रपञ्चोंसे दूर जिस मुक्तिकी अवस्थामें है, मैं उसे ही चाहता हूँ।"

देवता लोग असमञ्जसमें पड़ गये। उन्होंने कहा:

"हमें जीवनकी किसी ऐसी सार्थकताका पता नहीं है जो अन्तिम हो और मायाके प्रपञ्चोंसे दूर हो। 'मुक्ति' शब्द हमने मनुष्योंके मुखसे सुना अवश्य है लेकिन हम उसके बारेमें और कुछ नहीं जानते।"

"तब फिर मैं शायद गलत रास्तेपर आ गया हूँ। मुझे तो परब्रह्मके उस लोकमें जाना है जहाँ न सुख है न दुःख, न प्रकाश है न अन्धकार, न जीवन है न मृत्यु, जहाँ पहुँचकर फिर कुछ करनेको नहीं रह जाता। यही उस मुक्ति-लोककी परिभाषा मैंने समझी है।" मैंने कहा।

"आप अपने कर्मानुसार आये तो ठीक मार्गपर ही हैं। आपके कहे जैसे किसी मुक्ति-लोककी जानकारी हमें नहीं है। और फिर जैसे महान् पुण्य कर्म आपने किये हैं उनके फल-स्वरूप सुख तो आपको भोगने ही पड़ेंगे।" उन्होंने कहा।

अब मैं चिन्तामें पड़ा। सुखोंका यह अनचाहा ढोल मैं अपने गले नहीं पड़ने देना चाहता था। मुझे तो परिपूर्ण मुक्तिकी ही कामना थी और मुझे यह भी भय था कि सुख-भोगके क्षीण होनेपर मुझे फिर दुःखोंसे बचनेके लिए कठिन साधनाएँ करनी पड़ेंगी।

"मै अपने पुण्य कर्मके फलोंका त्याग करता हूँ। क्या मै अपनी इच्छा के विरुद्ध भी उनका भोग करनेके लिए बाध्य हूँ? देखते नही, यहाँके सुख-वैभवके वातावरणमें मेरा दम घुटा जा रहा है।" मैने क्षुब्ध होकर कहा।

देवताओंने अपनी भाषामें कुछ परामर्श किया और तब मुझसे कहा: "अच्छी बात है, हम आपकी इच्छा पूरी करनेका यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे।"

उन्होंने एक कोई वस्तु लाकर मेरी नाकमें सुंघा दी और नींदके एक तेज झोंकेके साथ मैंने अनुभव किया कि मैं मुक्ति-लोककी भूमिमे पदार्पण कर रहा हूँ। इसके बाद मेरी चेतना जाती रही।

जब मेरी चेतना लौटी तो मैंने अपने आपको अपने वर्तमान शरीरमें, इस भूलोकके एक गरीब घरकी धरतीमे, एक नवजात शिशुके रूपमे पाया। मेरे बगलमें एक छोटे वर्गका देवता खड़ा था। उसे मैंने कहते सुना:

"तुम्हारी मूर्च्छितावस्थामें तुम्हारी देख-भालका मेरा काम अब समाप्त हो गया है। स्वर्ग-लोकका एक पूरा कल्प—जिसमे जाग्रत रहकर तुम असाधारण सुखोंके भोगके साथ-साथ आगेके लिए अपनी कार्यक्षमता भी बहुत कुछ बढ़ा सकते थे—तुम अपनी किसी अन्ध-धारणा द्वारा निर्मित कामनासे प्रेरित होकर सोनेमें व्यतीत कर चुके हो। अब तुम्हे फिरसे अपनी जीवन-यात्रा एक निचली मञ्जिलसे प्रारम्भ करनी होगी।" इतना कहकर वह चला गया।

अपनी इस भयङ्कर चूककी बात सुनकर मेरे बाल-कण्ठसे रुदनका स्वर फूट पड़ा और वह मेरे स्वागतमे बज उठे ढोलक और मजीरेके कर्कश स्वरमे विलीन हो गया।

परिश्रमका पुरस्कार

एक बार मनुष्योंके भूलोकमें दुःख-दर्दोंकी ऐसी बाढ़ आई कि उससे त्रस्त होकर स्वर्गलोकमें प्रवेश चाहने वाले मनुष्योंकी संख्या बहुत बढ़ गई। विवश होकर देवताओंको स्वर्ग-लोकके द्वारपर इन मनुष्योंके लिए एक बड़ा प्रतीक्षा-नगर बसाना पड़ा। आवश्यक परीक्षामें उत्तीर्ण होनेवाले प्रवेशार्थियोंके स्वर्गमें जानेकी व्यवस्था कर दी गई।

सात प्रवेशार्थियोंके अन्तिम दलको परीक्षकोंने आदेश दिया कि वे भूलोकमें जाकर मनुष्योंका दुःख दूर करनेका प्रयत्न करें।

ये सातों व्यक्ति धरतीपर लौटे। इनमेंसे तीनने अपने लिए एक-एक मठ बनवा लिया और गेरुए वस्त्र पहनकर आराम-आगमसे लोगोंको उपदेश देने और भिक्षा द्वारा अपना निर्वाह करनेका क्रम अपनाया; अन्य तीन अपनी शक्तिकी सीमाओं और खान-पान-विश्रामकी आवश्यकताओंको भी उपेक्षा करके तन-मनसे मनुष्योंकी हर प्रकारकी सेवामें जुट गये, और सातवेंने एक अच्छा-सा घोड़ा खरीदा। यह सातवाँ व्यक्ति इच्छानुसार कभी बस्तियोंकी ओर कभी वनों-पर्वतोंकी सैर करता, और जब दुःख-दर्दके मारे लोग उससे कुछ सहायता माँगते तो उन्हे अपनी सहायता स्वयं कर लेनेकी सीख दे देता।

निश्चित अवधि पूरी होते-होते इन सातों उद्धारकोंके प्रयत्नसे दुनिया का सारा दुःख दूर हो गया और ये सातों स्वर्गके द्वारपर जा पहुँचे। पहले तीन व्यक्ति मठोंमें विश्राम करते-करते इतने विश्राम-प्रिय हो गये थे और अब इस इतनी लम्बी यात्रासे इतने थक गये थे कि उन्होंने स्वयं ही दो दिन प्रतीक्षानगरमें ही विश्राम करके तब स्वर्गमें जानेका निश्चय किया। दूसरे तीन व्यक्तियोंने इतना परिश्रम किया था कि उनके शरीरसे अभी भी पसीना चू रहा था और उनके शरीरोंका जोट-जोट दुख रहा था। सातवों

व्यक्ति ही सहज भावसे स्वर्गके द्वारपर खड़ा परीक्षकोंके निर्णयकी प्रतीक्षा कर रहा था।

परीक्षकोंने निर्णय दिया :

"मनुष्योंके लिए स्वर्ग-प्रवेशका, इस युगका आज अन्तिम दिन है। जो तीन व्यक्ति प्रतीक्षा नगरमे विश्राम कर रहे है उनके लिए तो कुछ कहना ही नहीं है। वे उपस्थित होते तो भी यथेष्ट श्रम-पूर्वक अपना कर्तव्य पालन न करनेके कारण स्वर्ग-प्रवेशके अधिकारी न होते। इन तीन व्यक्तियोंने शक्तिसे अधिक परिश्रम किया है और दूने अधिकारके साथ स्वर्ग-प्रवेशके अधिकारी है। किन्तु ये दूसरोंका अत्यधिक बोझ उठानेसे स्वयं इतने क्लान्त और पीड़ित हो रहे है कि इन्हें अपनी पीड़ाके निवारणके लिए पुनः भू-लोकमे जाना पड़ेगा, क्योंकि पीड़ित जनोंके निवासका, और इसीलिए उनकी सुश्रूषाका, स्वर्ग-लोकमे कोई प्रबन्ध नहीं है। इनमेसे यह सातवाँ व्यक्ति ही स्वर्गमे प्रवेश कर सकता है।"

कहते है कि उन अधिक परिश्रम करने वालोंकी सुश्रूषाके लिए उन कम श्रम करने वालोको भी पुनः पृथ्वीपर भेजा गया और केवल इन छह व्यक्तियोके निवासके कारण पृथ्वीका नया काया-कल्प नहीं होने पाया। यदि इन छह, विशेषकर उन अति श्रम करनेवाले तीन, व्यक्तियोंने अपने कर्तव्य-भागको पूरा करनेमें विषमता न की होती तो उसी समय भू-लोकका उद्धार होगया होता और अब तक स्वर्गकी सभी सुविधाओंको पृथ्वीपर लाकर इस लोकका नया निर्माण हो जाता।

स्वर्ग कहाँ ?

किसी समय भूतलके एक बड़े द्वीपपर एक बड़े राजाका राज्य था। राजा बड़ा सत्यान्वेषक और सत्यानुरागी था।

एक बार उसने अपने गुप्तचर विभागको आज्ञा दी कि स्वर्ग लोककी ठीक-ठीक खोज-खबर लगाकर लायें। कथा, इतिहास और धर्मके ग्रन्थोंमें उसने स्वर्गकी बहुत चर्चाएँ सुनी थीं, किन्तु किसी भी असत्य धारणाको वह अपने राज्यमें पोषण नहीं होने देना चाहता था।

गुप्तचर विभागने बड़े परिश्रमसे दूर-दूरकी खोज लगाकर और समुद्र पारके सभी द्वीपोंकी छान-बीन करके राजाको सूचित किया कि स्वर्ग-लोक कहीं भी नहीं है।

उसी समय राजाने राज्य भरमें घोषित कर दिया कि स्वर्ग एक झूठी कल्पना है, उसकी कोई भी, किसी प्रकारकी भी चर्चा न करे।

कुछ समय पश्चात् इस द्वीपकी एक नदीसे अनायास ही पानीकी एक नई धारा राजधानीकी ओर फूट निकली। यह नदी समुद्र-तटके समीप एक ऊँचे पर्वतकी तलहटीमें भरी हुई झीलसे निकलकर द्वीपके एक छोटे भागको चीरती हुई दूसरी ओरके समुद्रमें जा गिरती थी। नदीके तटपर देशके कुछ छोटे-छोटे गाँव ही बसे हुए थे।

नदीकी यह नई धारा खेतों और गाँवोंको जल-मग्न करती बड़े नगरकी ओर बढ़ चली।

राजाको बड़ी चिन्ता हुई। ऐसी दुर्घटना राज्यमें यह पहली ही थी। राज्यके मन्त्रियों और विद्वानोंमें कोई भी इसे रोकनेका उपाय नहीं बता सका। जो कुछ उपाय सोचे भी गये उनकी उपयोगितापर लोगोंमें मतभेद भी था।

राजाका एक दरबारी, जो भाँति-भाँतिकी कथाएँ दरबारमें सुनाया करता था और बहुत बुद्धिमान् भी माना जाता था, राजाकी स्वर्ग-सम्बन्धी घोषणाके दिनोंसे ही अनुपस्थित था। राजाने प्रयत्न-पूर्वक खोजकर उसे बुलवाया और उससे भी प्रस्तुत संकटके निवारणका उपाय पूछा।

"महाराज!" उसने कहा, "पृथ्वीपर ऐसी दुर्घटना पहले कभी नहीं सुनी गई—कभी हुई हो तो दरबारके बड़े-बड़े इतिहासज्ञोंको उसकी खबर होगी। लेकिन कहते है कि स्वर्गलोकमें अलबत्ता इस तरहके जल-प्रलयकी एक बार नौबत आगई थी।"

"फिर स्वर्ग वालोंने कैसे उससे अपने लोककी रक्षा की?" राजाने आतुर होकर उससे पूछा।

"कुछ नहीं महाराज, जलका देवता विरूधक किसी बातपर धरतीके देवता कुबेरसे रुष्ट हो गया था। उसीने यह उत्पात खड़ा कर दिया था। इसपर कुबेर विशाल काया धारणकर स्वर्गकी भूमिपर लेट गया और उसने देवताओंको आदेश दिया कि उसकी बाँह काटकर उसके मासकी एक-एक आहुति विरूधकके लिए सभी देवजन दें। देवताओंने ऐसा ही किया और स्वर्गलोकका वह जल-प्रलय-सङ्कट टल गया।"

इतना कहकर प्रवासी दरबारी अपने एकान्त निवासको लौट गया। दरबारका नगर-शिल्पी एक चतुर व्यक्ति था। उसने राजाको आश्वासन दिया कि उक्त कथामें वर्णित उपायको उसने समझ लिया है और अब वह जलके कोपसे देशकी रक्षा कर लेगा।

नगर-शिल्पीके परामर्श और राजाकी आज्ञासे दूसरे ही दिन देशके दस करोड़ नर-नारी, पर्वताकारमें उभरे एक लम्बे भू-भागकी श्रेणीको खोदकर एक-एक टोकरी मिट्टी उस नई जल-धाराके मार्गपर पाट आये। नदीकी धारा कुछ फेरसे लौटकर फिर मुख्य धारामें जा मिली।

उस दरबारीको राजाने विशेष आग्रह और सम्मानके साथ अपने दरबारमें बुला लिया। उसने दरबारमें वक्तव्य दिया :

"स्वर्गका अस्तित्व कहीं हो या न हो, उसकी हमें चिन्ता नहीं. लेकिन एक स्व-निर्मित स्वर्गकी आवश्यकता हमारे लिए अनिवार्य है, क्योंकि हमारी साधारण पहुँचसे बाहरकी अधिकाश उपयोगी कल्पनाएँ, प्रेरणाएँ और बुद्धिमत्ताएँ वहींसे आती है और उन्हींको धरतीपर उतारनेके लिए हमें स्वर्गकी आवश्यकता है।"

सुखान्त या दुःखान्त

एक परम साहसी साहित्यिक चोरने ईश्वरकी हस्त-लिखित अप्रकाशित 'विश्व-नाटिका' नामकी पुस्तिकाके कुछ प्रारम्भिक अंश उड़ा लानेमे सफलता पाई है। पुस्तिकाकी भूमिकामें निर्देश है कि इस परम सुखान्त सप्ताङ्की नाटिकाके आधारपर संसारका खेल रचा जायगा। नाटिकाकी संक्षिप्त कथा यो है :

पहले सात मनुष्योका दल जब नई समृद्धियोसे परिपूर्ण भूलोकमें निवासके लिए भेजा जायगा तब वह वहाँके सौन्दर्यों के निरीक्षण और समृद्धियोके उपभोगमे सुख-पूर्वक संलग्न रहेगा।

अगले सात मनुष्योका जब दूसरा दल वहाॅ पहुँचेगा तब वह पृथ्वीके सौन्दर्यके साथ-साथ एक दूसरेके मानवीय सौन्दर्योंका भी निरीक्षण करेगा और इस अतिरिक्त पारस्परिक सम्पर्कका भी सुख भोगेगा।

अगले सात मनुष्योका जब तीसरा दल वहाॅ पहुँचेगा तब वह पिछले चौदहो मनुष्योको भी निमन्त्रितकर एक सभा करेगा और उसमे धरती और मनुष्योके सुन्दर रूपोंका निर्माण करनेवाले ईश्वरके लिए धन्यवादका एक प्रस्ताव प्रस्तुत और स्वीकृत करेगा।

चौथा दल जब वहाॅ पहुँचेगा तब वह पिछले इक्कीस मनुष्योको भी निमन्त्रित कर ईश्वरकी खोज करेगा और आगे इस कार्यको कुछ असुविधा-जनक पाकर स्वयं एक ईश्वरका निर्माण करेगा।

पाॅचवे दलके यथा समय भू-लोकमें पहुँचनेपर वह पिछले अट्ठाईस मनुष्योंको भी आमन्त्रितकर ईश्वरके बनाये भूलोक और मनुष्योकी, तथा मनुष्यके बनाये ईश्वरकी आलोचना करेगा और इन तीनोंमे अपनी सुविधाके अनुसार परिवर्तनके लिए तोड़-फोड़ और काट-छाॅटके कार्य

प्रारम्भ कर देगा। धरतीकी समृद्धि नष्ट होगी, मनुष्यका रक्त बहेगा—दोनों बहुत कुछ श्रीहीन हो जायेंगे।

"अगले सात मनुष्योंका छठा दल जब वहाँ पहुँचेगा तब—" तब क्या कैसे होगा—यह पुस्तिकाके सम्भवतः उस अंशमें लिखा है जिसे वह साहित्य-साहसी हस्तगत नहीं कर सका!

इस परम साहसी साहित्यिक चोरने अभी-अभी विज्ञापित किया है कि यदि संसारके वर्तमान इतिहासकार इस नाटिकाके उपर्युक्त अंशको ऐतिहासिक आधारपर सत्य प्रमाणित करते हुए इस नाटिकाके सुखान्त होनेकी किसी प्रकार सम्भावना प्रकट कर सकें तो वह उस विश्व-नाटिकाके शेष अंशोंको भी उडा लानेका एक प्रयास और कर सकता है।

पथ-भ्रष्ट

पृथ्वीके एक बड़े अन्वेषकने अपनी कुशल बुद्धि और अथक परिश्रम द्वारा उन भू-भागोंको खोज निकालने का साधन प्राप्त कर लिया था जिनमें सोनेकी खानें थीं। उसके सहकारियो और प्रशंसकोकी संख्या बहुत बड़ी थी और उसके भू-गर्भ-विज्ञान सम्बन्धी परामर्शोंकी देशमे बड़ी कदर हो गई थी। स्वर्ण-स्थलियोकी खोजका वह एक मात्र अधिकारी अन्वेषक माना जाता था और इस विज्ञानके बहुतसे शिक्षार्थी उसके साथ रहकर इसका व्यावहारिक अध्ययन कर रहे थे।

एक बार वह मार्गके कुछ लक्षणोकी जॉच करता हुआ अपने कुछ शिष्योंके साथ एक नई अनुमानित स्वर्ण-स्थलीकी ओर जा रहा था। अचानक एक पुराने शिष्यने इस श्वेत-केशी वयोवृद्ध अन्वेषकके निर्दिष्ट मार्गपर चलनेमें अपनी अरुचि और अश्रद्धा प्रकट करते हुए एक दूसरी दिशामे प्रस्थान कर दिया।

दूसरे शिष्योने इस शिष्यके ऐसे व्यवहार पर आश्चर्यपूर्ण खेद प्रकट किया। अधिकाशने उसकी भर्त्सना करते हुए उसे पथ-भ्रष्ट बताया और कुछने उसे भाग्यहीन और दयापात्र मानकर छोड़ दिया।

वृद्ध अन्वेषक अपने शिष्योको अपने निर्दिष्ट मार्गपर लिये बढ़ता गया और जब उस पथ-भ्रष्ट युवककी चर्चा वे लोग आपसमें जी भरकर कर चुके तब उसने अपना मत प्रकट किया :

"यह तो निश्चित है कि वह युवक मेरे निर्दिष्ट सिद्धान्तो और प्रयोगोसे विमुख होकर सोनेकी खाने कभी नही खोज सकता लेकिन इस पृथ्वीपर सोनेसे भी अधिक मूल्यवान हीरों और रत्नोकी खाने भी हैं। कौन कह सकता है, वह अपनी अन्तःप्रेरणासे प्रेरित उन्हींमे से किसी की ओर न गया हो ?

मैत्रेयका शिक्षक-दल

एक बार धरतीके एक चक्रवर्ती सम्राट्ने अपने राज्यके शिक्षाध्यक्ष-पदपर मैत्रेय ऋषिको नियुक्त किया। प्रजा-जनोंके लौकिक और पारलौकिक विकासके लिए शिक्षा-क्रमोंका निर्माण तथा शिक्षकों और प्रचारकोंके प्रशिक्षण एवं नियुक्तिका कार्य इस पदाधिकारी द्वारा ही किया जाता था। राज्यकी आयका एक तिहाई भाग इस शिक्षा-विभागमें ही व्यय होता था।

मैत्रेयने अपने कार्यका दायित्व तो स्वीकार कर लिया किन्तु किसी भी शिक्षक और प्रचारककी नियुक्ति नहीं की, उनके प्रशिक्षणका कोई शिविर नहीं खोला और न किसी शिक्षा-क्रमकी ही राज्यमें घोषणा की। फलतः राज्य-कोषसे इन कार्यों के लिए उन्होंने कोई धन भी नहीं लिया और वे अपने पार्वत्य प्रदेशीय आश्रममें ही रहे आये।

जब दस वर्ष इसी प्रकार बीत गये तो राजाको चिन्ता हुई, और प्रजाको भी शिक्षकोंके अभावमें असन्तोष और आशंकाओंका भय होने लगा। राजा और प्रजा दोनोंकी ओरसे एक शिष्ट-मंडल मैत्रेयके आश्रममें उनसे मिलने गया।

"आप लोग कैसी बात कहते हैं!" मैत्रेयने उनकी बात सुनकर आश्चर्यके स्वरमें कहा, "मैंने तो इन दस वर्षोंमें शिक्षकोंकी एक बड़ी संख्या आपके राज्यमें भेज दी है। जाइये, खोजिये, आप उन्हें पा जायेंगे।"

शिष्ट-मंडल लौट आया, लेकिन उसे या राज्यके किसी भी नागरिकको एक भी शिक्षक कहीं नहीं दीख पड़ा। दुबारा वह मण्डल मैत्रेयके पास पहुँचा।

"आपने उनकी खोज नहीं की। इस समय तक कोई भी घर ऐसा नहीं जिसमें वे पहुँच न गये हों। क्या नगरोंकी गलियोंमें, हाटोंमें, स्कूलोंमें,

माताओंकी गोदोंमें आपने अभी तक उन्हे नहीं देखा ?" कहकर मैत्रेयने उन्हें वापस कर दिया।

नगरोंकी गलियो, हाटोंके भूलों और माताओंकी गोदोंमें नागरिकोंके बालक-बालिकाओंसे भिन्न और किसकी ओर मैत्रेयका संकेत हो सकता था! विद्वान् अर्थकारोंने समझा कि ये ही प्रौढ़ नागरिकोंके शिक्षक है और मैत्रेय ऋषिने उन्हें ही आवश्यक ज्ञान-दानकी क्षमतासे सम्पन्न कर दिया है।

लोग बालकोंसे भाँति-भाँतिके प्रश्न पूछने, शङ्काओंका समाधान माँगने और ज्ञान-दानकी याचना करने लगे। किन्तु वे बालक उन्हें कुछ भी न बता सके! लोगोंने बच्चोंके व्यवहारोंका अपने पारस्परिक व्यवहारमें अनुकरण करनेका भी प्रयास किया किन्तु उसका फल भी अत्यन्त असुविधा-जनक रहा। विवश हो तीसरी बार जब वह शिष्ट-मण्डल मैत्रेय ऋषिकी सेवामें उपस्थित हुआ तब उन्होंने कहा :

"आप लोगोंने मेरा अभिप्राय अबकी बार ठीक ही समझा। किन्तु प्रश्नोंके उत्तर देने, शङ्काओंका समाधान करने और व्यवहारका आदर्श प्रस्तुत करनेवाले शिक्षक एक साधारण सीमाके आगे आपका पथ-प्रदर्शन नहीं कर सकते। आप लौटकर अपने बच्चोंके और भी निकट सम्पर्कमें आनेका प्रयत्न कीजिए। उनके व्यवहारोंका अनुकरण न कीजिए बल्कि अपने प्रति जैसे व्यवहारोंके लिए वे आपको प्रेरित और बाध्य कर देते हैं, उनका अध्ययन कीजिए और उन्हे ही अपने पारस्परिक व्यवहारमें भी लाइए। इससे बढ़कर शिक्षा आपको अन्यत्र नहीं मिलेगी।"

उसी रात राज्यके प्रत्येक गृहस्थने—किसीने स्वप्न और किसीने जाग्रत अवस्थामें—अपने आँगनमें एक त्रि-वर्षीय सुन्दर बाल-मूर्तिको प्रकट होकर कहते सुना :

"जैसा स्निग्ध, निष्कपट, उदार, क्षमा-पूर्ण एवं न्याय-अधिकार और आदान-प्रदानकी तुलनाओंसे मुक्त व्यवहार तुम मेरे साथ करते हो वैसा ही आपसमे भी करनेकी प्रेरणा मै तुम्हे देता हूँ। जिसदिन तुम इस प्रेरणाको

ग्रहण कर सकोगे उसी दिनसे तुम्हें लोक-व्यवहारका कोई अन्य पाठ सीखने को न रह जायगा।"

× × ×

मैत्रेय ऋषिकी शिक्षण-व्यवस्थाकी यह कथा किसी इतिहास-पुराणमें अभी तक नहीं आई है किन्तु सुना है कि मानव-जनोंकी शिक्षा-व्यवस्थासे अब भी उनका कुछ विशेष सम्बन्ध बना हुआ है और मानव-शिशुओंको वे अब भी एक विशेष स्नेह-सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं।

प्राइवेट सेक्रेटरी

एक सेठने एक बार किसी अपरिचित ग़रीब आदमीकी प्राण-रक्षाके लिए एक लाख रुपये खर्च कर दिये। उस ग़रीबके प्राण बच गये। कर्मके देवताओंने उसके इस शुभकर्मका फल एक करोड़ रुपया निश्चित किया। स्वर्गके अधिकारियोंने उसके नाम लिखित आदेश भेजा कि वह अमुक समयपर पृथ्वीके अमुक स्थानपर जाकर वहाँसे एक करोड़ रुपया ले ले और इस आयका आयकर पाँच लाख रुपया स्वर्ग-लोकके आयकर विभागके लिए, पृथ्वीके अमुक व्यक्तिको अमुक समयके भीतर दे दे।

सेठ बड़ा दयालु और सदाचारी था किन्तु उसमें एक बहुत बड़ा दोष यह था कि वह बडा आलसी और असावधान था। दूसरे कार्योंमें उलझे होनेके कारण स्वर्गके आदेश-पत्रको उसने पूरी तरह नहीं पढ़ा और उसने यही समझा कि उसे कर्मके अधिकारियोंने एक करोड़का पुरस्कार दिया है और वह इस रक़मको कभी भी सुविधा होनेपर ले सकता है। इतनी बड़ी रक़मको लगानेके लिए उसके पास उस समय कोई व्यवसाय भी नहीं था।

एक वर्ष बाद स्वर्गके आयकर विभागसे उसके नाम आदेश आया कि उसपर पाँच लाख रुपया आयकरका वाजिब है, जिसे उसने अभी तक अदा नहीं किया और यदि आगामी तीन महीनेके भीतर उसने यह रक़म अदा न की तो उसपर अगली कानूनी कार्यवाही की जायगी।

सेठने सोचा कि अभी तो उसने अपना वाजिब एक करोड़ रुपया ही नहीं लिया है, सुविधानुसार उस रुपयेको लाकर तब फिर यह करका रुपया भी चुका देगा।

तीन महीने बाद स्वर्गके दूत आये और सेठको पकड़कर उक्त विभागके न्यायालयमें ले गये। सेठ अब अपनी पिछली असावधानी पर बहुत पछता रहा था और किसी असह्य दण्डकी आशंकासे उसका हृदय बैठा जा रहा

था। लेकिन स्वर्गके एक चतुर वकीलने उसे आश्वासन दिया और कहा : "तुम केवल मेरी दी हुई सफाइयोंपर 'हाँ' कहते जाना और मैं निश्चय ही तुम्हें निर्दोष सिद्ध करके छुड़ा लूँगा।"

स्वर्गकी उस अदालतमें सेठके वकीलने कहा कि सेठको स्वर्गके उन दो में से एक भी आदेश प्राप्त नहीं हुआ है, वह आयकरका रुपया कैसे चुकाता!

"यह कैसे हो सकता है?" न्यायाधिकारीने कड़ककर पूछा। 'हुजूर!' वकीलने कहा, "इस सेठकी डाक इसका प्राइवेट सेक्रेटरी खोलता है।"

"ओह! इसके प्राइवेट सेक्रेटरी है! तब तो ऐसा हो जाना बहुत स्वाभाविक है।" न्यायाधीशने कहा और अभियुक्तको निर्दोष मानते हुए मुकदमा खारिज कर दिया।

पुरस्कार लेनेकी अवधि तो बीत गई थी, कर चुकानेके लिए सेठको तीन महीनेकी मोहलत और दे दी गई!

कला और शक्ति

एक राजा कलाका बहुत बड़ा उपासक था। उसकी उपासनासे प्रसन्न होकर कलाकी देवीने अपनी चौसठ पुत्रियाँ उसे पत्नी-रूपमें दे दीं। उन अत्यन्त रूपवती कला-कुमारियोंको पाकर राजा कृतार्थ होगया।

कुछ समय बीतनेपर राजाका मन इन चौसठों रानियोंसे भर गया। उसने शक्तिकी देवीकी उपासना की और इस देवीने भी प्रसन्न होकर अपनी एकमात्र पुत्री उसे सौंप दी।

इस नई रानीसे पुरानी चौसठ रानियोंको बड़ी ईर्ष्या हुई। उन्होंने अन्तःपुरसे इस नई रानीके बहिष्कारके लिए एक पूरे कलहका आयोजन कर लिया। राजाने इस नई रानीका पक्ष लेकर पुरानियोंको दबाना चाहा, पर इसने राजाको वैसा करनेसे बरज दिया।

उसने कहा :

"मैं चाहूँ तो इन चौसठों रानियोंको अपनी मुट्ठीमें मसल सकती हूँ, पर ऐसा करके मैं आपका और अपना गार्हस्थ्य सुख नष्ट नहीं करूँगी। आप मेरे रहनेके लिए दूसरा कोई छोटा-सा महल दे दीजिए और जबतक मैं इन्हें राजी न कर लूँ तबतक आप भी मेरे पास न आइए।"

नई रानीका परामर्श राजाने मान लिया और उसके आदेशानुसार चौसठ छड़ लम्बी और चौथाई छड़ मोटी चाँदीकी एक दीवार अपने नये बननेवाले अन्तःपुरके बड़े मैदानमें खड़ी करा दी और चौसठों रानियोंसे कहा कि यदि वे अपने-अपने नामका एक-एक सोनेका द्वार उस दीवारपर खड़ा कर देंगी तो वह उस नई रानीका त्याग कर देगा।

चौसठों रानियोंने अपने-अपने नामसे अङ्कित एक-एक सोनेका, सुन्दर साजसे सुसज्जित खम्भ उस दीवारपर खड़ा कर दिया। किन्तु इतना होने पर उन चौसठों खम्भोंसे द्वार केवल तिरसठ ही बने और एक छड़ लम्बी जगह भी उस दीवारपर खाली रह गई।

उन सुकुमार कला-पुत्रियोंने अपना पूरा कला-कौशल लगा देखा पर उन्हें स्वयं चौंसठ द्वार बनानेका कोई मार्ग न सूझा। अन्तमें वे सब मिलकर उस नई रानी शक्ति-सुताके पास गईं और बहुत अनुनय-विनय-पूर्वक क्षमा माँगकर उससे बोलीं :

"बहिन! हमारी धृष्टता और मूर्खताको क्षमाकर तुम हमारे साथ चलो। नारी-सुलभ ईर्ष्या-द्वेषके कारण हम पहले तुम्हारी महत्ता और उप-योगिताको नहीं देख पाईं। राजाके नये अन्तःपुरके लिए हम अकेली अपने लिए एक-एक द्वारका भी निर्माण नहीं कर सकतीं। तुम्हारे सह-योगके बिना राजा ही नहीं, हम सब भी अपूर्ण-काम हैं।"

शक्तिकी पुत्री मुसकराई। उसने कहा :

"बहिनो, मेरे बिना तुम ही नहीं तुम्हारे बिना मैं भी अपूर्ण हूँ। तुम्हारे बिना कोई काम प्रारम्भ नहीं हो सकता और मेरे बिना पूर्ण नहीं हो सकता। मैं तुम्हारे साथ सदा अभिन्न हूँ।"

शक्तिकी पुत्रीने उस चाँदीकी दीवारका एक सिरा धरतीमें कील कर, दूसरे सिरेको खींचकर उससे मिला दिया। चौंसठ खम्भोंसे चौंसठ ही द्वारोंका एक गोलाकार मण्डप बन गया। राजाने उस वृत्तके भीतर एक सुन्दर, रत्न-जटित अन्तःपुर बनवा लिया।

कहते हैं कि उस अन्तःपुरके चौंसठ खम्भोंपर चौंसठ कला-पुत्रियोंका आधिपत्य है, किन्तु उन चौंसठों द्वारोंमें प्रवेश करनेका अधिकार शक्ति-सुताको ही है। जब शक्ति-सुता किसी भी द्वारमें होकर राजाके पर्यंक-कक्षमें प्रवेश करती है तब वे चौंसठों कला-कन्याएँ अपने-अपने खम्भोंसे चिपटी हुई, राज-दम्पतीकी प्रहरी बनी, निरखती रहती हैं।

इस अब तक अनकही और अनसुनी अति करुण कथाका अभिप्राय कौन बता सकता है?

भूदेव और भूदानवी

घटना बहुत पुराने समयकी है। समुद्रोंसे घिरे एक द्वीपमें मनुष्योंकी एक सुस्वभाव और सीधी-सादी जाति रहती थी। जिसने जहाँ पर घर बना लिया और जितनी धरतीपर अपने लिए कुछ उगा लिया उसका वही मालिक था। लोग अधिक सम्पन्न तो नहीं, फिर भी सन्तुष्ट थे और एक-दूसरेकी प्रायः सहायता ही करते थे। द्वीपके बीचोबीच स्थित एक छोटा-सा पर्वत उस द्वीपका राजा माना जाता था। सभी लोग उस राजाको कर देते थे और उस पर्वतका पुजारी उस धनको लोकहितमें व्यय कर देता था।

उस देशमे भू-दानवीकी पूजा होती थी। यह दानवी उनके खेतोंमें आकाशसे पानी बरसाती और अनाज उगाती थी। जब कभी रुष्ट हो जाती तो अपने रोष-पात्र जनोंके घरोंको हिला देती थी और कभी-कभी धरती फोड़कर उनके आँगनोमे निकल आती थी और अपने मुखसे आग उगलकर उन्हे जला डालती थी।

एक बार एक निर्धन गृहस्थके घरमे भू-दानवीका प्रकोप हुआ। उसने इस आदमीके घरको गिराकर उसमें आग लगा दी। गाँव भरके लोग उसकी सहायतार्थ भू-दानवीको शान्त करनेके लिए उसकी भेट—चावल और मदिरा लेकर दौड़ पड़े। इस गृहस्थने लोगोंको द्वारपर ही रोक लिया।

"दानवीने मेरा यह छोटा-सा घर खा लिया है। इसकी चिन्ता अब व्यर्थ है। तुम जाकर मेरे दूसरे घरोंकी इसके प्रकोपसे रक्षा करनेका अनुष्ठान करो" उसने गाँव भरके घरोंकी ओर हाथ घुमाकर कहा।

लोग लौट गये। उन्होंने आपसमें इस गरीब गृहस्थके—जिसकी धरती दूसरे सभी गाँव वालोंसे कम थी—शब्दोंपर आश्चर्य भी प्रकट किया। उसने गाँव भरके घरोंको अपना कहनेकी बड़ी बात बोली थी!

दूसरे सप्ताह भू-दानवीका और भी बड़ा प्रकोप सारे गाँवपर हुआ। लगभग सभी घर धराशायी हो गये और गाँवके बीचोंबीच एक भयङ्कर अग्नि-विस्फोट धधक उठा। आस-पासके गाँवोंके लोग इस गाँवकी सहायतार्थ दानवीको मंत्र-भेंट द्वारा शान्त करनेके लिए दौड़ पडे।

इसी निर्धन गृहस्थने गाँवमें प्रवेश-द्वारपर उन लोगोंको रोककर कहा।

"भू-दानवीने मेरा यह छोटा-सा गाँव खा लिया है। इसकी चिन्ता अब व्यर्थ है। तुम जाकर मेरे दूसरे गाँवोंकी इसके प्रकोपसे रक्षाका अनुष्ठान करो।"

लोग लौट गये। लेकिन उसकी पिछली और अब की बातको लेकर उन्होंने उसकी बहुत आलोचना की। उस गाँवके एक निर्धन ग्रामवासीने अपने गाँवके सभी घरोंको ही नहीं, पड़ोसके गाँवोंको भी अपनी सम्पत्ति जतानेकी धृष्टता की थी।

अगले मास उस ग्राम-मंडलके (इस गाँवोंका एक ग्राम-मंडल होता था) मध्यवर्ती मैदानमें भू-दानवीका और भी भयङ्कर विस्फोट हुआ। आस-पासके सभी गाँवोंके अधिकाश घर धाराशायी हो गये। आस-पासके सभी मंडलोंके लोग इस मंडलकी सहायतार्थ भू-दानवीको भेंट और मन्त्रों द्वारा शान्त करनेके लिए दौड पडे।

इसी निर्धन गृहस्थने मंडलके प्रवेश-मार्गपर उन लोगोंको रोककर कहा :

"भूदानवीने मेरा यह छोटा-सा मण्डल खा लिया है। इसकी चिन्ता अब व्यर्थ है। तुम जाकर मेरे दूसरे मंडलोंकी इसके प्रकोपसे रक्षाका अनुष्ठान करो।"

सारे देशमें भूदानवीके इन बढ़ते हुए प्रकोपोंके साथ-साथ इस आदमीकी भी चर्चा फैल गई। लोग इसे सनकी कहकर इसकी हँसी उड़ाने लगे। कुछ लोगोंने उसकी ऐसी धृष्टताको शिरासन द्वारके गाड़

पर्वतराज तक भी पहुँचा दी। लेकिन कुछ लोग ऐसे भी निकल आये जिन्होने इस आदमीके कथनमें भावी संकटकी सूचना और उसके शमनका आदेश भी देखा। उन्होने भूदानवीको शान्त रखनेके लिए मंत्रो और भेंटोका अनुष्ठान जहाँ-तहाँ प्रारम्भ कर दिया।

अगले वर्ष उस प्रदेशके (दस मंडलोका एक प्रदेश होता था) मध्यवर्ती मैदानमें भू-दानवीका और भी बड़ा विस्फोट हुआ। आस-पासके अधिकाश मंडलोके अधिकांश गाँवोंके अधिकाश घर धाराशायी हो गये। जिन लोगोने भू-दानवीके शमनका अनुष्ठान कर लिया था वे कुछ सुरक्षित रहे। समूचे द्वीपके लोगोकी एक बड़ी भीड़ (वह द्वीप ऐसे दस प्रदेशोमे बँटा हुआ था) इस प्रदेशकी सहायतार्थ भूदानवीको भेंटो और मंत्रो द्वारा शान्त करनेके लिए उमड़ चली।

इसी आदमीने फिर—अबकी बार इसके साथ इसके अनुयायियोका भी एक दल था—उस जन-समूहकी जुड़ी हुई बड़ी सभामे कहा :

"भूदानवीने मेरा एक प्रदेश उजाड़ दिया है। इसकी चिन्ता अब व्यर्थ है। तुम जाकर मेरे पूरे देशकी इसके प्रकोपसे रक्षाकी चिन्ता करो।"

लोगोने लौटकर अपने-अपने स्थानोमे भूदानवीको शान्त रखनेके उपचार प्रारम्भ कर दिये और भूदानवीका प्रकोप उस एक प्रदेशके आगे नहीं बढा। अब देश भरपर अपने स्वामित्वका दावा करने वाला यह व्यक्ति ही अधिकाश जनताकी चर्चाका विषय बन गया। एक अति साधारण आदमीके मुँहसे ऐसी बात बहुत बड़ी धृष्टता और राजाका बहुत बडा अपमान थी।

लोगोने उसपर आरोप लगाकर उसे राजा (पर्वतराजके प्रतिनिधि पुजारी) के सम्मुख उपस्थित किया और राजाने उसे वनवासका दण्ड दे दिया।

कुछ वर्षों बाद द्वीपके एक दूसरे प्रदेशमें भूदानवीका प्रकोप प्रारम्भ हुआ और अबकी बार तीव्र गतिसे बढ़ चला। सारे द्वीपके लोगोने भू-

दानवीकी प्रसन्नताके लिए जगह-जगह अनुष्ठान किये। फलस्वरूप भूदानवी ने पुरोहित वर्गके कुछ लोगोंको स्वप्न देकर कहा :

"मैं बहुत भूखी हूँ। तुमलोग सब छोटी-छोटी स्थितिके व्यक्ति हो। तुम्हारी दी हुई भेंटसे मेरा पेट नहीं भरता। मुझे किसी ऐसे समृद्ध व्यक्तिके हाथोंकी भेंट चाहिये जिसकी द्वीप भरमें कोई सीमित सम्पत्ति न हो और जिसका यहाँ की सम्पूर्ण धरती और धरतीकी उपजपर एक-सा अधिकार हो।"

वनोंमें खोजकर लोगोंको उस दण्डित व्यक्तिको ही ढूँढ़ निकालना पड़ा. और कहते हैं कि उसके हाथों पृथ्वीपर एक दण्ड-प्रहारके साथ एक मुट्ठी चावल और एक प्याला मदिराकी भेंट पाकर भूदानवी युगोंके लिए शान्त होगई।

पर्वतके ऊपर उस व्यक्तिके लिए सोनेका एक राज-महल बनवाया गया और तभीसे पर्वतके स्थानपर मनुष्यका राज्य उस द्वीपमें प्रचलित हो गया। मानव-राजाको देश-वासियोंने भूदेवकी उपाधि दी।

~

बड़ा दोषी

एक विधवा बुढ़ियाके पास बहुत सम्पत्ति थी। चाँदीके कलशोंमें हजारों सोनेकी अशर्फ़ियाँ उसके तहखानेमें भरी हुई थीं।

बुढ़िया अपने इकलौते बेटेके साथ रहती थी। दुर्भाग्यवश उसका बेटा भी मर गया और वह स्वयं भी अन्धी हो गई। उसका एक पुराना विश्वासपात्र सेवक ही अब उसका एकमात्र सहारा रह गया।

बुढ़ियाके एक शुभ-चिन्तक पड़ोसीने उसे सूचना दी कि उसका सेवक धीरे-धीरे उसकी अशर्फियोंकी चोरी कर रहा है और वह प्रायः हर शाम कुछ अशर्फ़ियाँ छिपाकर अपने घर ले जाता है।

बुढ़ियाको राजी करके उस पड़ोसीने उसकी ओरसे सेवकपर नगरके न्यायालयमें चोरीका अभियोग चलवा दिया।

न्यायालयने अभियोगकी विधिवत् जाँच की और अभियुक्तको निर्दोष पाया। बुढ़ियाका सारा धन उसके बताये अनुमानके अनुसार घरमें सुरक्षित निकला।

न्यायालयने सेवकको उसकी ईमानदारी पर बधाई दी और पड़ोसीको सेवकपर झूठा दोपारोपण करनेके लिए चेतावनी भी दी।

कुछ समय बाद इस पड़ोसीने फिर न्यायालयमें इस सेवकपर बुढिया की चोरी करनेका अभियोग लगाया।

न्यायालयने इस बार भी अभियोगकी जाँच की और अबकी बार पाया कि उस सेवकने तो नहीं; पर कुछ दूसरे लोगोंने उस बुढ़ियाका कुछ धन अवश्य चुरा लिया था। आगे छान-बीन करनेपर उन चोरोंका पता चल गया और उनकी चोरी सिद्ध भी हो गई। इस चोरीका कारण भी यही प्रकट हुआ कि वह सेवक अपनी स्वामिनीकी सम्पत्तिकी रक्षामें कुछ असावधान हो गया था।

न्यायालयने चोरोंको उचित दण्ड देनेके अतिरिक्त उस सेवकको उसकी असावधानीके लिए चेतावनी दी और उस पड़ोसीको उस सेवकपर झूठा आरोप लगाकर उसकी मानहानि करनेके लिए सौ स्वर्ण-मुद्राओंका दण्ड दिया।

कुछ समय बाद पड़ोसीने तीसरी बार उस सेवकपर बुढ़ियाकी चोरी का आरोप लगाया।

अबकी बार खोज करनेपर न्यायालयने पाया कि सेवकने सचमुच स्वयं ही बुढ़ियाकी लगभग एक हज़ार अशर्फियोंकी चोरी की थी।

न्यायालयने सेवकको बुढ़ियाकी नौकरीसे अलग करते हुए, भविष्यमें चोरी न करनेकी चेतावनी देकर छोड़ दिया और पड़ोसीको दो हज़ार अशर्फियों का दण्ड देते हुए कहा :

"पहली बार सेवकपर अभियोग लगाकर इस पड़ोसीने सेवकको चोरी करनेका सुझाव दिया और उसे अपनी मालकिनकी सुरक्षाकी ओरसे कुछ असावधान भी किया; दूसरी बार अभियोग लगाकर उसे चोरी करनेकी प्रेरणा दी और वह प्रेरणा कुछ सफल भी हुई। अब तीसरी बार अभियोग लगाकर इसने उसे पूरा चोर बन जाने तथा बुढ़ियाका सर्वस्व हरण कर लेनेकी चुनौती दी है। इस चोरीका प्रेरक, बुढ़ियाको उसके इतने धनसे तथा एक विश्वसनीय सेवकसे वञ्चित करनेवाला और, इसी-लिए, इस अभियोगका सबसे बड़ा अभियुक्त यह पड़ोसी ही है। इससे प्राप्त दो हजार अशर्फियोंमेंसे एक हजारसे बुढ़ियाकी क्षति-पूर्ति की जाय और शेष एक हजार न्यायालयके कोषमें लोक-न्यायके लिए जमा किया जाय।"

पवित्र भूत

दो राज्योंके बीच बहती हुई एक नदी ही उनकी सीमाओंको निर्धारित करती थी। दोनो राज्योंके पारस्परिक सम्बन्ध कुछ कारणोंसे धीरे-धीरे वैमनस्य-पूर्ण और फिर शत्रुता-पूर्ण हो गये थे। इस पारका राजा कुछ कमज़ोर था और वह छल-कपट-द्वारा ही दूसरे राज्यवालोंको हानि पहुँचाना चाहता था।

इस राजाने एक चमत्कारी साधुको अपने प्रपंचमें सम्मिलित कर लिया।

यह साधु दूसरे राजाके देशमें गया और परम सिद्धका बाना बनाकर लोगोंको अपना शिष्य बनाने लगा। राज्यके कुछ प्रमुख व्यक्तियोंको उसने कुछ चमत्कार दिखाकर अपना भक्त बना लिया और उन्हें विश्वास दिला दिया कि वह उन्हें जीते-जी वैतरणी पार करनेकी साधना सिद्ध करा देगा।

अब हर रात वह अपने कुछ भक्तोंको लेकर नदीके किसी एकान्त तटपर जाता और एक नौकामें बिठाकर उन्हें मझधारमें ले जाता। यहाँ पानीमें उतार कर वह उन्हें एक तूँबीके सहारे वैतरणी पार कराने लगता। धारामें बहते-बहते जब वे थककर डूबने लगते तब वह उनसे पूछता :

"तुम्हें इस समय क्या वस्तु दीख रही है ?"

"अथाह जल और भयङ्कर लहरोंके रूपमें केवल मृत्यु।" शिष्योंके उत्तरका अभिप्राय होता।

इसपर वह तैरनेकी कलामें कुशल साधु उन्हें वहीं छोड़कर अपनी नौकापर जा पहुँचता।

इस प्रकार उस राज्यके दो-चार प्रमुख व्यक्तियोंका निधन उस साधुके हाथों प्रतिदिन होने लगा। राज्यका जन-बल धीरे-धीरे क्षीण होने लगा।

एक बार जब वह साधु अपने एक भक्तको नदीकी धारामें डुबा रहा था, उसने उससे भी अपना वही नियमित प्रश्न पूछा।

सदाके उत्तरोंसे भिन्न उस शिष्यने उत्तर दिया :

"महाराज ! मैं अथाह जल और भयङ्कर लहरोंको देख रहा हूँ और साथ ही उनमें डूबनेवालेको भी देख रहा हूँ ।"

"डूबनेवालेको भी ?" साधुने विचलित स्वरमें कहा और अपनी नौकापर सवार होकर सीधा अपने स्वामी राजाके पास पहुँचा ।

"राजन् ! मेरा भेद आज खुल गया है । अबतक मैंने शत्रुके सैकड़ों महाजनोंका वध किया, लेकिन आज एक ऐसा व्यक्ति मेरे हाथ पड़ गया जो अमर है और वह तुम्हारे इस षड्यन्त्रका भंडाफोड़ कर देगा । अपनी रक्षाका अब तुम अविलम्ब उपाय करो ।" साधुने कहा ।

"हाँ राजन् !" उसी समय निकटसे ही किसी अदृश्य व्यक्तिकी आवाज आई : "मैंने इस कपट-साधुका भाँडा फोड़ लिया है और मैं अपने देह-लोकके राजाको इस षड्यन्त्रकी सूचना दे दूँगा । तुम दण्डसे बच नहीं सकते ।"

अगली सुबह ही दूसरे राजाको इस राजाके कपट-व्यापारकी पूरी सूचना मिल गई और उसने इस राज्यपर चढ़ाई कर राजाको बन्दी कर लिया तथा राज्यको अपने राज्यमें मिला लिया ।

× × ×

मेरे कथा-गुरुका कहना है कि जो व्यक्ति अपने संकट-कालमें संकटसे भिन्न किसी दूसरी वस्तुको भी देख सकता है, उसे वह संकट अपने भीतर कभी डुबा नहीं सकता । मृत्यु जीवनका सबसे बड़ा संकट नहीं है और जो मृत्युके समय मृत्युके साथ-साथ मरनेवालेको भी देख सकता है वह अमर है । वह संसारके सब भूतोंमें पवित्र भूत है, और ऐसे पवित्र भूतोंकी जीवन और मृत्युमें अखण्ड रहनेवाली चेतना ही संसारका सच्चा शासन करती है । कथा-गुरुका यह भी कहना है कि ऐसे पवित्र भूतोंका इतिहास सच्चे इतिहास-प्रेमियोंके लिए दुर्लभ नहीं है ।

अनबिक घोड़ा

समृद्ध और प्रतिष्ठित ब्राह्मण माता-पिताके घर मैंने शूद्र रूपमें जन्म लिया। सात वर्ष पीछे एक दिन मुझे भी ब्राह्मण बनानेके लिए एक बड़ा यज्ञ रचा गया। उसी रात एक देवता मेरे एकान्तमें मेरे पास आया और बोला :

"इस यज्ञसे तुम्हें कुछ भी ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं हुआ है। तुम उसे पाना चाहते हो तो उठो। नगरके बाहरी उद्यानमें एक घोड़ा खड़ा हुआ है। आजके दिन तुम्हें भेंट करने के लिए मैं उसे लाया हूँ। उस घोड़ेपर सवार होकर तुम उत्तरकी ओर चल दो। राहकी तगी और भूख-प्याससे घबराना नहीं। और अगर कभी सचमुच भूखो मरनेकी नौबत आ जाय तो उस घोड़ेको बेचकर तुम कुछ धन भी प्राप्त कर सकते हो।"

मैं उसी समय नगर-द्वारके उद्यानमे पहुँचा। वह घोड़ा मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। उसपर सवार होकर मैं उत्तर दिशाकी ओर चल पड़ा।

रात मैंने एक सरायमें बिताई। सरायका भाड़ा और भोजनके दाम मेरे पास नहीं थे। इन सुविधाओंके बदले मुझे अगले दिन सराय-मालिक की नौकरी करनी पड़ी। अगले दिन उसने एक बारका भोजन मेरे साथ बाँधकर मुझे छुट्टी दे दी।

अगली मंजिल तीन दिनकी थी। दो दिनका भूखा-थका मैं इस दूसरी मजिलकी सरायपर पहुँचा। तीन दिन तक इस सरायदारकी नौकरी करके मैं जो कुछ बचा पाया उससे केवल अगले तीन दिनका भोजन खरीदा जा सकता था—और अगली मंजिल सात दिनकी थी।

बड़ी कठिनाईसे मैंने यह मंजिल पार की। मुझे पता लगा कि इस या किसी भी अगली सराय मे नौकरी करके मैं ले जानेके लिए एक सप्ताहसे अधिकका भोजन नहीं कमा सकता था और अगली मंजिल पूरे

एक महीनेकी थी। मैंने विवश होकर अपने घोड़ेको इस सरायदारके हाथों बेचनेका प्रस्ताव कर दिया। लेकिन उसने उसका जो मूल्य लगाया वह मेरे तीन सप्ताहके भोजनसे अधिक नहीं था। मैंने राहके फल-फूल-पत्तोंपर निर्वाह करनेका निश्चय कर यात्रा प्रारम्भ कर दी।

चौथी मंजिलके गाँवमें घोड़ोंकी हाट लगती थी। उसमें मैंने अपने घोड़ेको बेचनेका प्रयत्न किया।

यहाँ उसके जो दाम लगे वे मेरे ग्यारह महीनेके भोजनके लिए पर्याप्त थे किन्तु अगली मजिल पूरे एक वर्षकी थी। मैं यहाँ भी घोड़ा नहीं बेच सका।

पाँचवीं मंजिलपर घोड़ोंकी और भी बड़ी हाट लगती थी। यहाँ मेरे घोड़ेके जो दाम लगे वे मेरे छह वर्षके भोजनके लिए पर्याप्त थे लेकिन अगली मंजिल सात वर्षकी थी। यहाँ भी मैंने घोड़ा नहीं बेचा।

मेरी यात्रा इसी प्रकार अधिकाधिक दूर पड़ती मंजिलोंमें होती बढ़ती गई और हर मजिलकी घुड़हाटमें मुझे अपने घोड़ेके जो दाम मिलनेको हुए वे पिछले दामोंसे बहुत अधिक होते हुए भी अगली मजिलकी यात्राके लिए पर्याप्त न थे। विवश हो मैं उस घोड़ेको नहीं बेच सका और बहुत ही अपर्याप्त आहार और साधनोंके साथ मेरी यह यात्रा चलती रही।

मेरी इस यात्राको चलते कोई तेरह सौ वर्ष बीत चुके हैं और ग्यारहवीं मजिल मेरे सामने है। पिछली हाटमें मैं अपने घोड़ेको जितनी धनराशिमें बेच सकता था उससे एक सुख-यान खरीदकर बड़े समारोहके साथ अपने पिछले देशको लौट सकता हूँ और अपने वंशके वर्तमान वंशजोंमें बहुत अधिक सम्मान भी पा सकता हूँ। लेकिन यह धनराशि मेरी यात्राकी प्रस्तुत मजिलके लिए पर्याप्त नहीं है। मेरी यात्रा चल रही है और सबसे अधिक लम्बी, साढ़े तीन मजिलोंकी यात्रा मुझे और पूरी करनी है। मेरा पितृ-कुल भी अब एक दूसरा हो गया है। यह ब्राह्मण

के कुलसे कुछ नीचा है फिर भी मै अब ब्राह्मणत्वके पहलेसे अधिक समीप हूँ। अगली मंज़िलके बाद तीन मज़िल और चलकर वहाँकी हाटमें ही मै अपना यह घोड़ा सुविधाप्रद मूल्य पर बेच सकूंगा। और उसके आगे? उसके आगे नया घोड़ा, और मेरी पञ्च-खण्डी यात्राका द्वितीय खण्ड!

मुझे प्रसन्नता है कि किसी भी हाटमे मेरे घोड़ेके अधिक दाम नहीं लगे और मैंने थक-हारकर उसे अपर्याप्त दामोंमें नही बेचा। अब किसी भी मूल्यपर मैं उसे बेचनेके लिए तैयार नहीं हूँ।

आप चाहे तो शायद अपना वह घोड़ा मैं आपको दिखा भी सकता हूँ।

महान् और सामान्य

एक था महान् प्रतिभासे सम्पन्न, अनेक लौकिक और अलौकिक गुणोंसे विभूषित, लोक-पूजित लोक-नायक; और दूसरा था एक सरल, सामान्य गृहस्थ। दोनो एक-दूसरेके मित्र थे। दुनिया पहलेको पूजती थी और उसके पथ-प्रदर्शनसे असाधारण लाभ उठाती थी; दूसरेको उसके पड़ोसियोंके आगे कोई जानता भी न था। दोनों अलग-अलग नगरोंमें रहते थे और जब कभी वह लोक-नायक इस गृहस्थके नगरमें आता था तब इसके घरपर ही ठहरता था।

इस महान् पुरुषके संसर्गसे धीरे-धीरे उस गृहस्थके नगरके लोग उसे भी जान गये। उनके मनमें कुतूहल उत्पन्न हुआ कि इस साधारण गृहस्थपर इस महान् प्रतिभाका कोई विशेष सम्मानवाही प्रभाव क्यों नहीं है।

एक दिन कुछ लोगोंने बहुत साहस करके अपनी यह जिज्ञासा उन महापुरुषके सामने रख दी।

उसने उत्तर दिया :

"यह मेरा बचपनका साथी, मेरा चिर-सखा और समकक्ष सहयोगी है। मुझमें तुम जो महानता देखते हो वह समाजकी प्रस्तुत विषमताका प्रतिबिम्ब है, इसमें जो सामान्यता देखते हो वह आगामी उन्नत समाज की समताकी छाया है। मैं जो लोक-हितके कार्य करता हूँ उनसे समाजमें एक हिलोर उत्पन्न होती है और लोग उससे हिल जाते हैं और स्वयंको प्रभावित एवं हीन तथा मुझे प्रभावशाली एव महानके रूपमें देखते हैं। मेरा यह मित्र लोक-हितके जो कार्य करता है वे हल्की फुहारोंवाली एक मेघमालाकी तरह धरतीके समीप आकर समाजको चुपचाप भिगो जाते हैं— उनका किसी प्रकारका आतङ्क नहीं होता। मेरे मित्रका कार्य मेरे कार्यसे

एक स्तर ऊँचा और अधिक व्यापक है। मै संसारमे आन्दोलन करके जाग्रति उत्पन्न करता हूँ, वह अपने पड़ोसियोंमे चुपचाप सुख बिखेरता है। लेकिन मेरा संसार उतना है जितनेमे मै दौरे करता हूँ और इसका पड़ोस सारा संसार है। संक्षेपमें मै सोये हुए भूखोंको जगाता हूँ, यह उन्हें भोजन परोसता है। हमारे बाह्य कार्योंकी तुलनाकर तुम हम दोनों की महानताओंको नहीं तौल सकते!"

रीता हाथ

पिछली बार जब ईश्वरने धरतीपर अवतार लिया तब स्वर्गके देवता भी उसके साथ आये। इस महान् समारोहके उपलक्ष्यमें उन्होंने धरतीपर और धरतीसे लेकर स्वर्ग तकके समूचे मार्गपर मनुष्योंके लिए लौकिक और अलौकिक सम्पदाएँ बिखेर दीं।

अधिकारी मनुष्योंने अपनी-अपनी रुचि और इच्छाके अनुसार इन सम्पदाओंसे अपनी झोलियाँ भर लीं। ईश्वरकी वापसीपर कुछ विशिष्ट मानव-जन उसे स्वर्गतक पहुँचाने भी गये। इस यात्रामें उन्होंने और भी ऊँची-ऊँची सम्पदाओंका संग्रह किया। इस विदाई देनेवाले दलमें मैं भी सम्मिलित था। उस दलमें मैं ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसने धरतीसे स्वर्ग तककी किसी भी सम्पदाको हाथ नहीं लगाया था।

इस विदाई-दलको विदा देनेके लिए ईश्वरने अपने महलके उद्यानमें एक प्रीति-भोजका आयोजन किया। सबकी बगलोंमें विविध सम्पदाओंसे भरे झोले और केवल मुझे ही रीते हाथ देखकर ईश्वरने मुझसे कहा :

"तुम रीते हाथ कैसे रह गये? क्या तुम्हें कोई सम्पदा पसन्द नहीं आई? यहाँसे तुम्हारा रीते हाथ लौटना मुझे बहुत ना-पसन्द होगा।"

मैंने कहा : "महाराज, मैं यहाँतक रीते हाथ आया हूँ तो आपने यह कैसे समझ लिया कि मैं रीते हाथ ही लौटूँगा? मैंने तो किसी सम्पदाको अपना हाथ अभी तक इसलिए नहीं लगाया कि आपकी ऊँची-से-ऊँची सम्पदाको छूने-परखनेके लिए उसे खाली रख सकूँ। अब, जबकि मैंने आपकी सारी सम्पदाएँ देख ली हैं, लौटते हुए मैं आपकी सर्वश्रेष्ठ सम्पदाको ही बगलमें दबाकर नीचे उतरूँगा।"

मेरा यह उत्तर चतुरतापूर्ण ही नहीं, ठीक भी था। सभामें एक मन्द मुक्त हँसीकी लहर दौड़ गई और ईश्वरने मिलानेके लिए अपना हाथ मेरी ओर बढ़ा दिया।

मेरे साथ ईश्वरके इस हार्दिक 'शेकहैंड' का सभीने एक बार और अभिनन्दन किया।

सन्त और कलाकार

करते-करते जब विधाताने आधीसे अधिक सृष्टिकी रचना कर ली तब उसने स्वर्गके एक अंशसे पृथ्वी और उसके निवासियोका निर्माण किया। पृथ्वीको प्रकाश देनेका काम उसने सूर्यके सुपुर्द किया और पृथ्वी के समयको दिन और रातके दो भागोमे बॉट दिया। पृथ्वीके सर्वश्रेष्ठ देही मनुष्यको उसने आदेश दिया कि वह दिनमें सूर्यके प्रकाशमें धरतीकी ओर देखे और अपना पार्थिव विकास करे तथा रातके अँधेरेमे स्वर्गकी ओर देखकर अपना आध्यात्मिक विकास करे।

दिनके प्रकाशमे लौकिक विकासका काम तो मनुष्योने प्रारम्भ कर दिया पर रातके अन्धकारमें स्वर्गकी ओर देखनेमे उन्हे डर लगने लगा और इस डरसे बचनेके लिए उन्होंने निद्रा नामकी एक नई आदत अपने भीतर उत्पन्न कर ली। दिनमें उन्होंने अपना लौकिक विकास जारी रखा लेकिन रात सोनेमे व्यतीत करने लगे। इस प्रकार उनके स्वर्गोन्मुखी विकासका मार्ग बन्द हो गया।

विधाताको बड़ी चिन्ता हुई। उसने देवताओकी सभाकर यह समस्या उनके सामने रखी। अन्तमे एक देवता इस परिस्थितिका उपचार करनेके लिए तैयार हो गया।

उसने दो बड़े-बडे प्रकाश-दीप लिये और रातके समय पृथ्वीके सामने आकाशपर टॉग दिये। ये दीपक शीतल और मानव-चक्षुओंको सुख देनेवाले थे। इन दीपकोंका नाम उसने चन्द्रमा रखा।

इन नये दीपकोंको देखकर मनुष्योंको पहले कुछ आश्चर्य हुआ, कुछ सुख भी मिला। लेकिन शीघ्र ही ये दीपक उनके लिए सुपरिचित और पुराने हो गये—क्योंकि ये केवल दो ही थे; और वे लोग इनकी ओरसे उदासीन हो गये। भय और नींदकी प्रवृत्तियोंने उनपर अपना पूर्ववत् अधिकार कर लिया। उनकी स्वर्गाभिमुखी दृष्टि न जगी।

विधाताने दूसरी बार देवताओंकी सभा की और अबकी बार एक दूसरे देवताने इस समस्याको हल करनेके लिए अपनी सेवाएँ प्रस्तुत की।

देवताओंकी तुमुल हर्षध्वनिके बीच वह उठा और पहले देवताके टाँगे हुए दोनों चन्द्रमाओंमेंसे एकके उसने टुकड़े-टुकड़े कर दिये और उन असंख्य टुकड़ोंको धरतीके ऊपरवाले आकाशमें बिखेर दिया। दूसरा चन्द्रमा पूर्ववत् अपने स्थानपर रहा आया।

अगली रात मनुष्योंने समूचे आकाशमें टिमटिमाते असंख्य तारोंको देखा और देखते ही रह गये। इन छोटे-छोटे सुन्दर तारोंने उनका कुतूहल जगा, आकर्षण बढ़ा और नींद तथा भयकी प्रवृत्तियोंको बहुत कुछ वशमें करके उनका अपनी आकाश-दृष्टिके साथ जाग्रत रहनेका क्रम चल पड़ा। विधाता तथा देवताओंने इस दूसरे देवताका विशेष रूपसे अभिनन्दन किया।

कहते हैं, पृथ्वीपर मानव-जातिके बीच भी उन दोनों देवताओंके वंश बराबर चल रहे हैं और पहलेके वंशज सन्त और दूसरेके कलाकार कहलाते हैं।

धर्म और प्रकृति

धर्माचार्योंके अथक प्रयत्नोंसे अधर्म और उच्छृङ्खलताकी ओर बढ़ता हुआ समय रुक गया और धर्मका पावन-युग धरतीपर लौट आया। सुनीति और सदाचारका पृथ्वीपर राज्य हो गया और धर्माचार्योंने पुरातन अनुष्ठानोंका पुनरुद्धार कर प्रकृति और देवताओंका खोया हुआ सहयोग फिरसे प्राप्त कर लिया।

कुछ समय पीछे एक बार धर्माचार्योंने जन्म-कुण्डलियोंके सभी ग्रहोंका विधिवत् मिलान करके एक तरुणीका एक पुरुषके साथ धर्म विवाह कराया।

यथा समय इस दम्पतीके घर एक पुत्र-रत्नका जन्म हुआ—स्वस्थ, सुदृढ किन्तु अत्यन्त कुरूप। धर्माचार्योंने एक बार और उनके ग्रहोंका निरीक्षण किया और उन्हें उस पुत्रपर सन्तोष करनेका आदेश दिया। उन्होंने बताया कि इससे उत्तम सन्तानका योग उसके ग्रहोंमें नहीं है।

इस बालकको एक वर्षका छोड़कर उसका पिता कार्य-वश कुछ वर्षोंके लिए परदेश चला गया।

तीसरे वर्ष उस स्त्रीके गर्भसे एक और पुत्रका जन्म हुआ—स्वस्थ, सुदर्शन और असाधारण रूपवान्।

धर्माचार्योंका रोष जगा और उन्होंने इस कलंकिनी स्त्रीको महादण्ड देनेसे पूर्व प्रकृतिकी देवीको भी यथोचित दण्ड दिलानेका निश्चय किया। प्रकृतिने इस स्त्रीके इस अवैध एवं अधर्म पुत्रको इतना सुन्दर बनानेकी धृष्टता जो की थी!

धर्माचार्योंने धर्मकी अधिष्ठात्रीदेवी भगवती गायत्रीका अनुष्ठान-पूर्वक आवाहनकर उसके सामने प्रकृति देवीके इस अन्याय पर अपने विरोध-पूर्ण असन्तोषका निवेदन किया।

भगवती गायत्रीने कहा : "मैं अभी प्रकृति-देवीको तुम्हारे सामने उपस्थित होनेका आदेश देती हूँ। तुम स्वयं उससे इस घटनाका स्पष्टीकरण माँग सकते हो।"

भगवती गायत्रीके संकेतपर प्रकृतिकी देवी तुरन्त वहाँ प्रकट हो गई। आरोपका उत्तर देते हुए उसने कहा :

"इस तरुणीका विवाह धर्माचार्योंने इसके सौर-ग्रहोंके अनुकूल, किन्तु शरीर एवं भाव-प्रकृतिसे सम्बद्ध भौम-ग्रहके सर्वथा प्रतिकूल कराया था। वह विवाह इस युवतीकी रुचि और मनोगत स्नेहके सर्वथा विपरीत था, और ऐसे विवशता-पूर्ण संयोगसे उत्पन्न सन्तान कुरूपसे भिन्न नहीं हो सकती थी। अबकी बार इस युवतीको अपने प्रिय, मनोनीत प्रेमीके सहज सत्कारसे इस पुत्रकी प्राप्ति हुई है और मैं निष्प्रयास ही इस बालकको सर्वांग सुन्दर बनानेमें सफल हुई हूँ। मेरी दृष्टिमें तो वह पहला विवाह अवैध और यह दूसरा संयोग ही वैध है। मेरी कृतिका मार्ग तो ऐसा ही है। यदि इन धर्माचार्योंको इससे विरोध है तो ये स्वयं ही गर्भस्थ शिशुओंके शरीर-निर्माणका कार्य अपने हाथमें ले सकते हैं। मुझे यह कार्य इनके हाथों सौंपनेमें कोई आपत्ति नहीं है।"

धर्माचार्योंको गर्भस्थ शिशुओंके शरीर-निर्माणकी युक्ति ज्ञात न थी, अतः वे प्रकृति-देवीको अपने धर्म-राज्यसे पृथक् न कर सके। भगवती गायत्रीके दरबारमें धर्माचार्योंकी इस हारसे प्रकृति-देवीको नया प्रोत्साहन मिला और उसने बहुत-से अनमेल, विवशता-जनित "वैध" विवाहोंकी अवहेलना करके सुविधा-जनक संयोग-नियोगोंका प्रचलन करा दिया। प्रकृतिकी आरोपित धर्मपर जीत हुई और धरतीका युग तथाकथित धर्मसे पलटकर, अधर्मकी सीमाओंको पार करता हुआ धर्म और अधर्मसे स्वतन्त्र सुन्दरतर मानवताकी ओर बढ़ चला।

उलटी गङ्गा

पति-पत्नीका एक जोड़ा अत्यन्त सुखी और धर्म-निष्ठ था। उनका पारस्परिक प्रेम और सेवा-भाव असाधारण था। संयोगवश एक कठिन रोगके आक्रमणसे पतिकी मृत्यु हो गई। पतिके घर वालोंने उस महिलाके सिरका सिन्दूर पोंछ दिया, आभूषण उतरवा दिये और कहा कि वह उनके कुलका घात करनेवाली विधवा है और उसने अपने दुर्भाग्यकी उदर-ज्वाला शान्त करनेके लिए अपने पतिको खा लिया है।

महिलाने कुछ समयतक इस अपमानका विरोध किया, लेकिन जब इस विरोधकी प्रतिक्रिया और भी उग्र होकर उसपर लौटी तो वह उसे सह न सकी और क्लेश और रोषके आवेशमें एक दिन चुपचाप उसने आत्म-हत्या कर ली।

शरीरसे मुक्त होकर जब वह स्वर्गमें पहुँची तब भी उसका क्रोध और दुःख कम नहीं था। स्वर्गके स्वागताधिकारी द्वारा प्रस्तुत किये हुये सत्कारों को ग्रहण करनेसे इनकार कर अपनी सारी कथा बताते हुए उसने कहा:

"मैंने अपने पतिकी अन्तिम श्वासतक अपने सच्चे तन-मनसे सेवा की है। उनके प्रस्थानके बाद मुझपर यह जो कृतघ्नता-पूर्ण अत्याचार हुआ है इसका उत्तरदायी कौन है? मैं पहले इस अनाचारका न्याय चाहती हूँ और उसके बाद ही आपकी दी हुई खान-पान-विश्रामकी सुवि-धाएँ स्वीकार कर सकती हूँ।"

स्वागताधिकारीके कार्यालयमें खलबली मच गई। ऐसी पति-परायणा और धर्मनिष्ठा महिलाके प्रति मनुष्योंका ऐसा व्यवहार सचमुच अत्यन्त बर्बरता-पूर्ण और अक्षम्य था। भू-लोककी पत्नियोंके विधवा होनेपर उनके प्रति ऐसी कुटिल धारणा और ऐसे कठोर व्यवहारका समर्थक कोई आदेश-पत्र भूतलके धर्माधिकारियोंके नाम कभी भी जारी नहीं किया गया था।

देवताओंको इस महिलाके प्रति सहानुभूतिके साथ-साथ इसके साथ मनुष्योंके दुर्व्यवहारसे बहुत क्षोभ भी हुआ।

इस महिलाको धर्मराजके सामने लाकर ले जाया गया और उनकी सभामें इसका मामला पेश हुआ। यह तो निश्चित था कि मनुष्योंके एक विशेष भू-भागमें विधवाओंके प्रति ऐसी कठोर धारणा चल पड़ी थी। लेकिन वह कहाँसे उनके मस्तिष्कोंमें घुस आई थी, यह सभासदोंके लिए एक कुतूहलका विषय था। धर्मराजने इस महिलाको बहुत सान्त्वना देते हुए अपने रिकार्ड-कीपरको आदेश दिया कि वह पुरानी फाइलोंमें खोजकर उस घटनाका विवरण प्रस्तुत करे जिससे इस अनर्थकारी धारणाका मानव-हृदयोंमें सूत्रपात हुआ हो।

बहुत खोजके बाद अन्तमें रिकार्ड-कीपरने एक पुरानी फाइलमेंसे निकालकर यह लेखा सभामें प्रस्तुत किया :

"पृथ्वीके लोग धर्मनिष्ठ थे और उनका दाम्पत्य जीवन अत्यन्त सुखी था। पत्नियोंमें सेवा-भाव अधिक था और वे साधना करके देवताओंसे यह वरदान प्राप्त कर लेती थीं कि वे अपने पतिकी भू-लोक-वासके अन्तिम समय तक सेवाकर उसे सुख-पूर्वक संसारसे विदा करें और तत्पश्चात् अपना शेष कार्य पूरा करके, स्वर्गमें आकर अपने पतिके साहचर्यका सुख प्राप्त करें। पृथ्वीका यह दाम्पत्य-जीवन देव-दम्पतियोंके लिए भी स्पर्द्धाकी वस्तु बन गया था। एक बार एक स्त्री, जो स्वभावसे प्रमादिनी और कर्कशा थी, अपने असहाय पतिको पृथ्वीपर छोड़कर पहले ही स्वर्ग चली आई। भू-लोककी महिलाओंने उसके इस व्यवहारकी बड़ी निन्दा की। इस निन्दासे वह और भी क्रुद्ध हुई और उसने अपने भू-देशकी सच्ची स्त्री-जातिसे इसका बदला लेने और उसे दाम्पत्य-जीवनके सच्चे सुख और पुण्यसे वंचित करनेका निश्चय किया। स्वर्गमें रहते हुए उसने अपने देशकी कुछ आलस्य-प्रमाद-प्रिय, कर्कश स्वभाव वाली स्त्रियोंके मस्तिष्कोंको और इस

उलटी विचारधाराको प्रवाहित करना प्रारम्भ कर दिया कि भू-लोकके कठिन जीवनमें अन्तिम समयपर पतिसे सेवा लेना और उसे छोड़कर अपने सुखके लिए पहले ही परलोक-गमन करना स्त्रीके लिए सौभाग्यकी बात है और जो इस सौभाग्यको प्राप्त न करे वह दुर्भागिनी, कुल-घातिनी और तिरस्कारकी अधिकारिणी है। उस स्त्रीका यह प्रयास भू-लोकमें धीरे-धीरे जड़ पकड़ गया और स्त्रियोंका ही नहीं, पुरुषोंका भी एक विचार-हीन वर्ग इस उलटी गङ्गाका संग्राहक बन गया।"

धर्मराजने इस पति-प्रेमा तेजस्विनी महिलाके क्षोभका अभिनन्दन करते हुए उससे कहा :

"तुम्हारे क्षोभसे भू-लोकके एक विस्तृत धर्म-विगलित भागमें प्रचलित एक बड़ी अनर्थ-मूलक धारणाकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट हुआ है। हम इसके निराकरणका प्रबन्ध करेंगे और मानव-समाजमें उन पूर्ण पतिव्रता पत्नियोंकी यथोचित प्रतिष्ठाका निर्देशन करेंगे जो अपने पतियोंकी अन्तिम श्वासतक सेवा करनेका व्रत पूरा करती हैं।"

सुहागका वरदान

आर्योंके उन प्रसन्न दलने एक बड़ा यज्ञ किया। स्त्री, पुरुष सभी उस यज्ञमें सम्मिलित थे। देवता भी उसमें निमन्त्रित थे। यज्ञको सम्पूर्ण करते हुए आर्योंने अपने समाजकी हित-साधना और कर्तव्य-भारको दृष्टिमें रखते हुए कहा: "जीवेम शरदः शतम्—हम सौ शरद् ऋतुओं तक जीवें।" उनकी आयुके संरक्षणका काम देवताओंका था। उन्होंने कहा: "तथास्तु—ऐसा ही हो।"

पुरुष और स्त्री सभी सौ-सौ वर्ष तक जीवित रहने लगे। पुरुषोंका एक छोटा-सा दल जब सौ वर्षकी आयुपर पहुँचा तब उसने अपने पार्थिव शरीरका विसर्जन किया। उस दलके पुरुषोंकी पत्नियाँ आयुमें उनसे कुछ कम थीं—उनके सौ वर्ष पूरे होनेमें कुछ वर्ष शेष थे। उन्होंने उत्साह-पूर्वक अपने पतियोंको मङ्गल-कामनाओंके साथ विदाई दी।

एक लम्बे युग तक यह क्रम चलता रहा। परलोक-यात्रामें पति आगे जाता और स्त्री उसके कुछ वर्ष पीछे अपनी शतवर्षा आयु पूरी करके उसका अनुगमन करती। इन बीचके वर्षोंमें वह अपने पुत्रों और पौत्रों के प्रति शेष उत्तरदायित्वको पूरा कर देती थी। वह नारीके आत्यन्तिक सम्मानका युग था।

समय बदला और पति-पत्नीके सम्बन्धोंमें स्वार्थ और कुटिलताने प्रवेश किया। अधिकार और सेवा-लाभकी भावना उनमें जाग्रत हुई। स्त्रीकी सङ्कीर्णता बढ़ी, लेकिन पुरुष फिर भी कुछ उदार रहा। स्त्रीने कहा: "मुझे आजीवन तुम्हारे संरक्षण और तुम्हारी सेवाओंकी आवश्यकता है।" पुरुषने कहा: "इसके लिए तुम कोई उपाय कर सकती हो तो मुझे कोई आपत्ति न होगी।"

स्त्रियोंके एक बड़े दलने एक दूसरा यज्ञ किया। देवता भी निमन्त्रित थे। अपना अभिप्राय उन्होंने देवताओंके सम्मुख रखते हुए कहा : "हम आजीवन सधवा रहना चाहती हैं, पुरुषके बिना एक दिन भी इस संसार में जीना नहीं चाहतीं।"

देवताओंने इसका उपाय प्रस्तुत किया : "आप लोग अपनीसे कम आयुके पुरुषके साथ विवाह करें, आप सहज ही अपने पतियोंसे पहले देहत्याग करेंगी।"

एक युग तक इस उपायका प्रयोग चला। स्त्रियोंका वैधव्य समाप्त हो गया—पुरुषोंसे पहले ही उनका देह-त्याग होने लगा किन्तु उनका यौन-जीवन विषम हो गया—अपूर्ण, अतुष्टिकर और क्लेश-पूर्ण भी। सन्तानें भी दुर्बल, और असुन्दर होने लगीं। यह व्यवस्था वास्तवमें मनुष्योंकी देहप्रकृतिके विरुद्ध थी। पुरुषको अपने वंश-क्षेमकी चिन्ता हुई।

पुरुषोंने तीसरा यज्ञ रचाया। देवताओंने पुरानी व्यवस्था फिरसे प्रचलित करनेकी सलाह दी। "स्त्री अपनी आयुसे बड़े पुरुषका वरण करे। पतिके प्रस्थानके पश्चात् यदि उसमें लौकिक कर्त्तव्य-भार पूरा करने की क्षमता न हो तो वह अग्नि-चिताको अपना शरीर सौंपकर पतिके साथ ही स्वर्ग आ सकती है।"

वैवाहिक आयुकी व्यवस्था पलट गई। कुछ स्त्रियोंने पतिके पीछे अग्निमें जलकर देह-त्यागका साहस किया; किन्तु यह कार्य उनके लिए और भी कठिन पड़ा। इस प्रथाका प्रचलन अधिक न हो पाया।

चौथी बार स्त्रियोंने यज्ञ किया और देवताओंसे इस समस्याको सुलझानेकी प्रार्थना की। देवताओंने कहा :

"सबसे अच्छी व्यवस्था तो सबसे पहलीवाली ही थी। लेकिन यदि आप लोगोंको आजीवन सधवा रहनेका इतना मोह है तो इसका एक यही उपाय हो सकता है कि पृथ्वीपर कुछ ऐसे रोगोंका प्रचलन कर दिया जाय जो

मानव-जातिको दुर्बल और अल्प-जीवी बनानेमें सफल हों। उस दशामें यह सम्भावना हो जायगी कि आपमेंसे जो स्त्रियाँ कुछ छोटे व्रत-अनुष्ठान कर लेंगी वे अपने पतिसे भी पहले मर्त्यलोकसे छुटकारा पा सकेंगी।"

स्त्रियोंने प्रसन्न होकर कहा : "बस-बस, महाराज! आप हमें यही वरदान दीजिए। पृथ्वीपर रोगोंका शीघ्रसे शीघ्र प्रचलन कर दीजिए; हम आजीवन सधवा रहनेके लिए आवश्यक व्रत-अनुष्ठान कर लेंगी।"

पुरुषोंने भी, जो अपनी पत्नियों द्वारा निमन्त्रित उस यज्ञ-शालाकी पिछली पंक्तियोंमें बैठे थे, अपनी प्रमाद-सुलभ उदारता-वश इसके लिए अपनी अनुमति दे दी!

इस प्रकार स्त्रियोंकी अखण्ड सुहागकी कामना कुछ पूरी हुई, लेकिन किस सीमा तक और किस मूल्यपर—यह स्त्रियोंके ही खोजने और सोचने की बात है।

ममताका दाग़

स्वर्गमें पहुँचकर अपनी लम्बी यात्राकी थकान मिटानेके लिए हम जब आवश्यक विश्राम कर चुके तब एक देवदूतने आकर हमसे कहा :

"आप स्वर्गकी सैर करना चाहें या यहाँकी किसी विशेष वस्तुको देखना चाहें तो मेरे साथ चल सकते हैं।"

मेरी इच्छा तो उस समय स्वर्गके अपने नव-परिचित पड़ोसियोंसे कुछ बात-चीत करनेकी ही थी, किन्तु मेरी पत्नीने कहा :

"मैं अपने बच्चोंको देखना चाहती हूँ। अगर वे दुबारा संसारमें जन्म न ले चुके हों तो—"

"इतनी जल्द दुबारा जन्म लेनेका क्या काम !" देवदूतने कहा, "आइये, पहले आप अपने बच्चोंको ही देखिए।"

एक छोटे-से आकाश-यानमें बैठकर अपने पथ-प्रदर्शकके साथ हम स्वर्गलोकके शिशु-नगरमें जा पहुँचे।

वहाँ सहस्रों मानव-शिशु अपनी स्वर्गिक धायाओंकी गोदमें खेल रहे थे। देवदूतके संकेतपर पाँच धायाएँ एक-एक बच्चेको लिये हमारी ओर बढ़ आईं।

"यह आपका पहला बच्चा है" पहली देव धायाने अपने सरक्षित बालककी ओर संकेत करके कहा।

हमने पहचाना, डेढ़ वर्षकी आयुमें स्वर्गकी यात्रा करनेवाला वह बालक अब भी उसी आयु और उसी रूपका था, अलबत्ता उसका रूप अब और भी निखरा हुआ तथा प्रसन्न था। अपनी स्वर्ग-माताकी उँगली पकड़कर खड़ा हुआ वह हमारी ओर आश्चर्य-चकित, कुछ पहचानती-सी दृष्टिसे देख रहा था।

"यह आपका दूसरा बच्चा है।" दूसरी देवांगनाने अपनी गोदके आठ दिनकी आयुवाले शिशुको दिखाते हुए कहा। उसे भी हमने पहचान लिया।

"यह आपकी तीसरी बच्ची है।" तीसरी स्वर्ग-सुन्दरीने अपनी गोदकी चार महीनेकी बच्चीको दिखाते हुए कहा।

"यह आपकी चौथी बच्ची है।" चौथी देव-धायाने अपनी गोदकी आठ महीनेकी बच्चीको दिखाते हुए कहा।

"यह आपकी छठी बच्ची है।" पाँचवीं देव-ललनाने अपनी पीठपर सवार, विशेष चपल, सालभरकी बच्चीकी ओर संकेत करके कहा. "आप चाहें तो मैं इस बच्चीको कभी-कभी कुछ समयके लिए आपके पास छोड़ सकती हूँ।"

"मैं यही चाहती हूँ। मैं अपने सभी बच्चोंको यहाँ अपने साथ रखना चाहती हूँ।" मेरी पत्नीने दूसरा वाक्य सभी धायाओंको लक्ष्यकर कहा।

"यह सम्भव नहीं है!" पहली चारों धायाओंने एक स्वरमें कहा, और उनमेंसे एकने इसका कारण भी प्रकट किया: "इन बच्चोंके स्वर्गारोहणके पश्चात् आपने अपने स्वार्थ-मोह-पूर्ण रुदन द्वारा इनके मस्तकों पर जो घाव कर दिये थे उन्हें हमने ठीक तो कर लिया है पर उनके दाग अभी तक मिटे नहीं हैं। इन बच्चोंको आपने क्षति पहुँची है और इसीलिए इन्हें आपके पास छोड़नेकी हमें आज्ञा नहीं है।"

हमने अब देखा, पहले चारों बच्चोंके माथोंपर सचमुच घावके बड़े-बड़े भद्दे दाग़ थे और यदि वे उनके चेहरोंपर न होते तो सचमुच उनकी सौन्दर्य अनिंद्य होता। छठी बच्चीकी मृत्युपर हमने कुछ उसकी लम्बी रुग्णता और कुछ अपनी समझदारीके कारण वैसा दुःख नहीं माना था इसीलिए उनके स्वर्गिक शरीरपर कोई वैसा दाग़ नहीं आने पाया था।

सूरजका पर्दा

धरती जब सूर्यके सामने अपनी धुरीपर घूमते-घूमते सात नील दिन और उतनी ही रातोंकी यात्रा पूरी कर चुकी तब उसके कुछ पुर्जे ढीले होगये और उसमें कुछ मरम्मतकी आवश्यकता हुई।

धरतीके शिल्पी देवताओंने हिसाब लगाकर बताया, इस मरम्मतके लिए पृथ्वीको तीन दिन और तीन रातोंके बराबर समय तकके लिए अपनी यात्रा रोकनी पड़ेगी और इसका अर्थ यह होगा कि पृथ्वीके एक गोलार्द्धपर नियमितसे छह गुना दिन और दूसरे गोलार्द्धपर छह गुनी रात होगी।

सौर मण्डलके अधिष्ठाता विवस्वान् देवने अन्तरिक्षके एक केन्द्रीय नक्षत्रमें देवताओंकी सभा की। समस्या यह थी कि आवश्यक मरम्मतके लिए धरती तीन दिनतक ठहरा दी जाय, इसमें तो कोई हानि नहीं, लेकिन इससे उसके एक गोलार्द्धपर जो छह गुना दिन और दूसरेपर छह गुनी रात हो जायगी उससे धरतीके प्राणियों—विशेषकर मानव-जनोंपर जो आतंक छा जायगा और प्रकृतिकी नियमिततापर उन्हें जो अविश्वास हो जायगा उसका परिणाम बहुत ही घातक होगा। आवश्यकता इस बातकी थी कि धरतीके जीवोंको धरतीके इस स्तम्भनका पता न लग पाये और काम भी पूरा होजाय।

बड़े-बड़े प्रकाश-पुञ्ज नक्षत्रोंके अधिष्ठाता देवताओंने अपनी-अपनी सेवाएँ प्रस्तुत करते हुए अपना सम्पूर्ण बुद्धि-बल लगाकर देखा, पर वे इस समस्याका हल नहीं निकाल सके। उनमेंसे अनेक यह तो कर सकते थे कि अपने नक्षत्रका एक बड़ा प्रतिबिम्ब धरतीके समीप लाकर उसके निम्नार्द्ध—सूर्यसे विमुख—भागके सामने एक कृत्रिम सूर्यके रूपमें सूर्यकी-सी गतिसे चालित करें और उस गोलार्द्धके निवासियोंको उस दीर्घ रात्रिका पता न

लगने दें, पर सूर्यके सामनेवाले गोलार्द्धके वासियोंके लिए कुछ करनेका साधन उनके हाथमें कोई नहीं था।

अन्तमें जब सभी अगली पंक्तियोंके बड़े देवता अपनी असमर्थता प्रकट कर चुके तब सबसे अन्तिम पंक्तिमें बैठा हुआ एक बहुत ही छोटा, ज्योति-हीन, वरुण नामका मेघोंका देवता उठा और उसने इस परिस्थितिको साध लेनेके लिए अपनी सेवाएँ प्रस्तुत कीं।

बड़े देवताओंको वरुणके इस साहसपर आश्चर्य हुआ और उन्होंने उसके प्रस्तावको एक धृष्टता-पूर्ण दुस्साहस समझा। किन्तु वरुणने विवस्वान् देवसे विश्वास-पूर्ण शब्दोंमें निवेदन किया कि वे धरतीके शिल्पी देवताओंको अपना कार्य प्रारम्भ करनेकी आज्ञा दें और उन्हें आश्वासन दिया कि शेष अव्यवस्थाको वह सहज ही सम्हाल लेगा।

विवस्वान् देवकी आज्ञा लेकर वरुणने पृथ्वीके दोनों गोलार्द्धोंके आकाशको घने बादलोंसे पाट दिया और तबतक उन्हें वहीं रोके रक्खा जबतक शिल्पी देवोंने धरतीकी मरम्मतका अपना काम पूरा न कर लिया। इतने दीर्घकाल तक मेघाच्छन्न आकाश पृथ्वीके निवासियोंके लिए एक अदृष्ट-पूर्ण घटना थी, पर इसमें उनके लिए कोई अकल्पित-पूर्व या आतंकित करनेवाली बात नहीं थी। वरुणके इस कौशलसे उन्हें दिन और रातके स्तम्भनका कोई पता नहीं लग पाया और वे अपने कृत्रिम ताप-प्रकाशमें स्वाभाविक दिन-रातकी भाँति काम करते रहे।

लघुका काम गुरुसे और अन्धकारका काम प्रकाशसे यदि होने लगे तो प्रकृतिकी व्यवस्थामें लघु और अन्धकारका स्थान ही क्या रह जाय!

दूरकर्मी

देशके दो सुपरिचित नगर-शिल्पियोंने एक बार राजाके दरबारमें नौकरीके लिए आवेदन किया। राजाने दोनोंको दरबारमें बुलाया और उनसे उनके कार्य, वेतन आदिके बारेमें पूछ-ताछ की।

पहले शिल्पीने कहा: "महाराज, मैं आपकी आज्ञानुसार नये-नये नगरोंका निर्माण करूँगा और एक सहस्र स्वर्ण-मुद्राएँ प्रति मास वेतन लूँगा: और मेरे कामपर आप जो भी समय-समयपर मेरे वेतनमें वृद्धि करेंगे उसे कृतज्ञ-भावसे स्वीकार करूँगा।"

राजाने इसकी शर्तोंपर इसे नियुक्त कर लिया।

दूसरे शिल्पीने कहा: "महाराज, मैं अपनी स्वतन्त्र इच्छानुसार आपकी जो भी सेवा कर सकूँगा, करूँगा और एक सहस्र स्वर्णमुद्राएँ प्रति मास वेतन लूँगा। हर सातवें वर्ष मैं अपना कार्य आपके निरीक्षणके लिए प्रस्तुत करूँगा और जब तक आप मुझे अपनी सेवामें रक्खेंगे, हर सातवें वर्ष अपने वेतनमें एक सहस्र स्वर्णमुद्राओंकी वृद्धि चाहूँगा।"

राजाने इसे भी इसकी मुँहमाँगी शर्तपर नौकर रख लिया।

पहले शिल्पीने राजाकी आज्ञानुसार सात वर्षमे एक छोटा सा सुन्दर नगर बना दिया और दूसरेने एक घने वनको साफ कराकर उसकी जगह एक बहुत बड़ा सुन्दर-सा उपवन लगाना प्रारम्भ किया। सात वर्षमें पहले शिल्पीका नगर तैयार हो गया किन्तु दूसरेका उपवन अधूरा ही रहा। दोनों शिल्पियोंने राजाको ले जाकर अपना-अपना कार्य दिखाया। राजाने पहले शिल्पीके वेतनमें सौ स्वर्ण-मुद्राओंकी तथा, निश्चयानुसार, दूसरेके वेतनमें सहस्र मुद्राओंकी वृद्धि करदी। राजाके इस कार्यसे सभी दरबारियों को आश्चर्य तथा पहले शिल्पीको कुछ असन्तोष भी हुआ।

राजाने पहले शिल्पीको एक दूसरा नगर बसानेकी आज्ञा दी और दूसरा शिल्पी अपनी इच्छानुसार कार्यमें लग गया। अगले सात वर्षोंमें

पहलेने एक दूसरा नगर बनाकर तैयार कर दिया, लेकिन दूसरेने अपने उपवनके निर्माण-कार्यको अधूरा ही छोड़कर उनके मध्य भागमें एक नगर बसानेका काम प्रारम्भ किया। उस नगरकी निर्धारित रूप-रेखाके अनुसार कुछ ही भवन उस नगरमें बन पाये थे कि सात वर्ष पूरे हो गये। दोनों शिल्पियोंने राजाको लाकर अपने-अपने कार्योंका निरीक्षण कराया। राजाने इस बार भी दोनोंके कार्योंकी सराहना करते हुए पहले के वेतनमें सौ मुद्राओंकी तथा दूसरेके वेतनमें सहस्र मुद्राओंकी वृद्धि कर दी। दूसरे शिल्पीने अपने पहले कामको अधूरा ही छोड़ दिया था और उसका दूसरा काम भी अभी बहुत अपूर्ण था: ऐसी स्थितिमें राजाका उसके प्रति ऐसा उदार-भाव सभीको बहुत अप्रिय लगा।

अगले सात वर्षोंमें पहले शिल्पीने एक तीसरा, नये नमूनेका नगर तैयार कर दिया और दूसरेने अपने नगरकी इमारतोंका काम वहीं रोककर उनके मध्यवर्ती क्षेत्रमें एक बड़ा जलाशय बनवानेका कार्य प्रारम्भ कर दिया। राजाने पहले शिल्पीके पूर्ण-निर्मित नगर और दूसरेके अधबने जलाशयका निरीक्षण किया और पूर्ववत पहले के वेतनमें सौ तथा दूसरेके में सहस्र मुद्राओंकी वृद्धि कर दी। कुछ लोगोंने समझा कि राजाको दूसरे शिल्पीका अन्यायपूर्ण पक्षपात है और कुछने समझा कि उनका मस्तिष्क विकृत हो गया है जो वह इस दूसरे शिल्पीके हाथों अधूरे कामोंपर इतना धन व्यय करके भी इस अपूर्ण-कर्मा कारीगरका वेतन बढ़ाये चला जा रहा है; और कुछ लोग जो राजाकी असाधारण बुद्धिमत्तामें विश्वास रखते थे उनके अभिप्रायको जाननेकी प्रतीक्षा करने लगे।

अगले सात वर्षोंमें पहले शिल्पीने एक चौथा और भी सुन्दर नगर निर्मित कर दिया और दूसरेने जलाशयके घाटोंको अधबना ही छोड़कर उसके मध्य भागमें एक सुन्दर समाधिके नमूनेका श्वेत महल बनवाना प्रारम्भ किया।

राजाने दोनोके कार्योंका निरीक्षण कर पूर्ववत् ही दोनोंके वेतनोंमें वृद्धि कर दी।

अगले सात वर्षोंमें पहले शिल्पीने राजाकी आज्ञासे एक पाँचवे नगर का निर्माण किया और दूसरा उस जलाशयकी मध्यस्थलीमे उस श्वेत महल को पूरा करनेमें लगा रहा।

राजा, जो उस समय तक बहुत बूढ़ा हो गया था, अपने दरबारियो सहित पहले पहले शिल्पीके नये नगरको देखने गया और फिर दूसरे शिल्पीके श्वेत महलका निरीक्षण करने पहुँचा। यह महल अटूट साम-ग्रियो और अनुपम शैलीका बना हुआ तैयार हो गया था।

राजाने इसे पूरी तरह देख चुकनेके पश्चात् दरबारियोसे कहा :

'पहले शिल्पीने पैंतीस वर्षके सेवा-कालमें मेरी आज्ञा और इच्छाके अनुकूल पॉच नगर बसाये हैं। ये पॉचो पाँच-पॉच सहस्र वर्ष तक स्थिर रहेंगे और उस दीर्घ काल तक मेरी और मेरे राज्यके भावी विजेताओंकी प्रजाएँ इनमे सुख-पूर्वक निवास करेंगी। लेकिन दूसरे शिल्पीने इतने समयमे एक ही उपवन-नगरकी नींव डाली है और उसके उपवन, भवन और जलाशयका नमूनेका ही कुछ कार्य पूरा किया है। जलाशयके बीच उसने जिस असाधारण रूपसे सुदृढ़ और सुन्दर भवनका निर्माण किया है उसे लाखो वर्षों बाद पृथ्वीका कोई प्रलय ही नष्ट कर सकेगा। इस शिल्पीकी दी हुई रूप रेखापर दूसरे शिल्पी इसके छोड़े हुए कार्योंको सौ-पचास वर्षमे सहज ही पूरा कर सकेगे और इसके मध्य-महलमें स्थापित मेरी समाधि लाखो वर्ष तक देश-विदेशके आगन्तुकोंका स्वागत करती हुई उन्हे मेरी तथा मेरी स्वजन प्रजाकी याद दिलायेगी। यह शिल्पी दूर-दर्शी और दूरकर्मा है और इसने स्वेच्छासे एक भावी विशाल नगरके बीच इस भवनका निर्माण मेरे चिर-निवासके लिए किया है। मुझे आशा है कि मैंने इस शिल्पीकी इच्छा, योग्यता और कृतिका ठीक ही मूल्याकन किया है।"

ओटका मूल्य

किसी नगरमें एक उद्योग-पतिका चमड़ेका एक बड़ा कारखाना था। कारखानेके कर्मचारियोंने एक बार मालिकसे असन्तुष्ट होकर वेतनमें पच्चीस प्रतिशत वृद्धिकी मॉग की और जब उसने इतना वेतन बढ़ानेमें अपनी असमर्थता प्रकट की तो उन्होंने मिलकर हड़ताल कर दी। हड़तालका निपटारा होते-होते पचास कर्मचारियोंने उस कारखानेकी नौकरी छोड़ दी।

इन पचास जगहोंकी पूर्ति करके कामको कुछ और बढ़ानेके विचारसे उद्योग-पतिने नगरके समाचार-पत्रोंमें विज्ञापन छपवाया कि उसे कारखानेके लिए एक-सौ नये आदमियोंकी आवश्यकता है। इनका वेतन उसने पिछले आदमियोंसे तीस प्रतिशत अधिक विज्ञापित किया।

इसपर पॉच हजारके लगभग अर्जियॉ उसके पास आ गईं।

उद्योग-पतिने इन सभी प्रार्थियोंको एक निश्चित दिन बुलवाया और उनसे कहा कि वे लोग अपने प्रार्थना-पत्रोंके साथ, मनुष्योंके किसी सुयोग्य पारखी व्यक्तिसे प्राप्तकर, अपनी भलमनसाहतका भी प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करें।

स्वभावतया सभी प्रार्थियोंके मनमें यह प्रश्न उठा कि नगरमें ऐसा कौन-सा व्यक्ति है जो मनुष्योंका सुयोग्य पारखी है और उनके भलमनसाहत का प्रमाण-पत्र दे सकता है। उनमेंसे कुछने यह प्रश्न उद्योग-पतिसे पूछ भी लिया।

उद्योग-पतिने कहा कि अमुक हाटके भीतर, अमुक गलीके बगलमें जूतोंकी मरम्मत करनेवाला जो मोची बैठता है उसका दिया हुआ प्रमाण-पत्र उसे मान्य होगा।

उस मोचीको उनमेंसे अधिकांश प्रार्थियोंने गलीके किनारे बैठे, राह-गीरोंके जूते गॉठते देखा था। उनका उससे कोई व्यक्तिगत परिचय नहीं था। वह कैसे उनकी भलमनसाहतकी परख करेगा और क्योंकर उन्हें

उसका प्रमाण-पत्र देगा—इस संदेहको लिये हुए भी वे सभी लोग अगले दिन उसके पास पहुँचे ।

मोचीने बिना कुछ कहे-सुने उन सभीको काग़ज़के एक-एक टुकड़ेपर उनके नामके आगे एक-एक शब्द लिखकर दे दिया । इन परचोंपर निम्नलिखित चार शब्दोंमेंसे कोई-न-कोई एक शब्द लिखा था—

१—बहुत भला, २—भला, ३—साधारण, ४—संदिग्ध ।

प्रार्थियोंमेंसे जिनको 'संदिग्ध' के प्रमाण-पत्र मिले थे, उनमेंसे बहुत कम और शेषमेंसे अधिकांश उद्योगपतिके पास उन प्रमाण-पत्रोंको लेकर पहुँचे ।

प्रथम कोटिका—'बहुत भला'का—प्रमाण-पत्र पानेवालोंकी संख्या लगभग एक सहस्र थी । इन्हींमेंसे सौको छाँटकर उद्योगपतिने नौकर रख लिया ।

सारे नगरमें इस 'मनुष्योंके महान् पारखी' मोचीकी चर्चा फैल गई; और जिन्हें उसने प्रथम कोटिका प्रमाण-पत्र दिया था वे सभी उसके प्रशंसक और जिन सौ को नौकरी मिल गई थी वे उसके भक्त ही हो गये ।

कुछ ही दिनों बाद उस उद्योग-पतिने घोषित किया कि उसने उस मोचीको अपना परामर्श-मंत्री (एडवाइजिंग सेक्रेटरी) नियुक्त कर लिया है और कार्य-कर्ताओंको नियुक्ति, वेतन-वृद्धि और उन्हें पृथक् करनेके काम आगे उसीके आदेशसे होंगे ।

लेकिन लोगोंने देखा कि इस नियुक्तिके बाद भी वह मोची सारे दिन उसी जगह अपने उसी काममें लगा रहता है ।

उद्योगपतिके बहुतसे कर्मचारी अब उस मोचीके पास जाते, उसकी कुछ प्रशंसा और सेवा-पूजा करना चाहते, उससे कुछ अनुशंसा या लाभ-प्राप्तिकी चर्चा उठाना चाहते पर वह उनका कोई भी सत्कार स्वीकार न करता और उन्हें कोई वचन न देकर उनके प्रति केवल अपनी मंगल-कामना प्रकट करके उन्हें बिदा कर देता ।

इस मोचीके प्रति उनके हृदयोंमें श्रद्धा बढ़ती गई।

अगले वर्ष उद्योग-पतिने घोषित किया कि वह अपने परामर्श मंत्रीके आदेशसे नये नियुक्त सौ कर्मचारियोंके वेतनमें बीस प्रतिशतकी कटौती करके पुराने पाँच सौ कर्मचारियोंके वेतनमें दस प्रतिशतकी वृद्धि करता है।

कारखानेके सभी कर्मचारियोंने इस घोषणाका त्याग और हर्षके साथ स्वागत किया।

उससे अगले वर्ष उद्योगपतिने सभी कर्मचारियोंके वेतनमें पाँच प्रतिशतकी वृद्धि करके, कर्मचारियोंके लिए आयोजित एक प्रीति-भोजमें उनके सहयोग और सद्भावनाकी सराहना करते हुए कहा:

"वह मोची तो मेरे निश्चयोंके लिए केवल एक ओट-स्वरूप साधन था। वास्तवमें जो निर्णय मुझे करने थे वे ही मैंने किये थे। मुझे प्रसन्नता है कि उस मोचीकी ओट लेकर मैं आप लोगोंका, आपके कुछ नादान हित-चिन्तकोंके कारण खोया हुआ, विश्वास फिरसे प्राप्त कर सका हूँ। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि मेरी सदाशयता और शुभैषितामें आप लोगोंका दृढ विश्वास पुनः जाग उठा है और अब मेरे-आपके बीच किसी वैसी ओटकी आवश्यकता नहीं है। मुझे उस दिनकी प्रतीक्षा है जब आप लोगोंके सहयोगसे मैं आपका वेतन आजसे दुगुना और आपका संतोष आजसे चौगुना देखनेका गौरव प्राप्त करूँगा।"

और तालियोंकी गड़गड़ाहटके साथ सभी कर्मचारियोंने अपने सहयोगी उद्योग-पतिके इस वक्तव्यका हार्दिक स्वागत किया।

आदमीका गाहक

एक बार एक तरुण भिक्षुक एक बड़े करोड़पति सेठके द्वारपर पहुँचा। सेठको उसने खञ्जड़ीपर अपने मधुर स्वरमें एक सुन्दर-सा गीत सुनाया। सेठने प्रसन्न होकर उसे भर पेट भोजन कराया और एक रुपया दक्षिणामें देते हुए कहा, "तुम एक अच्छे गायक और प्रसन्न-मुख भिक्षुक हो। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम्हें जब भोजनकी आवश्यकता हो, मेरे घर आ सकते हो।"

भिक्षुकने उसके प्रति कृतज्ञता जताते हुए कहा : "आपने मेरी सबसे बड़ी वस्तु, मेरी प्रसन्नताकी पहचान कर ली। आप बड़े पारखी हैं। क्या आप अपनी आधी सम्पत्ति मुझे देकर मेरी प्रसन्नतामें बराबरका साझा लगाना पसन्द करेंगे?"

सेठ ठठाकर हँसा। उसने भिखारीकी वाक्पटुताकी प्रशंसा करते हुए उसे पाँच रुपये और देकर विदा कर दिया।

अगले वर्ष सेठको व्यापारमें पचास लाखका घाटा हुआ। उसकी सम्पत्ति अब पचास लाखकी ही रह गई। वह बहुत उदास हुआ। इसी समय वह भिखारी फिर उसके पास पहुँचा। खञ्जड़ीपर उसने दूसरा गीत सेठको सुनाया। सेठने उसका पूर्ववत् ही सत्कार किया। चलते समय भिखारीने कहा :

"क्या आप अपनी बची हुई आधी सम्पत्तिमें मुझे आधा हिस्सा देकर मेरी प्रसन्नतामें बराबरका साझा लगाना पसन्द करेंगे?"

सेठका चित्त खिन्न था। "तुम जैसे मस्त साधुओंकी प्रसन्नतामें हम दुनियादार क्या साझा लगायेंगे!" कहकर उसने उसे टाल दिया।

अगले सालके व्यापारमें सेठको फिर पचीस लाखका घाटा हुआ। इस वर्ष भी, व्यवसाय-वर्षके पूजनके दिन भिखारी सेठके पास पहुँचा।

उसकी खबर पाकर सेठने नौकरोंसे कहा कि उसे भोजन कराके और एक रुपया दान देकर विदा कर दें। भिखारीने अपना पुराना सन्देशा नौकरोंके द्वारा कहलाया : 'क्या अब भी आप अपनी बची हुई सम्पत्तिमें से आधी देकर मेरी प्रसन्नतामें आधा साझा करनेके लिए तैयार होंगे?" सेठने इसका कोई उत्तर नहीं भेजा। भिखारी चला गया।

अगले वर्ष सेठको बीस लाखका घाटा हुआ। भिखारीने फिर अपनी नियमित फेरी की। सेठने उसे भोजन करा दिया और उसकी उसी माँगके उत्तरमें कहा :

"मुझे इस समय तुम्हारी प्रसन्नतामें साझा करनेकी नहीं, रुपयोंकी आवश्यकता है। मुझे भय है कि तुम्हारी कुदृष्टिने ही मेरी इतनी अधिक हानि की है।"

भिखारी बिना कुछ उत्तर दिये चला गया।

अगले वर्ष सेठको व्यापारमें फिर छह लाखका घाटा हुआ और वह एक लाखका ऋणी हो गया। उस भिखारीकी इसे अब बहुत याद आई। वर्ष-पूजाके दिन सुबहसे ही वह उसकी प्रतीक्षा करता रहा और दोपहर बाद जब वह आया, उसने विशेष सत्कारके साथ उसका स्वागत किया और अपने साथ ही उसे भोजन कराया। भिखारीने कहा :

"अब भी यदि आप मुझे अपनी आधी सम्पत्ति देकर मेरी प्रसन्नतामें बराबरका साझा करना पसन्द करें तो मैं तैयार हूँ।"

सेठकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने भरे हुए कंठस्वरमें कहा :

"मेरे अपरिचित मित्र, मेरे पास तो अब कुछ भी सम्पत्ति नहीं है। मैं इस समय दूसरे व्यापारियोंका एक लाखका ऋणी हूँ और दिवाला निकालनेके अतिरिक्त मेरे पास अब कोई चारा नहीं है। मैं क्या देकर अब तुम्हारी प्रसन्नतामें हिस्सा लगानेका साहस कर सकता हूँ?"

भिखारीने कहा : "धनी और ऋणीमें मेरी दृष्टिमें कोई मौलिक अन्तर नहीं है। एक लाखका ऋणी होनेके नाते आपकी एक लाखकी सम्पत्ति-

वान् अब भी मै मानता हूँ। अन्तर इतना है कि पिछले वर्ष 'आप पर' पाँच लाख रुपयोंका बोझ था और इस वर्ष केवल एक लाख 'रुपयोंपर आपका' बोझ है। आप चाहें तो आपकी इस ऋणात्मक सम्पत्तिमें भी आधा भाग पाकर मैं सहर्ष अपनी प्रसन्नतामे आपका आधा साझा लगा सकता हूँ।"

भिखारीके इस विचित्र आग्रहपर सेठने अपना आधा कर्ज इस भिखारीके नाम लिख दिया।

अगले दिन वह भिखारी उस कर्जका भुगतान—पचास हजार रुपये—लेकर उसके पास पहुँचा। सेठको बड़ा आश्चर्य हुआ; और आश्चर्यसे भी बड़ा आश्रय मिल गया।

भिखारीने अब उसे अपना परिचय दिया। वह एक दूसरे बड़े सेठका नौकर था और अपने मालिकके लिए कुशल और समझदार व्यवसायियोंकी, उनकी हैसियतके मोलपर, खरीद करना उसका काम था।

कुछ ही महीनोंमें इस 'भिखारी'के मालिकसे प्राप्त पचास हजार रुपयोंसे, उसके साझे और संरक्षणमे एक दूसरा व्यापार प्रारम्भ करके वह सेठ फिरसे एक साधारण कोटिका धनी तथा विशेष कोटिका सम्मानित व्यवसायी बन गया।

इस सेठने अब धीरे-धीरे जाना, एक विशेष प्रकारकी अथक और बुद्धिमत्तापूर्ण प्रसन्नता ही इस भिखारीकी सबसे बड़ी व्यक्तिगत सम्पत्ति थी और इसी गुणके कारण वह अपने मालिककी ऐसी नौकरीपर नियुक्त था।

मनकामेश्वरीका न्याय

किसी नगरके दो पड़ोसी धनी गृहस्थ अपनी-अपनी मनोकामनाएँ लेकर मनकामेश्वरी देवीका तीर्थ करने चले। मनकामेश्वरीके तीर्थकी यह परम्परा थी कि देवीके मन्दिरमें किसी प्रकारकी भेंट-पूजा नहीं चढ़ती थी, बल्कि यात्री-जन आकर उस तीर्थ-स्थानमें बसे हुए भिक्षुकों और दीन-दुखियोंको अपनी श्रद्धा, सामर्थ्य और सकल्पके अनुसार दान-पुण्य करते थे और उनकी मनोकामना पूरी हो जाती थी। मंदिरके आस-पास इन भिखारियोंकी ही बस्ती बसी हुई थी। इन्हींमेंसे कुछ लोग यात्रियोंको ठहराने और आवश्यक सुविधाकी वस्तुएँ जुटानेका भी प्रबन्ध करते थे, और इस प्रकार उन्हीं लोगोंकी दूकानदारी भी वहाँ चल पड़ी थी।

ये दोनों गृहस्थ एक-एक सहस्र मुद्राएँ जेबमें रखकर दान करनेके लिए तथा सौ-सौ मुद्राएँ अपने व्यक्तिगत व्ययके लिए लेकर घरसे चले। तीर्थ-स्थानमें पहुँचकर दोनोंने दूसरे ही दिन सौ-सौ मुद्राएँ भिक्षुकोंको दान कीं। इसपर भिक्षुकोंने उनका विशेषरूपसे सेवा-सत्कार किया।

तीसरे दिन प्रातः जब वे फिर सौ-सौ मुद्राएँ जेबमें रखकर दान करनेके लिए चलनेको तैयार हुए तब उन्हें अपने झोंपड़ेमें ठहरानेवाले भिक्षुकने पहली रातसे ड्योढ़ा भाड़ा इस दूसरी रातका माँगा। दोनोंने उसे उसका मुँह माँगा भाड़ा—दो की जगह तीन-तीन मुद्राएँ—दे दिया, लेकिन दूसरे यात्रीको झोंपड़े वालेके इस व्यवहारसे कुछ क्षोभ भी हुआ। दिन भरमें अपना निश्चित दान-पुण्य करके दोनों अपने झोंपड़ेमें लौट आये। स्वभावतया, इस दानका पहला पात्र प्रतिदिन ठहरानेवाला भिक्षुक ही होता था।

चौथे दिन उन्हें ठहरानेवाले भिक्षुकने उनसे भोजनके दूने दाम माँगे। दोनोंने इस बार भी उसे उसको मुँह माँगे दाम दे दिये किन्तु दूसरे यात्रीको उसकी इस अशिष्ट लोभ-बुद्धिपर मन-ही-मन क्रोध भी आया। उस दिन भी दोनोंने सौ-सौ मुद्राओंका दान किया।

पाँचवें दिन उनके झोपड़ेवाले भिक्षुकने उन्हें बहुत घटिया प्रकारका भोजन दिया और दाम चौथे दिनके बराबर ही लिये। इसपर पहला यात्री तो कुछ नहीं बोला, किन्तु दूसरेने क्रोधमे आकर नीच, लोभी, कृतघ्न आदि शब्दोसे उसका तिरस्कार किया। उस दिन भी उन दोनोंने अपने नियमित दैनिक संकल्पका धन दान किया।

छठे दिन प्रातः जागनेपर उन्होने देखा कि उनके व्यक्तिगत व्ययकी थैलियोकी, जिनमें पचास-पचास मुद्राएँ शेष थीं और जिन्हें वे अपने पलंग के सिरहाने रखकर सोते थे, चोरी होगई है। उनके झोंपड़ेवाले भिक्षुकने सौगन्ध खा-खाकर कहा कि उसने यह चोरी नहीं की है, किन्तु उसकी सफाईको ठीक माननेका कोई यथेष्ट कारण नहीं था। दूसरे यात्रीने उसे बहुत बुरा-भला कहा और उसी दिन एक दूसरे भिक्षुकके झोपड़ेमें अपना डेरा डाल लिया। किन्तु पहला यात्री उसी झोपड़ेमें रहा आया।

सातवे दिन वे दोनो अपने डेरोंसे निकलकर फिर एक साथ दान-पुण्यके लिए बस्तीमे निकले। दोपहर तक घूम फिरकर पचास-पचास मुद्राएँ दान करनेके पश्चात् वे दोनो विश्रामके लिए एक स्थानपर बैठ गये। एक भिक्षुक भी उनके पास कहींसे आकर बैठ गया और उसने दानकी याचना की। दोनोंने एक-एक मुद्रा इसे दान की और वह कुछ देरतक इनके पास बैठकर चला गया। जब ये दोनों दान-यात्राके लिए उठे तब इन्होने देखा कि इनकी जेबे कटी हुई हैं और उंचास-उंचास मुद्राओंसे भरी इनकी थैलियाँ गायब है। इसपर दूसरे यात्रीके क्रोध और दुःखका वारापार न रहा। उसने कहा :

"यहाँके ये निवासी अत्यन्त नीच, दुष्ट, पापी, कृतघ्न, लुटेरे, गिरहकट है। ये दानके निकृष्टतम कुपात्र है। मैं अब एक क्षण भी इन नराधमोकी बस्तीमें ठहरकर एक पाईका भी दान इन्हें नहीं कर सकता।"

और उसी समय अपना सामान समेटकर वह अपने नगरको लौट पड़ा। किन्तु पहला यात्री वहीं टिका रहा।

अगले तीन दिनोंमें अपने संकल्पित धनका दान करके वह पहला यात्री भी अपने नगरको लौटा। जिस समय इसने अपने घरमें प्रवेश किया उसी समय इसका तीन वर्षसे खोया हुआ आठ सालका पुत्र घरमें आ गया और उसी समय दूसरे यात्रीके साल भरसे रोगपीड़ित पुत्रकी मृत्यु हो गई।

उचित अवसरपर पहले यात्रीने मनकामेश्वरी देवीके न्यायदानकी व्याख्या करते हुए दूसरेसे कहा :

"मनकामेश्वरीके तीर्थसे अपना संकल्प किया हुआ पूरा दान करनेके पहले ही तुम लौट आये, और वहाँ तुमने जितना दान किया भी वह बहुत क्षोभ और असंतोषके साथ किया। किन्तु मैंने अपने संकल्पका पूरा दान किया, और उस दानमेंसे जितना उन लोभी भिक्षुकोंने छल-प्रपंच या बलात्कार-पूर्वक मुझसे लिया उससे मैंने कोई क्षोभ नहीं माना और उस प्रकार जितना धन उन्होंने मुझसे छीन लिया उतना मैंने अपने स्वेच्छित दानमें कम कर दिया। जितना तुम किसीको प्रसन्नता-पूर्वक दे सकते हो उसका कुछ भाग यदि वह तुमसे छीनकर ले ले तो शेष भाग ही तुम उसे प्रसन्नता-पूर्वक दो। दान और व्यवसाय, दोनोंकी ही विशुद्ध एवं लाभकर परम्परा यही है और इस सहज, क्षतिहीन परम्पराका मोहवश निर्वाह न कर पानेके कारण ही लोग इन दोनों क्षेत्रोंके लाभोंसे वञ्चित रह जाते हैं। मनकामेश्वरी देवीने मुझे और तुम्हें, दोनोंको ही अपने-अपने अनुष्ठानका ठीक ही फल दिया है।"

सोनेकी रेत

स्वर्ग लोककी किसी यूनिवर्सिटीके एक छात्रने अपनी डाक्ट्रेटके लिए पृथ्वीके मूर्ख और अमूर्ख मनुष्योंकी खोजका विषय लिया।

पृथ्वीपर वह मनुष्यो-जैसा एक व्यापारी बनकर उतरा। अपने 'सुपंख' नामके ऊँटपर उसने सोनेकी रेतसे भरे हुए कुछ बोरे और ताँबेके कुछ घडे लादे और एक-एक करके पृथ्वीके सभी नगरोंमे उसे बेचने निकल पड़ा। यह सुपंख नगरोंमें पैरोंसे चलता था और निर्जन स्थानोंमें अपने पंखोंसे आकाशमे उडता था।

प्रत्येक नगरमें यह व्यापारी जाता और वहाँकी हाटमें खड़ा होकर लोगोंको अपनी सोनेकी रेत खरीदनेका निमंत्रण देता। खुले हुए बोरेमेंसे वह कुछ रेत निकालता, उसे अपने साथके ताँबेके घड़ेमें डालता और धरतीपर भट्टी खोदकर और आग जलाकर उस घड़ेको उसपर चढ़ा देता। कुछ देरमें पथरीली रेत छँटकर घड़ेमे नीचे बैठ जाती और शुद्ध सोनेकी एक तह उसके उपर जम जाती।। वज़नमें रेत और सोना बिलकुल बराबर बराबर निकलता। यह प्रदर्शन वह अच्छी तरह सभी नगरोंमें सभी दर्शको-ग्राहकोंके सामने संतोष-जनक रूपमें कर दिखाता। जो दर्शक-ग्राहक अपने हाथों यह प्रयोग करना चाहते उन्हें वह अपने हाथों ही यह सब कर लेने देता। एक सेर रेतमे ठीक आधा सेर सोना निकलता, एक छटाँकमें ढाई तोला। एक छटाँक रेतका दाम उसने दो तोला सोनेके दामके बराबर रक्खा। पाँच तोला रेत खरीदनेमें आधा तोला सोनेका लाभ था। एक घटेके हलकेसे परिश्रमसे दस प्रतिशतका लाभ। इस कामके लिए वह तांबेके घड़े भी उसीसे खरीदने का लोगोंसे आग्रह करता था। लेकिन उसके तांबेके घड़ेका मूल्य बहुत अधिक था—एक सेर सोनेके बराबर।

जहाँ भी वह जाता, एक बड़ी भीड़ अपने गिर्द जमा कर लेता। ऐसा सौदा खरीदने को उत्सुक सभी होते। कुछ लोग खरीदते और कुछ किसी अनिश्चित संदेह-वश न खरीदते। ताँबेका वह मँहगा घड़ा तो किसीने भी नहीं खरीदा। एक नगरमें सौदा बेचकर वह तुरंत दूसरेमें जा पहुँचता था।

सौ वर्षमें उसने पृथ्वीके सभी नगरों-बस्तियोंकी यात्रा करके अपनी सारी सोनेकी रेत बेच दी। अपनी यूनीवर्सिटीमें वापस पहुँच कर उसने जो विस्तृत 'थीसिस' प्रस्तुत की उसका आशय यह था :

"पृथ्वीके ४७ प्रतिशत लोग लोभ-वश विश्वास करते हैं और ५१ प्रतिशत भय-वश अविश्वास करते हैं। शेष २ प्रतिशतके बारेमें कहना किसी दूसरे रिसर्च स्कालरका काम होगा किन्तु मेरे कार्यके लिए वे अमूर्त्त की श्रेणीमें आ जाते हैं। ये ५१ प्रतिशत अविश्वास करने वाले लोग मूर्ख हैं और ४७ प्रतिशत विश्वास करने वाले परम मूर्ख। जिन मूर्खोंने मेरा सौदा अविश्वास करके नहीं खरीदा वे एक बड़े लाभके सौदेसे वंचित रह गये; और जिन परम मूर्खोंने विश्वाससे खरीदा उन्होंने अपने विश्वास को जाँचनेकी आवश्यकता नहीं समझी। यदि वे उसे जाँचने का प्रयत्न करते तो मेरे ताँबेके घड़े भी अवश्य खरीदते, क्योंकि मेरे इन घड़ोंके भीतरी गल-भागमें ही वह भू-दुर्लभ स्वर्ण-चुम्बक लगा हुआ है जो रेतके कणोंसे सोनेके कणोंको खींच कर अलग कर सकता है, जब कि किसी भी तापकी आग या मनुष्योंके हाथ लगा हुआ कोई भी रसायन इस असाधारण रेतसे उस सोनेको अलग नहीं कर सकता।"

सृष्टि-कथा

स्वर्ग लोककी जन-गणनामें उस बार मनुष्योंकी संख्या तीस अरब निकली।

मनुष्य स्वर्गलोकके सर्वश्रेष्ठ प्राणी नहीं थे। उन्होने विधातासे निवेदन किया :

"हे प्रजापते! हमारी जातिका जन-बल अब यथेष्ट बढ़ गया है। हमारे लिए आप एक ऐसे लोककी रचना कर दीजिए जिसमें हम सर्वेसर्वा और समस्त देह-धारियोंके शिरमौर हो कर रह सकें। ऐसे लोकमें ही हमारा यथेष्ट विकास सम्भव है।"

विधाताने उनकी बात मान ली। पृथ्वी लोक और उसके कुछ निम्न कोटिके प्राणियोंकी रचना करने के पश्चात् उसने एक अरब मनुष्योंका पहला दल इस नये लोकमें उतारा। इनमें से प्रत्येक मनुष्यके लिए स्वर्गसे पृथ्वी तक एक लम्बी सुरंग जैसा मार्ग बनाया गया और वे सभी अपने-अपने अलग मार्गों से पृथ्वीके अलग-अलग बिन्दुओं पर अवतीर्ण हुए। प्रत्येक मार्गके पृथ्वी वाले छोर पर एक कपाट-जटित द्वार था और यह द्वार ही प्रत्येक मनुष्यके पार्थिव गृहका प्रवेश-द्वार था। ये सभी द्वार केवल एक ओर—पृथ्वीकी ओर-खुलते थे और केवल दूसरी—स्वर्गकी ओर बन्द होते थे। फलतः इन मार्गों में होकर स्वर्गसे पृथ्वीकी ओर जाने वाला पृथ्वी पर प्रवेश तो कर सकता था किन्तु पृथ्वीसे वापस स्वर्गको नहीं लौट सकता था। प्रजापतिने यह व्यवस्था की कि पहले दलके एक अरब मनुष्य एक अरब मार्गों से पृथ्वीपर प्रवेश करके अपने पार्थिव गृहोंके विस्तार और संरक्षणका काम करेंगे और साथ ही अपने गृह-द्वारोंको शेष उन्तीस अरब मनुष्योंके प्रवेशके लिए खुला रहने देंगे। पहले दलको पृथ्वी पर उतारने से पहले ऐसे आदेश प्रजापतिने उन्हें दे दिये और अपने अन्य कार्यमें संलग्न हो गये।

इस पहले दलके मनुष्य पृथ्वीमें पहुँच कर सानन्द विचरण करने लगे और स्वर्ग-पथके द्वारोंके संरक्षण एवं अपने गृहोंके विस्तारके सम्बन्धमें उन्होंने कोई चिन्ता न की। फल यह हुआ कि सम्पूर्ण मानव-जाति पृथ्वीपर अबाध गतिसे उतर गई और वह पृथ्वी, जो वैसे अपने विस्तार और धारणा-शक्तिमें तीस अरब मनुष्योंके लिए यथेष्टसे अधिक ही थी, व्यवस्था और आवश्यक उत्पादनके अभावमें इतनी बड़ी मानव-संख्याको धारण करने में असमर्थ होकर भाराक्रान्त हो उठी।

समूचे ब्रह्मांडमें असन्तुलनका एक झटका लगा और प्रजापतिका ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। भूलोकमें प्रलयका आवाहन कर उन्होंने पृथ्वी और उसके निवासियोंको इस संकटसे मुक्ति दिलाई। तीनों अरब मनुष्य पुनः स्वर्गमें पहुँच गये।

पृथ्वीको प्रलय-युक्त करके दूसरी बार प्रजापतिने फिर एक अरब मनुष्यों के एक दूसरे दलको उसी प्रकार पृथ्वीपर भेजा। अबकी बार उन्होंने प्रत्येक मनुष्यके भू-गृहके स-कपाट प्रवेश-द्वारमें—यद्यपि वह खुलता पूर्ववत् पृथ्वीकी ही ओर था—पृथ्वीकी ओर एक साँकलकी भी व्यवस्था कर दी। जब तक पृथ्वीका निवासी मनुष्य भीतरसे अपने-गृह-द्वारकी साँकलको न खोले तब तक कोई भी प्रवेशार्थी मनुष्य स्वर्गसे पृथ्वी पर प्रवेश नहीं कर सकता था। विधाताने उन्हें इन साँकलोंको लगाने और हटाने की कला सिखा दी।

यह दूसरा दल पृथ्वीमें पहुँचा और अपने अपने गृह-द्वारकी साँकल भीतरसे बन्द कर भू-विहारमें मग्न हो गया। उसने इन साँकलोंको खुलाना छूनेकी चिन्ता नहीं की। फल-स्वरूप आगे एक भी मनुष्य उन बनाये हुए मार्गों से पृथ्वी पर प्रवेश नहीं कर सका। भूलोककी मानव-जनसंख्या और इसीलिए उनके विकासकी प्रगति भी ज्योंकी त्यों बनी रही। एक युग तक उसमें कोई परिवर्तन न होने के कारण प्रजापतिने [illegible]

पृथ्वी पर दूसरे प्रलयका आवाहन किया और उस दलके मनुष्य पुनः स्वर्ग में पहुँच गये ।

तीसरी बार विधाताने पहले दोनो दलोमें से विशेष जागरूक और विश्वसनीय मनुष्योको चुनकर एक अरब मनुष्योका तीसरा दल उसी प्रकार पृथ्वी पर भेजा । इस दलने संतोष-जनक कार्य किया और पृथ्वी पर आवश्यक वस्तुओका उत्पादन और निवास-गृहोका धीरे-धीरे विस्तार करके नियंत्रण पूर्वक स्वर्गस्थ मानवोको पृथ्वी पर आनेका अवसर दिया । पृथ्वीकी मानव-संख्या बढ़ते-बढ़ते चार अरब तक पहुँच गई और उनके लिए सुविधाजनक परिस्थितियोंका भी विकास हुआ । पृथ्वी पर मानव-जीवनका वह सबसे अधिक समृद्धि-पूर्ण युग था । किन्तु धीरे-धीरे कुछ और कारणोंने उनके बीच प्रवेश किया । उनमें पारस्परिक वैमनस्य बढ़ा और युद्ध नामकी विभीषिकाका सूत्रपात हुआ । मनुष्योंने अपने ही बन्धुओंके रक्तसे पृथ्वीको गीला करना प्रारम्भ किया और यह क्रिया इस सीमातक पहुँच गई कि विधाताको तीसरे प्रलयका आवाहनकर उन सभीको पृथ्वीसे पुनः हटा लेना पड़ा ।

चौथी बार विधाताने फिर एक अरब मनुष्योंके नये दलको पृथ्वीपर भेजा । इस बारके मनुष्योंको उसने अपने-अपने स्वर्गस्थ सजातीयोंको पृथ्वी पर निमन्त्रित करनेकी एक विशेष प्रेरणासे भी सम्पन्न कर दिया । उन्हें निमंत्रित करनेमे एक विशेष सुखका अनुभव और उन्हें निमंत्रित करनेके लिए एक विशेष प्रकारका मोह भी उनके शरीर और हृदयमें उसने जागृत कर दिया । प्रजननका सुख और सन्तानका मोह इस चौथे दलको ही उसने पहली बार दिया ।

पृथ्वीकी मानव-जन-संख्या इस बार और भी अधिक बढ़ी । इस दलके अग्र-गामियोने प्रेम और सुखके साथ अपने स्वर्गस्थ सजातीयोको निमंत्रित तो किया किन्तु प्रमाद-वश उनके भूलोकमें निवासके लिए धरतीसे यथेष्ट उत्पादन और यथेष्ट मात्रामे आवश्यक आवास-विस्तारका काम नहीं किया

फलतः अत्यल्प साधनोंमें जीवन-यापन करनेके कारण इस बारकी मानव-जाति धीरे-धीरे निर्बल-काय एवं क्षीण होती गई और उनकी अभीष्ट प्रगतिका मार्ग रुक गया। विधाताको विवश होकर चौथे प्रलयका अवलम्ब लेना पड़ा।

पाचवीं बार उसने फिर एक अरब मनुष्योंके एक नये दलको पृथ्वी पर भेजा। सन्तानका मोह उसके हृदयमें पूर्ववत् ही उत्पन्न किया, किन्तु प्रजननमें सुखके साथ कुछ पीड़ाका भी समावेश कर दिया। इसके लिए उसे मनुष्योंको अबकी बार दो अलग-अलग प्रकारके—स्त्री और पुरुष के—वर्गोंमें विभक्त करना पड़ा और प्रजननमें पीड़ाका भाग उसने स्त्री वर्गको दे दिया। इस पीडा-दानसे विधाताका अभिप्राय यही था कि मनुष्य पीड़ा-पूर्वक प्राप्त सन्ततिके प्रति अधिक स्नेहार्द्र होगा और अधिक चिन्ताके साथ उसका लालन-पालन करेगा और उसे जन्म देनेमें एक सीमासे आगे आवश्यक नियन्त्रण रखनेके लिए भी विवश होगा।

लेकिन पृथ्वीपर उतरी हुई मानव जाति इस बार भी यथेष्ट जागरूक न सिद्ध हुई और आठ अरबकी संख्या तक पहुँचनेके पहले ही उनमें आलस्य, अकर्मण्यता, अस्नेह और अपस्वार्थकी प्रवृत्तियोंने जन्म लेकर उसे क्षीण करनेकी सामग्री प्रस्तुत कर दी। विधाताके पास पृथ्वीके नव-निर्माणके आवेसे अधिक साधन व्यय हो चुके थे, इसलिए उसने अबकी बार प्रलयका आवाहन नहीं किया और क्षीणप्राय मनुष्योंके ही स्वर्गमें वापस होनेका नियम—व्यक्तिगत मृत्युका नियम—प्रचलित कर दिया। एक अरब समर्थतम मानव देहियोंको पृथ्वीपर छोड़कर शेषको उसने स्वर्ग मे वापस ले लिया।

इन अवशिष्ट, भूलोकस्थ एक अरब मानवोंको अत्यन्त आवश्यक दो परामर्श देनेके लिए विधाताने पृथ्वीपर दो सभाओंका आयोजन किया। पहली सभामें उसने मानव-जातिकी बहुतर स्वर्गस्थ सन्तानोंकी ओरसे मार्मिक याचना करते हुए उन्हें प्रेरणा दी कि वे उनमेंसे अधिकसे अधिक

स्वजनोंके अवतरणके लिए अपने गृह-कपाटोंको खुला रक्खें और इस प्रकार उन्हे समयके भीतर यथेष्ट विकासका अवसर दे। दूसरी सभामें उसने इस बातपर बल दिया कि भूलोक-वासी मनुष्य अधिकसे अधिक सुविधा-जनक समृद्धियोंका पृथ्वीपर निर्माण करे जिससे सम्पूर्ण मानव-जाति पृथ्वीपर सुखपूर्वक रह सके।

लेकिन इन दोनो सभाओंकी एक बहुत बड़ी विडम्बना यह हुई कि जो मनुष्य पहली सभामें उपस्थित हुए वे दूसरीमें नहीं गये और दूसरी सभामें प्रायः वे ही लोग गये जो पहलीमें उपस्थित नहीं हुए थे। इस प्रकार पृथ्वीकी मानव-जाति दो विभिन्न अर्द्धाङ्गी विचार-धाराओंमें बँट गई। एक वह जो पृथ्वीपर अपने गृह-द्वारके मार्गसे जितने भी स्वर्ग-मानव आये, सबको आनेकी खुली छूट देनेके पक्षमें थी, और दूसरी वह जो पृथ्वीके सामयिक अभावोंके कारण, नये प्रवेशार्थियोंके स्वागत-सत्कारकी ओरसे बहुत कुछ उदासीन, बल्कि उसके विरुद्ध हो गई। इस समय तक भूलोकवासी मनुष्योंके गृह-द्वार उनके कपाटों और साँकलों सहित बहुत कुछ जर्जर और अवरोध-हीन हो चुके थे और नव-जन-नियन्त्रणपर उनका हाथ बहुत ढीला रह गया था। इनमेंसे पहले वर्गके लोग एक आतंक-पूर्ण भावनाके साथ प्रजननमें किसी प्रकारका भी अवरोध लगाना पाप समझने लगे और दूसरे वर्गके लोग वैसे अव-रोधोंके लिए प्रयत्न-शील हो उठे।

× × ×

भूलोकमें इस युगकी उपस्थित मानव-शाखाने कठिनाईसे अपनी जन-संख्याको अभी ढाई अरब तक ही बढ़ाया है और बृहत्तर जन-संख्याको भूतलपर निमन्त्रित करनेके साथ-साथ उनके सामर्थ्य-पूर्वक जीनेके लिए आवश्यक साधन जुटानेका भी प्रश्न उसके सामने है। किन्तु क्या ये जन-वृद्धिके लिए मार्ग-अवरोध और मार्ग-मोचनके दो अलग-अलग मार्ग

उसके सामने हैं? ऐसा समझना सम्भवतः एक बहुत बड़ी भूल होगी। प्रजननका मार्गावरोध भी उसका इष्ट नहीं हो सकता; साथ ही नई मानवताके सुख-विकासके लिए उस मार्गको किसी संकट-कालमें नियन्त्रित और संकुचित करनेमें कुतर्क और अन्ध-भयको स्थान देकर प्रमाद करना भी मानवोचित बुद्धिमत्ता नहीं कहा जा सकता।

जिस जन-श्रुतिके आधारपर मैंने यह कथा कही है उसके अनुसार मैं तीस अरबकी जन-संख्यावाले अपने मानव-परिवारको इस पृथ्वीपर 'सहन' करनेके लिए तैयार हूँ, पर उससे पहले मैं प्रत्येक मानव-जनका अधिकार समझता हूँ कि वह अपने जिन अनागत स्वर्गिक स्वजनोंका पृथ्वीपर यथोचित सत्कार नहीं कर सकता उन्हें सुविधा-जनक समय आने तक अनिमन्त्रित ही रक्खे।

महानिधि

किसी तपोवनमें एक सिद्ध महात्मा रहते थे। प्रतिवर्ष एक निश्चित तिथिपर उनके आश्रममें मेला जुड़ता था। बहुतसे लोग उस अवसर पर अपनी मनोकामनाएँ लेकर वहाँ आते थे और यह प्रसिद्ध था कि उन महात्माजीके आशीर्वादसे वे सफल-काम होते थे।

एक बार वैसे ही वार्षिक समारोहपर दो व्यक्तियोंमें परिचय हुआ और वे शीघ्र ही एक-दूसरेके मित्र हो गये। दोनो सम्पन्न और कुशल व्यवसायी थे और दोनोकी मनोकामना एवं महत्त्वाकांक्षा अधिक-से-अधिक समृद्ध होने की थी।

दोनो एक साथ महात्माजीके सम्मुख उपस्थित हुए।

महात्माजीने दोनोंको पार-देखती-सी दृष्टिसे देखा, उनके होठोंपर एक हलकी-सी मुसकान उभरी और उन्होंने कहा :

"तुम्हारी मनोकामना अधिक-से-अधिक समृद्ध होने की है। मेरे आशीर्वादसे संसारकी बड़ी-से-बड़ी निधि तुम्हें प्राप्त होगी। किन्तु आशीर्वाद देनेके पहले मै जानना चाहता हूँ कि उस निधिका तुम क्या उपयोग करोगे।"

"उस निधिसे हम संसारकी अधिक-से-अधिक मूल्यवान् एवं उपयोगी वस्तुएँ खरीदेंगे, अपने तथा अधिकाधिक जनोंके सुखके लिए उनका उपयोग करेंगे और अपने मित्रोंका अधिक-से-अधिक रुचिकर सत्कार करेंगे।" दोनोंके उत्तरोंका अभिप्राय था।

"तथास्तु" महात्माजीने उन्हें आशीर्वाद दिया और दोनो प्रसन्नमन वहाँसे विदा हुए।

तपोवनसे विदा होनेके पहले दोनो मित्रोंने एक दूसरेको बहुमूल्य उपहार दिये और अपने-अपने नगर-गृहमें आनेका निमंत्रण भी दिया।

संयगोवश दोनोंको ही उस वर्ष अपने-अपने व्यवसायमें बहुत घाटा हुआ। अगले वर्ष वे दोनों फिर उस तपोवनमें उपस्थित हुए। अबकी बार उनके ऐश्वर्य और परिजन-परिकरका दल पहलेसे आधा भी नहीं था. उनके शिविर छोटे और अपेक्षाकृत साधारण थे। दोनों प्रेम-पूर्वक मिले किन्तु दोनोंको आन्तरिक ग्लानि थी कि वे अब अपने मित्रका पहले जैसा सत्कार करनेमें और उससे तदनुकूल मानसिक प्रतिष्ठा पानेमें असमर्थ थे।

इस बार भी दोनों एक साथ महात्माजीके सम्मुख उपस्थित हुए।

"मुझे प्रसन्नता है कि तुम समृद्धिके मार्गपर भली-भाँति अग्रसर हो रहे हो। मुझे आशा है कि अगले वर्ष जब तुम यहाँ आओगे तब तुम्हारे प्रस्तुत आक्षेप और उलाहनेका उत्तर मिल जायगा।" महात्माजीने कहा और दूसरे लोगोंकी ओर मुख करके उनसे बात करने लगे। क्षुब्ध और निराश ये दोनों व्यक्ति वहाँसे उठ आये।

अगले वर्षके भीतर दोनोंके व्यवसाय पूर्णतया चौपट हो गये, उनकी सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ बिक गईं। वे दोनों एकाकी अपने-अपने नगरोंसे भार-वाही छकड़ोंमें किरायेपर एक-एक जगह लेकर अगले वर्षके समागममें उपस्थित हुए। साधारण पहनने-बिछानेके कपड़ों और न्यूनतम यात्रा-व्ययके अतिरिक्त उनके पास अबकी बार और कुछ नहीं था। संयोगवश वे एक साथ ही तपोवनके द्वारपर पहुँचे और आश्रमके प्रबन्धकोंने एक ही छोटे-से शिविरमें दोनोंको ही ठहरा दिया। अपनी हीनावस्थाके कारण दोनोंको ही इतनी ग्लानि और दुःख था कि उन्होंने परस्पर साधारण अभि-वादनके आगे और कुछ बात नहीं की।

उसी रात शिविरमें चोरोंने उनके रहे-सहे सामान की भी चोरी कर ली। चोरोंकी आहट पाकर वे जागे और उनका पीछा करनेके लिए शिविर-द्वारके बाहर आये, किन्तु चोर माल लेकर दूर जा चुके थे। उन दोनोंके शरीरों पर केवल शयन-कालका एक-एक झीना वस्त्र शेष रह गया था। द्वारके बाहर, चन्द्रमाके प्रकाशमें दोनोंने एक दूसरेको इस अवस्था, अकिंचन

दशामे देखा और पहली बार उन्होंने खोज की कि उनमेसे एक तरुण युवक और दूसरी तरुणी युवती है।

× × ×

अगली सुबह वे दोनो अत्यन्त प्रसन्न भावसे महात्माजीकी सेवामें उपस्थित हुए और उन्हें देखकर महात्माजीने मुसकराते हुए कहा :

"मुझे प्रसन्नता है कि तुम समृद्धिके बन्धनकारी आडम्बरो और सत्कारकी आच्छादनमयी प्रणालियोंसे स्वतंत्र होकर अपनी उस सर्वोत्तम निधिको खोजकर प्राप्त कर चुके हो, जिससे अपने स्वजन मित्रका सर्वोत्तम और चिरस्थायी सत्कार करनेमें समर्थ हुए हो। तुम दोनो मिलकर आगे निस्संदेह आत्म-सुख और लोक-हितके लिए बड़ी-से-बड़ी समृद्धिका उपार्जन करोगे।"

× × ×

और यहाँपर मेरे कथागुरुका प्रश्न है : आजके सुख-सत्कार—कामी मनुष्योंकी वास्तविक समस्या कौन-सी है—समृद्धिकी कमी, या समृद्धिके बन्धनकारी आडम्बरोंकी बहुलता ?

कल्पनाके आगे

धरतीकी सहस्र योजन लम्बी यात्रा पूरी करके मैं सागरके तटपर पहुँचा।

सागर-तटपर मैं विचरण कर ही रहा था कि अचानक मेरा पैर फिसला और मैं सागरके वक्षपर तैरने लगा।

सागरमें तैरते-तैरते अकस्मात् मेरा हाथ फिसला और मैं अन्तरिक्ष की राह स्वर्गमें जा पहुँचा।

मैंने देखा कि मेरे कन्धोंपर दो बहुत ही हल्के सुन्दर-सुन्दर पङ्ख उग आये हैं। उन पङ्खोंके सहारे उड़कर मैंने रङ्ग-बिरङ्गी चाँद सितारोंकी रोशनीसे जगमगाते स्वर्गलोककी सैर प्रारम्भ कर दी। इसी समय सहसा मेरे पङ्ख झपके और मैं अन्धकारसे भरे नरकलोकमें जा गिरा।

नरकमें पहुँचकर मेरा दम घुटने लगा। प्रकाशका ही नहीं, वायुका भी वहाँ अभाव था। उस अन्धकारमें मैंने जलती चिताओंके प्रकाशमें अन्धकारसे भी अधिक काले और विकराल शरीरवाले यम-दूतोंको अपनी क्रियाओंमें व्यस्त देखा। नरकके बारेमें भयङ्कर-से-भयङ्कर जो कुछ मैंने सुन रक्खा था वह सब मैंने वहाँ प्रत्यक्ष होते देखा। वहाँकी दुःसह दुर्गन्धसे मेरी नाक फटी जा रही थी और वहाँकी झुलसानेवाली आग मानो मेरे शरीरको गलाये दे रही थी।

इसी समय दो अत्यन्त भयङ्कर भीमकाय यमदूतोंने मेरे पास आकर एक चिता जला दी और उसपर तेलसे भरा एक बड़ा कड़ाह चढ़ा दिया। तेल खौलने लगा। उनके हाथोंमें एक बड़ा आरा भी था। उनमेंसे एकने मुझे लक्ष्यकर कहा :

"तुमने संसारमें बड़े-बड़े पाप किये हैं। उनके दण्ड-स्वरूप तुम्हें इस आरेसे चीरना और इस तेलमें पकाना है। बोलो, इन दोमेंसे कौन-सा दण्ड तुम्हें पहले दिया जाय?"

मेरे पास अब कोई चारा नहीं था, फिर भी मैंने अपनी प्रत्युत्पन्न बुद्धिका आश्रय लिया। मैंने कहा :

"तुम लोग बड़े भोले जान पड़ते हो। आरे और खौलते तेलके हलके-फुलके दण्ड तो क्षुद्र कोटिके पापियोके लिए हैं। मैंने तो राज-कोटिके पाप किये है। तुम्हारा राजा यमराज ही शायद मुझे मेरे उपयुक्त दण्ड देनेका सामर्थ्य रखता है। तुम उसीको मेरे पास बुलाओ।"

एक दीर्घकाय भयङ्कर भैंसेपर सवार अत्यन्त विकराल रूपधारी यम मेरे सम्मुख तुरन्त उपस्थित हो गया।

मैंने कहा :

"देखो यमराज, मै पृथ्वी, सागर और स्वर्गकी सैर करता हुआ तुम्हारे नरकका निरीक्षण करने यहाँ आया हूँ। स्वर्गमे वहाँके सुख भोगने के लिए भी मै नहीं रुका और अभी नरकके दुःख भोगनेकी भो मुझे फुर्सत नहीं है। इन्हें भोगनेके लिए मै दुबारा स्वर्ग और नरककी यात्रा करूँगा। मैने सुना है कि स्वर्ग और नरकमे मिलाकर तुम्हीं सबसे बड़े ज्ञानी हो। तुम्हारी सहायतासे मै नरकके भी आगेकी सैर करना चाहता हूँ।"

यमराजके चेहरेपर प्रसन्नताकी रेखा दिखाई दी। उसने कहा :

"तुम नरकके आगे जाना चाहते हो? नरकके आगे तो केवल कल्पना-रहित सत्य है।"

"और धरतीसे स्वर्ग और नरक तक?" मैंने जिज्ञासापूर्वक पूछा।

"कल्पनाकी सृष्टि है" यमराजने कहा।

"तो मैं अब कल्पनासे आगेकी ही यात्रा करना चाहता हूँ।"

"एवमस्तु" यमराजने कहा और दुःसह आँचसे झुलसते नरकधाम में ही मलयागिरिकी ओरसे आकर एक अत्यन्त शीतल सुखद वायुके

झोंकेने मेरे शरीरका स्पर्शकर मुझे अपने अब तकके जीवनका सबसे बड़ा सुखद अनुभव प्रदान किया।

और मैंने देखा, मैं अपने घरमें बिछौनेपर पसीनेमें लथपथ पड़ा हूं और मेरी पत्नी मुझपर हाथका पङ्खा झलती हुई कह रही है :

"ऐसे भी कोई सोता है। दोपहर ढल गई। खिड़की मैंने अभी बन्द की है, उससे धूप तुम्हारे सिरपर आ गई थी और नीचे भड़ियोंकी बस्तीमें भुनते हुए मुअरकी चिरायन्ध सारे कमरेमें भर रही थी। ऐसी सड़ी झुलसती गरमीमें भी तुम्हारी यह कुम्भकरणी नींद !"

और मैं अब निश्चयपूर्वक मानता हूँ कि ठण्डी हवाका एक झोंका सचमुच स्वर्ग और नरकसे आगेका एक महान् एवं गूढ सत्य है।